# जीव विचार प्रकरण

मणि चरण रज मुनि मनितप्रभसागर

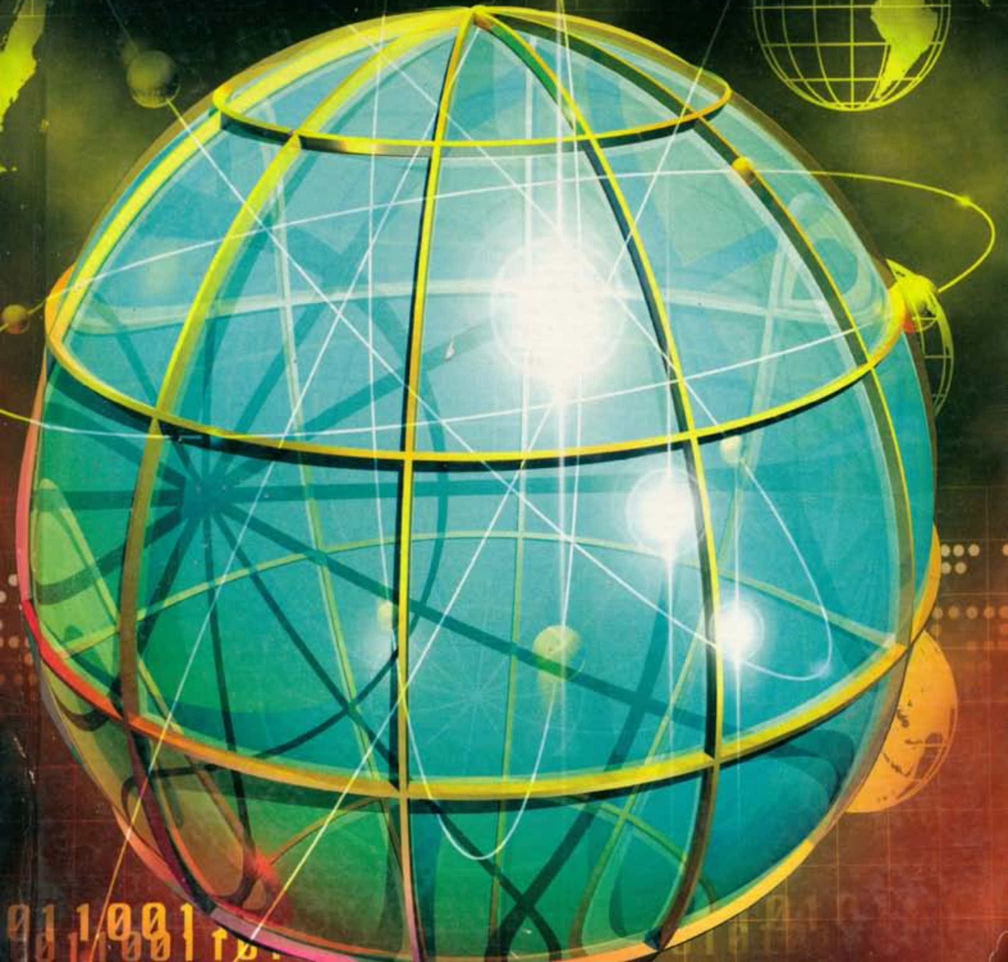

वादिवेताल शांतिसूरि विरचित

# जीव विचार प्रकरण

(अर्थ-विवेचन-प्रश्नोत्तर सहित)

मणि चरण रज

मुनि मनितप्रभसागर

## रतनमाला श्री प्रकाशन की तत्त्वज्ञान की मणियों से सजी अनुपम माला

प्रेरणा एवं आशीष........................................................
पू. गुरूदेव उपाध्याय प्रवर **श्री मणिप्रभसागरजी** म.सा.

अनुवाद-विवेचन..........................................................
मुनि **मनितप्रभसागर**

संशोधन.....................................................................
पू. बहिन म. साध्वी डॉ. **विद्युत्प्रभाश्रीजी** म.
पू. साध्वी डॉ. **नीलांजनाश्रीजी** म.

संपादन.....................................................................
विद्वद्वर्य पंडितप्रवर **श्री नरेन्द्रभाई कोरडिया**

प्रकाशन ....................................................................
पू. प्रज्ञापुरूष आचार्यप्रवर श्री **जिनकान्तिसागरसूरीश्वरजी** म.सा.
की २१ वीं पुण्यतिथि पर
मिगसर कृष्णा सप्तमी, वि. स. २०६३, ता. १२/११/२००६

मुद्रक.......................................................................
दीपक ओसवाल
२६९, नया रविवार पेठ, पुणे-२ फोन: २४४७७७९१, ९८२२०५५८९१

प्रतियाँ १०००
मूल्य ४० रू.

तेरा तुझको अर्पण
जीव तत्त्व के सर्वोत्कृष्ट उपदेष्टा परमात्मा महावीर
के पावन चरणारविंदों में सादर समर्पित
मुनि मनितप्रभ

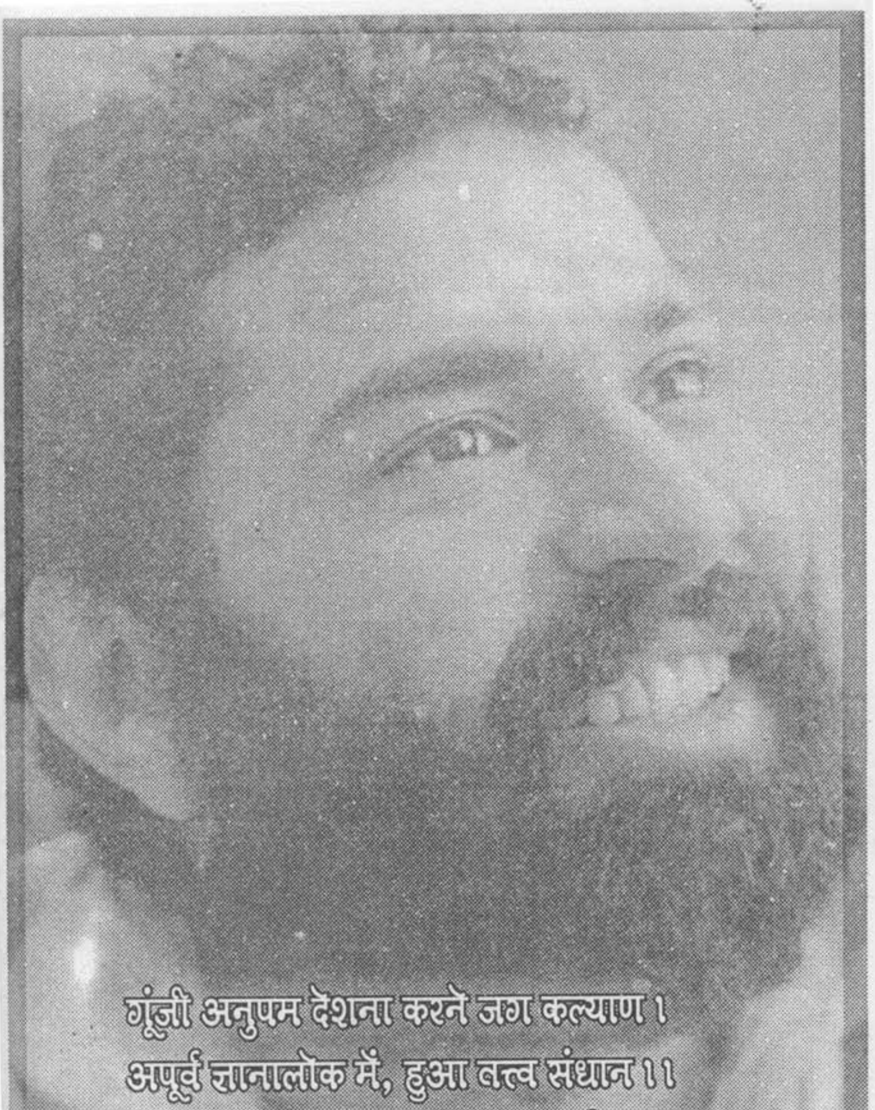
गूंजी अनुपम देशना करने जग कल्याण ।
अपूर्व ज्ञानालोक में, हुआ तत्त्व संधान ।।
मणि गुरूवर से प्रेरणा, पा सधा अभियान ।
शब्दावली मुनि मनित की, स्वीकारो वर्धमान ।।
जिनोपदिष्ट जीव तत्त्व के महत्त्वपूर्ण पहलुओं का स्पर्श कराता तत्त्वज्ञान का अनूठा खजाना

# अर्थ सहयोग

पूजनीया बहिन म. साध्वी डॉ.
विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. की
सुशिष्या
पू. विदुषी साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म.सा.
पू. साध्वी श्री दीप्तिप्रज्ञाश्रीजी म.सा.
पू. साध्वी श्री विभांजनाश्रीजी म.सा.
के २०६३ में सम्पन्न हुए
ऐतिहासिक चातुर्मास के उपलक्ष में
श्री जैन श्वे. खरतरगच्छ संघ

१५३, मित्तल कोर्ट, सी विंग,
१५ वा माला, नरीमन पाईंट,
मुंबई–४०००२१

# कृपामृतम्..............

वीतराग परमात्मा के दर्शन को समझने का अर्थ है- जीव के स्वरूप को समझ लेना और जीव के स्वरूप को समझ लेने का अर्थ है–परमात्मा के रहस्य को जान लेना।

हम तब तक अंधेरे में ही हाथ–पैर मार रहे होते हैं, जब तक जीव के स्वरूप को नहीं समझ लेते।

जीव तत्त्व को समझने के बाद ही असल में यात्रा का प्रारंभ होता है।

तब तक जो भी भ्रमण हुआ, वह यात्रा नहीं था। वह भटकाव था। केवल और केवल निरूद्देश्य भटकाव !

भले हम उस भटकाव में भी सपने खोज लें और उस कारण अपने निरर्थक भटकाव को सार्थक यात्रा का नाम दे दें। पर केवल नाम देने से कुछ नहीं होता।

भ्रम को पाला जा सकता है। भ्रम को सहलाया जा सकता है। भ्रम को सत्य मान कर जीया जा सकता है पर भ्रम को सत्य बनाया नहीं जा सकता। क्योंकि भ्रम, भ्रम है। सत्य, सत्य है।

जीव को अजीव मानना आसान है। इसमें केवल मिथ्यात्व की जरूरत होती है। पर कोई जीव को अजीव बना नहीं सकता। न कोई अजीव को जीव बनाने में सक्षम है।

यह संपूर्ण सृष्टि दो तत्त्वों पर ही निर्भर है- जीव और अजीव। नौ तत्त्व इन्हीं दो तत्त्वों का विस्तार है।

मुनि मनितप्रभ ने जीवविचार पर बहुत विस्तृत यह पुस्तक लिखी है। जीव विचार पर कई पुस्तकें उपलब्ध है। पर इस पुस्तक की विशिष्टता कुछ अनूठी है।

मेरा यह कथन रहा कि मात्र जीव विचार की गाथाओं तक सीमित नहीं रहना है

क्योंकि जीव विचार की गाथाओं में कई बातें नहीं भी हैं। पर तुम्हें जीव से संबंधित हर तथ्य को इसमें डाल देना है ताकि यह अपने आप में पूर्ण बन सके।

और मैं यह देख कर हैरान हूँ कि मात्र ५१ गाथाओं की विवेचना और उसके विषय-स्पष्टीकरण के लिये इसने २७५ से अधिक पृष्ठ भरे हैं। इसमें बहुत सारा विषय नवतत्त्व, कर्मग्रन्थ आदि का भी आ गया है। पर इसमें कोई समस्या नहीं। क्योंकि लक्ष्य था कि जीव से संबंधित कोई भी विषय बाकी नहीं रहना चाहिये।

तत्त्व मुनि मनितप्रभ का अति प्रिय विषय है। तत्त्वज्ञान की पुस्तक को वह उपन्यास की भाँति पढता है। उपन्यास की उपमा उचित नहीं है क्योंकि बाल जीवों को ही उपन्यास में रस आता है। साधकों को तो तत्त्वज्ञान में ही रस आता है।

चिंतन तो काफी समय से चल ही रहा था कि अपनी पाठशालाओं के लिये एक पाठ्यक्रम तैयार किया जाय। पर अन्यान्य विषयों में प्रवृत्ति होने से संभव नहीं हो पया। बेंगलोर में बहिन विद्युत्प्रभा आदि के साथ पाठशाला के विषय पर थोडी गहन चर्चा हुई। श्री तेजराजजी गुलेच्छा आदि श्रावकों के साथ लम्बा विचार विमर्श चला। परिणामतः यह निर्णय किया गया कि तत्त्वज्ञान की प्रारंभिक पुस्तकें पाठशाला के आधार पर तैयार करवाई जाय जिसमें संबंधित विषय का पूरा खुलाशा हो।

आदोनी में अक्षय तृतीया पर वांचना के दौरान काफी साधु-साध्वियों से इस विषय पर चर्चा कर निर्णय लिया गया।

परिणाम प्रस्तुत है। मुनि मनितप्रभ ने बहुत ही अल्प समय में जीव विचार पर एक सर्वोत्तम पुस्तक तैयार की है।

मनितप्रभ अप्रमादी है, ज्ञानवादी है, क्रियावादी है। उसके हर व्यवहार में साधुता टपकती है। समय पर उसका अपना नियंत्रण है। और इस कारण वह समय का लगातार मालिक हो रहा है। अपने समय के पूरे सदुपयोग का उससे अच्छा उदाहरण नजर नहीं आ सकता।

यह पुस्तक उपयोगी बने और मनित नित नई सर्जना करता रहे, यही मेरी शुभकामना है।

(मणिप्रभसागर)

# प्रज्ञामृतम्..............

अनुज मुनि श्री मनितप्रभजी के सतत् पुरूषार्थ से तैयार की गयी जीव विचार पुस्तक का प्रकाशन मेरे हृदय को जितना आह्लादित कर रहा है, उतना ही मुझे चिंतन के लिये भी मजबूर कर रहा है।

इन दिनों में उनके द्वारा साहित्य जगत को विशिष्ट उपहार निरंतर प्राप्त होते जा रहे हैं। मैं उनके इस अवदान से चकित हूँ कि आखिर वे लेखन के लिये इतनी ऊर्जा कहाँ से प्राप्त कर रहे हैं! समाधान उनकी समर्पित एवं ज्ञानपिपासु चेतना दे देती है।

वे समूह के बीच रहकर भी एकांत साधना करते हुए मात्र संयम व ज्ञान-साधना में ही गतिशील है। कभी-कभी तो उनसे ईर्ष्या भी हो जाती है कि मैंने लम्बे संयम पर्याय में भी साहित्य जगत को इतना समृद्ध नहीं किया तो वे अपने छोटे से संयम पर्याय में आगे कैसे हो गये? परंतु जहाँ लक्ष्य के प्रति निष्ठा हो, वहाँ असंभव कुछ भी नहीं है।

उनका यह परम सौभाग्य है कि अभी वे अपने गुरुदेव के पावन सान्निध्य में व्यवहारिक व सामुदायिक उत्तरदायित्वों से मुक्त भी हैं परंतु यह कोई कारण नहीं है उनकी साहित्य साधना में निरंतर सोपान श्रेणी चढ़ने का। बल्कि मुख्य कारण तो भीतर की गहरी प्यास है जो उन्हें लेखन के क्षेत्र में सतत् आगे बढ़ा रही है।

जीव विचार प्रकरण कोई कहानी, उपन्यास या घटना प्रधान साहित्य नहीं है बल्कि यह तत्त्वज्ञान से संबंधित महत्त्वपूर्ण प्रकरण है। इस प्रकरण में जीव संबंधी संपूर्ण सामग्री समाहित हो गयी है।

जैन संस्कृति में तीन तत्त्वों की मुख्यता रही है- हेय, ज्ञेय और उपादेय। इन तत्त्वों की जानकारी जब तक व्यक्ति नहीं प्राप्त करेगा, वह जानकर भी अपनी

जीवन शुद्धि नहीं कर पायेगा।

हेय अर्थात् छोडने योग्य।

ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य।

उपादेय अर्थात् स्वीकार करने योग्य ।

जीव, अजीव जानने योग्य ज्ञेय हैं। पाप, आश्रव, बंध छोडने योग्य हेय हैं और पुण्य, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष स्वीकार करने योग्य उपादेय तत्त्व हैं।

जब तक जीव तत्त्व की सूक्ष्मता को हम नहीं समझेंगे तब तक उसके जीवन की सुरक्षा में सहयोग नहीं कर पायेंगें। बहुधा हम अनावश्यक और व्यर्थ की जीव हिंसा से स्वयं को दूषित कर बैठते हैं। और इसका कारण हैं- जीव के ज्ञान से हमारी अनभिज्ञता। अगर हम सभी प्रकार के निगोद से लेकर सिद्धों की स्थिति से अवगत हो जाये तो हम अपने जीवन को अहिंसामय भी बना सकते हैं, साथ ही उनके उपकारों का स्मरण कर उनके प्रति कृतज्ञ भी हो सकते हैं।

उमास्वाति ने तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है– परस्परोपग्रहो जीवानाम्। उसका अर्थ यही है कि एक जीव दूसरे जीव का उपकारी है। अगर हम इस सृष्टि पर गहरी नजर डाले तो समझ में आ सकता है कि मानव एकेन्द्रिय जीवों का कितना आभारी है! पांचों स्थावर जीव निकाय मनुष्य के जीवन को आगे बढाते हैं। हम इनके द्वारा किये जाने वाले उपकारों को समझ लें तो कम से कम उन्हें अपनी ओर से अनावश्यक वेदना नहीं देंगे।

चूंकि उनके अस्तित्व के प्रति हम न विश्वस्त है और न आश्वस्त। अत: व्यर्थ ही मात्र आदत या लापरवाही के कारण उन्हें कष्ट दे देते हैं। जैसे कोई व्यक्ति चलते हुए पत्थर उठाकर पानी में फैंक देता है या पेड–पौधों की पत्तियाँ तोड देता है। अगर उससे पूछे कि इसका कारण क्या था तो उत्तर होगा "योंहि"।

हमारी जिंदगी इसीलिये गतिशील नहीं है कि हमारा अपना आयुष्य कर्म कारण है। बल्कि उनका भी उपकार है जो सावधानी एवं जागरूकता से बस, गाडी चलाते हैं। अगर चालक असावधानी से गाडी चलाता तो संभव था कि हम दुर्घटना के शिकार हो जाते। ऐसा एक बस चालक ही नहीं, अगणित व्यक्ति हैं जो जाने अनजाने हमारे उपकारी हो जाते हैं।

आवश्यकता है हम सृष्टि की रचना को तथा हमारे अपने जीवन में उपकारी होती छोटी से छोटी एवं बडी से बडी चेतना को ज़ानने एवं समझने का उपक्रम करें।

प्रस्तुत पुस्तक में अनुज मुनि श्री मनितप्रभजी ने अथक पुरूषार्थ द्वारा जीव संबंधी ज्ञान को समग्रता के साथ सरल एवं स्पष्ट भाषा में एक ही स्थान पर परोस कर अहिंसक समाज को एक अनमोल उपहार दिया है।

मेरी कामना है वे सतत् अध्ययनरत रहते हुए तत्त्व संबंधी साहित्य का और अधिक सृजन करें, साथ ही मेरे लिये भी प्रार्थना करें कि मैं भी अप्रमत्त स्थिति को उपलब्ध होकर ज्ञान साधना में आगे बढ़ूं।

विद्युत्प्रभा

साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्री

# बोधामृतम्..............

जिस ग्रन्थ में जीव तत्त्व की विचारणा, विवेचना या मीमांसा हो, वह जीवविचार है। इस प्रकार ग्रंथ के नाम से ही इसकी विषय-वस्तु स्पष्ट हो जाती है। जीव विचार प्रकरण में विवेच्य विषय है-जीव।

जिनेश्वर परमात्मा ने जगत् के स्वरूप का विवेचन करते हुए कहा-षड्द्रव्यमय जगत् है। नौ तत्त्वों तथा षड्द्रव्यों में जीव तत्त्व या जीव द्रव्य ही मुख्य है। अगर संक्षेप में कहा जाय तो इस दृश्यमान जगत् में हमें केवल प्रकार के तत्त्व ही दृष्टिगोचर होते हैं- एक जीव, दूसरा अजीव। इन दो तत्त्वों के सिवाय तीसरा कोई तत्त्व इस जगत् में है ही नहीं।

जीव और अजीव, इन दोनों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, भिन्न स्वरूप और गुणधर्म है। जिनमें इच्छा, भावना, ज्ञान-दर्शन तथा सुख-दुख का संवेदन है, वे जीव हैं। इससे विपरीत जिनमें सुख-दुःखादि की अनुभूति नहीं, ज्ञान-दर्शनादि की शक्ति नहीं, वे अजीव हैं।

इस लोक में अनंत जीव है। जो जीव अजीव के संयोग से मुक्त हो गये, वे सिद्ध बन गये। जो अजीव के संयोग से युक्त हैं, वे जीव संसारी हैं। यद्यपि जीव और अजीव दोनों सर्वथा स्वतंत्र द्रव्य है, सर्वथा पृथक् स्वभाव वाले हैं तथापि कर्मवशात् जीव पुद्गल-परमाणुओं से बने जड शरीर में एक होकर, एक रसीभाव, समरसी भाव होकर जीता है और यही संसार है। जब शरीर रूप अजीव या जड का संयोग सम्बन्ध टूटता है, जब जीव कर्मपुद्गल से मुक्त बनता है तब अशरीरी अवस्था, सिद्धावस्था, मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है।

परंतु इस सिद्धावस्था को प्राप्त करने से पूर्व जीव अनादिकाल से अनन्तकाल तक इस संसार में रहा है, अनन्तानन्त जन्म और पर्यायों को प्राप्त किया है। इस

परिभ्रमणशील और संसरणशील संसार में जीव की विकास यात्रा कहाँ से प्रारंभ होती है, उसका क्रमिक विकास कैसे होता है और अपने अंतिम लक्ष्य साध्य सिद्धतत्व को वह कैसे उपलब्ध होता है, इसका क्रमबद्ध, युक्तियुक्त विवेचन इस जीवविचार प्रकरण में है।

प्रस्तुत प्रकरण की द्वितीय गाथा से ही जीव के भेद-प्रभेद और स्वरूप का विशद विवेचन प्रारंभ हो जाता है। जीव का अंतिम पडाव सिद्धशिला पर स्थित होना है तो इसका प्रारंभिक निवास स्थान निगोद है।

जीव की यात्रा निगोद से ही प्रारंभ होती है और सिद्ध न बने, वहाँ तक अविरत-अविराम चलती है। बल्कि यों कहा जाय तो ज्यादा युक्तियुक्त होगा कि निगोद से पहले कुछ नहीं और सिद्ध बनने के बाद भी कुछ नहीं। ये दोनों ही अवस्थाएँ एक रस्सी के दो किनारों की तरह है। पहला किनारा निगोद है तो अंतिम किनारा मुक्ति।

जब एक जीव सिद्धत्व को उपलब्ध होता है तो एक जीव निगोद रूप अव्यवहार राशि से निकलकर व्यवहार राशि में प्रविष्ट होता है। तथा साधारण वनस्पति की सूक्ष्मतम अवस्था से स्थूल अवस्था को प्राप्त करता है। पांच स्थावर काय रूप एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के योग्य शरीर को धारण करता है।

इस परिभ्रमण में भव्य जीव जब शुक्लपक्षी होकर सुलभ बोधि बनता है तब प्रयत्नपूर्वक सिद्धतत्व की दिशा में गतिशील बनता है। वह आत्मा क्रमशः गुणस्थानकों में चढता हुआ, गुणश्रेणी का आरोहण कर जब समस्त कर्मपुद्गलों को अपनी आत्मा से निर्जरित कर देता है तब सिद्धत्व, बुद्धत्व और परम शुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है। निगोद से सिद्ध बनने तक का प्रबल पुरूषार्थ जीव की तलहटी से शिखर तक पहुँचने की साहस भरी यात्रा है।

५१ गाथाओं से युक्त जीवविचार प्रकरण भले ही लघुकाय है परंतु इसकी विषय वस्तु इतनी विशद और विस्तृत है कि इस पर जितना लिखा जाय, उतना कम है। प्रस्तुत प्रकरण में जीव के सूक्ष्म भेद से लेकर उनके स्वरूप, आयुष्य, प्राण, योनि और स्वकाय स्थिति आदि का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इसके अध्ययन से जैनदर्शन और तत्त्वज्ञान का मौलिक परिचय आसानी से हो जाता है।

अनुज मुनि मनितप्रभसागरजी म. ने जीवविचार प्रकरण का सार्थ हिन्दी विवेचन

ही प्रस्तुत नहीं किया है, उन्होंने इस अर्धशतक लघुकाय ग्रंथ पर ९००–९५० प्रश्नों की विस्तृत हारमाला भी साथ जोड दी है।

शब्दार्थ, भावार्थ, विषय–वस्तु का विवेचन इतना सहज, सरल और सुबोधगम्य है कि सामान्य जिज्ञासु भी इसे पढकर जीव के स्वरूप–भेद–प्रभेद का ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सकता है।

जीवविचार प्रश्नोत्तरी ने प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता और मूल्यवत्ता में शतगुणित वृद्धि कर दी है। इस प्रश्नोत्तरी के माध्यम से लेखक ने हर छोटे–छोटे प्रश्नों को तो समाहित किया ही है पर गहरे एवं तात्त्विक प्रश्नों का समाधान भी विस्तार से किया है।

बंधु मुनि मनितप्रभजी का एकलक्षी और अप्रतिम पुरूषार्थ प्रस्तुत पुस्तक में स्पष्ट झलक रहा है। इस ग्रंथ का संपूर्ण लेखन उन्होंने केवल ४ माह में करके सबको जैसे चमत्कृत और हतप्रभ ही कर दिया है।

मेरी स्मृति में तरंगित हो रहा है वैशाख शुक्ला १२, बुधवार का वह शुभ दिन, जब इस पुस्तक की लेखन यात्रा प्रारंभ हुई थी। आज के दिन ही प्रातः हमने पार्श्वमणितीर्थ, आदोनी से पूज्य गुरूदेव के साथ पूना–मुंबई हेतु चातुर्मास के लक्ष्य से विहार किया था। मेरे गुरूवर्या श्री पू. बहिन म. पूर्व संध्या को ही हमसे विपरीत अर्थात् बेंगलोर की दिशा में प्रस्थित हुए थे।

छोटी–सी स्कूल वैशाख माह की प्रचंड गर्मी.., चिलचिलाती धूप... बरसती आग... थपेडे मारती लू...! उस दोपहर में स्वाध्याय प्रिय मुनि ने कुछ विश्राम करने की बजाय कलम उठाई और जीवविचार की प्रथम गाथा का विवेचन करते हुए इसके लेखन का श्रीगणेश कर दिया।

पदयात्रा ने ज्यों–ज्यों रफ्तार पकडी...कलम भी उसी रफ्तार से चलती रही। विहार यात्रा के साथ बिना रूकावट और बिना थकावट के वे अविराम–अविश्राम लेखन कार्य करते रहे। विहार चाहे जितना उग्र और लम्बा रहा हो, चाहे जितने लोगों का आवागमन और व्यस्तता भरा वातावरण रहा हो पर इन समस्त बाह्य अनुकूल वा प्रतिकूल स्थितियों से वे सदा अप्रभावित रहे। अपने संकल्प को निष्ठापूर्वक साकार करने में ही व्यस्त और मस्त रहे।

एक ही लगन....एक ही ललक...! न कोई बात.... न कोई वार्तालाप! न

हँसी... न मजाक ! केवल और केवल स्वाध्याय। विहार के दौरान कण्ठस्थ स्वाध्याय तो विश्राम के दौरान लेखन से स्वाध्याय।

अभी माह भर पूर्व ही उनके द्वारा संकलित ६५० पृष्ठ के "प्यासा कंठ मीठा पानी" नामक विशालकाय प्रश्नोत्तर ग्रंथ का विमोचन हुआ। वह ग्रंथ भी अपने आप में अमूल्य और अतुलनीय है जो उनके श्रमसाध्य अथक पुरूषार्थ का उजला हस्ताक्षर है।

मैं उनके इस असाधारण ज्ञान-दर्शन-चारित्रमय जीवन से गौरवान्वित तो हूँ ही लेकिन उससे भी ज्यादा मैं गद्‌गद हूँ उनकी अप्रमत्तता पर ! अभिभूत हूँ उनकी आत्मलक्षी संकल्प-प्रतिबद्धता पर ! आश्चर्यचकित हूँ उनकी अप्रतिम ज्ञानसाधना पर !

मेरे लिये यह परम आह्लाद और गर्व का विषय है कि वे भी उसी कोंख में पले हैं, जिस कोंख में मैं पली हूँ। उम्र की अपेक्षा वे मुझ से लगभग ६ वर्ष छोटे हैं। और संयम पर्याय की अपेक्षा से भी उन्हें दीक्षित हुए मात्र ५ वर्ष ही हुए हैं पर उनकी आचार पालन में दृढता, संयम तथा गुर्वाज्ञा के पालन में तत्परता एवं स्वाध्याय - अध्ययन में जागरूकता मेरे लिये आदर्श और प्रेरणा का पाथेय बन गयी है।

इस लघुवयी मेरे अनुज मुनि ने अपने आचार-विचार और व्यवहार की जिन ऊँचाईयों का स्पर्श किया है, निश्चित् रूप से यह उनके उज्वल और स्वर्णिम भविष्य का शुभ संकेत है।

जीवविचार की यह अर्थपूर्ण सारगर्भित विवेचना एवं प्रश्नोत्तरी तत्त्वजिज्ञासु, ज्ञानपिपासु, अध्ययनरसिक भव्य आत्माओं के स्वाध्याय का प्रमुख आधार बनेगी। इसके पठन से जीवमात्र के प्रति यदि करूणा मैत्री भावना उपजेगी तो वह भावदया निश्चित ही स्वयं के उद्धार और निस्तार का आधार बनेगी।

इसके स्वाध्याय से जीव द्रव्य विषयक ज्ञान प्राप्त कर हम आत्मा के श्रद्धान में दृढ बने। इसी शुभभावना के साथ...।

भ. महावीर निर्वाण — विद्युत् गुरू चरणाश्रिता

मुंबई- २००६ — साध्वी नीलांजना

साध्वी डॉ. नीलांजना श्री

# तत्त्वामृतम्...

जीव विचार प्रकरण जीव तत्त्व प्रधान प्रकरण है जिसमें जीव तत्त्व का विशिष्ट विवेचन प्रस्तुत हुआ है। विवेचन गहरा एवं सरस होने से प्रस्तुत प्रकरण का स्वाध्याय प्रत्येक स्वाध्यायी के अनिवार्य-सा हो गया है।

प्रत्येक भव्य जीव को सिद्धशिला के आरोहण का अधिकार है। अहिंसा एवं करूणा की नींव पर ही मोक्ष रूपी महल का निर्माण होता है और जीव तत्त्व के ज्ञान की शिला पर ही अहिंसा एवं करूणा की भव्य इमारत निर्मित होती है।

पूज्य मुनि श्री मनितप्रभसागरजी म.सा. की दीक्षा पूर्व जब वे अशोक के नाम से हमारी ज्ञानशाला में तत्त्वज्ञान का स्वाध्याय कर रहे थे, तभी मुझे उनके समुज्ज्वल भविष्य के बारे में पूर्वानुमान हो गया था।

उनकी दीक्षा हुए अभी मात्र ५ वर्ष हुए हैं। पर इन पाँच वर्षों का लेखा-जोखा देखा जाय तो मेरा अनुमान सत्य प्रतीत हो रहा है।

वे संयम पालन में अत्यन्त दृढ हैं तो स्वाध्याय, चिंतन और लेखन में भी उतने ही अप्रमत्त हैं। मैं उन्हें हमेशा एक जिज्ञासु मुनि के रूप में देखता हूँ और अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

मैं इसके लिये गौरव का भी अनुभव करता हूँ कि वे मेरे छात्र रह चुके हैं।

जीव विचार पर लेखन प्रारंभ करने से पूर्व ही मुझे उन्होंने कह दिया था कि संपादन आपको ही करना होगा। मैं उनके आत्मीयता एवं स्नेह से भीगे आग्रह को अस्वीकार नहीं कर सका। मैंने उनके प्रस्ताव को हृदय से थाम लिया।

वैसे भी मैं पूज्य उपाध्यायश्री, पूज्य बहिन म. आदि से अत्यन्त भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ हूँ। इसलिये इन्कार का तो सवाल ही नहीं हो सकता था।

मुझे इस पुस्तक के संपादन में अत्यन्त प्रसनन्ता का अनुभव हुआ है। इसमें उन्होंने

जीव तत्त्व का जो विवेचन प्रस्तुत किया है, वह उनकी ज्ञानगरिमा का परिचायक है। साथ ही इन्होंने विस्तृत प्रश्नोत्तरी प्रस्तुत करके इस प्रकरण को अत्यन्त सरल एवं पूर्ण बना दिया है।

इस कार्य से उन्होंने जिनशासन की महान् सेवा की है। मैं कामना करता हूँ कि मुनिश्री इस प्रकार के ग्रन्थ लगातार लिखते रहे और जिन श्रुत भंडार को अपनी अनमोल कृतियों से सजाते रहे।

**नरेन्द्रभाई कोरडिया**
प्राध्यापक
श्री नाकोडा जैन ज्ञानशाला
नाकोडाजी तीर्थ

# श्रुतामृतम्..............

परमात्मा महावीर का दर्शन आत्म ज्ञान का दर्पण है। एक ऐसा दर्पण जिसमें निहारकर हम जीवन और दृष्टि को मांज सकते हैं।

एक भी ऐसा द्रव्य, पर्याय, काल, पदार्थ अवशिष्ट नहीं रहा जो परमात्मा के ज्ञान में उद्भासित न हुआ हो। वह ज्ञान अनंत था, असीम था। सारा जगत् उसमें समाविष्ट हो गया।

यद्यपि परमात्मा अनंत ज्ञान-आलोक स्वामी थे पर अनंत को लुटा पाना संभव नहीं था। अनंत को पाने के लिये अनंत का साक्षात्कार ही करना होता है।

परमात्मा ने जगत पर करूणा बरसाते हुए जितना ज्ञान का प्रकाश दिया, वह काल और स्थितियों के थपेडे खाता हुआ कम होता गया।

फिर भी आज हमारे पास इतना ज्ञान-प्रकाश मौजूद अवश्य है जिससे हम अपनी क्रिया, चर्या, जीवन, आचरण, दृष्टि को सुधारकर जीवन में नवरस भर सकते हैं। श्रुत गंगा के तल का जल अवश्य कम हुआ है परंतु आज भी वह मीठा है और हमारी प्यास को बुझाने में पूर्णतः समर्थ है, बशर्ते हम उसे कंठ से नीचे उतारने का प्रयत्न करें। आगम ज्ञान में आज भी इतनी शक्ति विद्यमान है कि उससे हम अपनी साधना को सिद्धता के महान् शिखर पर प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

परमात्मा की देशना का एक मात्र लक्ष्य यही था कि जीव जीव-तत्त्व का स्वरूप समझकर आत्मतुला के सिद्धांत को जीवन में साधने का प्रयत्न करे। आत्मतुला का सिद्धांत आत्मैक्य के धरातल पर विकसित होता है और उसे साधने के लिये बोधपूर्ण शोध अत्यन्त अनिवार्य है।

जड और चेतन का भेदविज्ञान समझ लेना ही हमारी समस्त धर्मक्रिया का आधार है। हमारी तपाराधना और साधना का लक्ष्य बिंदु एक ही है कि हम शाश्वत और

नश्वर का गहराई से अनुभव कर चेतना की शुद्धता के शिखर का स्पर्श कर लें।

हमारे पास अभी पैंतालीस आगमों की संपदा है। हर आगम किसी न किसी रूप में चैतन्य जगत और जड जगत का भेद समझाने का ही प्रयत्न करता हुआ नजर आता है।

वह षड्-द्रव्यों की प्ररूपणा के द्वारा हो या नव-तत्त्व के माध्यम से हो। मूल दृष्टिकोण तो एक ही है- जीव आत्म तत्त्व और अनात्म तत्त्व के विज्ञान को समझ ले।

नव तत्त्वों में जीव तत्त्व सबसे महत्त्वपूर्ण है। भगवती सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, जीवाभिगम सूत्रादि अनेक आगमों में जीव तत्त्व का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। जीव के रूप-स्वरूप, गति आगति, उपपात-च्यवन आदि अनेक बिंदुओं पर अत्यंत स्पष्टता से व्याख्या की गयी है परंतु उन्हें पढ पाना और पढकर स्मृति कोष में सुरक्षित रख पाना बहुत दुष्कर कार्य है। इतनी विशाल श्रुत राशि को थामने वाले विरले पुरूष ही होते हैं।

प्रज्ञाशील पुरूष तो फिर भी उनका पारायण करके स्मृति कोष में सुरक्षित कर लते हैं परंतु जिनकी बुद्धि न तो सूक्ष्म है, न तीक्ष्ण है, उनके लिये इन महाग्रंथों का अध्ययन कर पाना बहुत मुश्किल कार्य है। उनका विशाल आकार और सूत्रों की गंभीरता मन में पहले से ही भय उपस्थित कर देती है।

आचार्यों का चिंतन इस दिशा में बहा। सामान्य बुद्धि और जीव तत्त्व को जानने की रूचि रखने वालों को नजर में रखते हुए सरल भाषा में अनेक प्रकरणों की रचना पूर्वाचार्यों ने की।

वर्तमान में जीवतत्त्व का प्रारंभिक अध्ययन हेतु जीव विचार प्रकरण के अध्ययन को प्रथम स्थान प्राप्त है। जैन साहित्याकाश के चमकते सितारे वादिवेताल श्री शांतिसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा रचित इस प्रकरण का इतना महत्त्व है कि यदि इसे तत्त्व महल में प्रविष्ट होने का द्वार कहे तो भी कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

केवल इक्यावन गाथाओं में जीव तत्त्व का विवेचन समाविष्ट होने से जहाँ एक ओर यह प्रकरण संक्षिप्त और सरल है, वहीं दूसरी तरफ इसकी रचना शैली सरस, सुगम होने से सहज ही जिज्ञासु तत्त्व ज्ञान का अमृत प्राप्त कर लेता है।

प्रस्तुत प्रकरण पर खरतरगच्छीय वाचक श्री मेघनंदनजी म. के शिष्य पाठक रत्नाकर जी म. ने पहली टीका रची। दूसरी टीका महोपाध्याय श्री समयसुंदरजी म.सा. ने १६९८ में अहमदाबाद में रची और तीसरी टीका बीकानेर में श्री क्षमाकल्याणजी म. ने १८५० में रची।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर मेरे हृदय का प्रमुदित होना सहज प्रक्रिया है। इस प्रस्तुक के विवेचन में और विशेष रूप से प्रश्नोत्तरी के माध्यम से मुझे जीव पदार्थ की गहराई में उतरने का एवं श्रुतनिधि के नये-नये आयामों स्पर्श करने का जो सौभाग्य प्राप्त हुआ, वह मेरे मन को प्रसन्नता से भरे, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लेखनकाल में अनेक अनछुए एवं अनसुने पहलुओं को समझने एवं जानने का अवसर मिला।

प्रज्ञापना सूत्र के इकतीसवें संज्ञी पद में एक नया तथ्य सामने आता है।

परमात्मा महावीर से गौतमस्वामी ने प्रश्न किया -

- णेयइरयाणं भंते ! किं सण्णी असण्णी नो सण्णी नो असण्णी?

परमात्मा महावीर ने गौतम स्वामी के सम्मुख समाधान प्रस्तुत किया-

गोयमा ! णेरइया सण्णी वि असण्णी वि, णो सण्णी णो असण्णी।

यह संवाद महत्वपूर्ण रहस्य को प्रकट करता है।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया है कि भगवन्! नारकी जीव संज्ञी हैं, असंज्ञी हैं अथवा नो संज्ञी नो असंज्ञी हैं।

गौतम ! नारकी संज्ञी भी हैं, असंज्ञी भी हैं परंतु नो संज्ञी नो असंज्ञी नहीं हैं।

यही बात वाणव्यंतर देवों के संदर्भ में भी कही गयी है।

आज नारकी जीव और व्यंतर देव को असंज्ञी कहा जाये तो पंडित भी अचरज में पड जाते हैं कि ये असंज्ञी कैसे हो सकते हैं परंतु सर्वज्ञ महावीर का यह कथन इस बात को प्रस्तुत करता है कि नारकी और व्यंतर देव असंज्ञी भी होते हैं।

आगे समाधान देते हुए परमात्मा ने कहा- जो संज्ञी जीव भवनपति, व्यंतर, नरक में उत्पन्न होते हैं, वे संज्ञी होते हैं और जो असंज्ञी जीव उनमें उत्पन्न होते हैं, वे असंज्ञी होते हैं।

यह विषय इस ग्रन्थ की प्रश्नोत्तरी में शामिल नहीं किया है। उसमें तो वर्तमान में

प्रचलित धारणा के अनुसार भवनपति, व्यंतर, नारकी को संज्ञी ही माना है।

पुस्तक के निर्माण में मेरी अपनी मौलिक प्रस्तुति नहीं है। संपूर्ण सामग्री मैंने आगमों एवं अनेक ग्रंथों से ली है। यद्यपि मैंने इसे सरल, स्पष्ट एवं पूर्ण बनाने का प्रयास अवश्य किया है। नये-नये तरीकों से प्रश्नोत्तर तैयार करने में मेहनत लगी है।

जिन, जिनोपदिष्ट आगम एवं अतिरिक्त ग्रंथों-पुस्तकों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रस्तुत करता हूँ।

कोई भी पुस्तक अनेक हाथों, मस्तिष्क का स्पर्श करती हुई ही अपने मुकाम को प्राप्त करती है। उसमें किसी की दृश्यादृश्य प्रेरणा होती है तो किसी का आशीर्वाद भी होता है। किसी का सहयोग तो किसी का अपनत्व।

यह पुस्तक भी इन बिंदुओं से अछूती नहीं रही है। पुस्तक लेखन में पूज्य गुरूदेव श्री का शुभाशीष प्राप्त हुआ है तो उनका मार्गदर्शन भी मेरी राह को सुगम बनाने में परम सहयोगी बना है।

और प्रेरणा तो उन्हीं की है पुस्तक के प्रस्तुतीकरण में। इस प्रेरणा को एक तरह से अनुग्रह कहिये या आदेश! कुछ भी समझिये पर है गुरूदेव श्री की अबोध शिष्य पर वात्सल्य भरी कृपा। उनकी प्रेरणा रही कि तुम जीव विचार प्रकरण की पुस्तक का निर्माण करो जिसमें सरल हिंदी विवेचन हो और एक प्रश्नोत्तरी का खण्ड भी हो जो जीव तत्त्व से संबंधित समस्त जिज्ञासाओं को समाधान दे सके।

ग्रीष्म ऋतु के थका देने वाले लम्बे विहार और पठन-पाठन की व्यस्तता के मध्य समय निकालकर प्रकरण का लेखन कर पाना थोड़ा मुश्किल लग रहा था। बात आयी-गयी, हो गयी और इस बीच लम्बा वक्त व्यतीत हो गया।

पार्श्वमणि तीर्थ आदोनी का कार्यक्रम संपन्न कर हम आगे के विहार में थे। एक दिन पुन: गुरूदेव श्री ने लेखन के संदर्भ प्रेरणा दी और वह प्रेरणा लेखनी को प्रवाहमान करने का माध्यम बन गयी।

मन संकल्पबद्ध हो गया कि शीघ्र ही इस कार्य को संपन्न करना है। मैं तन-मन से लेखन में लग गया और लगभग तीन माह में कार्य पूरा हो गया।

जीव विचार प्रश्नोत्तरी का निर्माण करने से पूर्व लग रहा था कि प्रकरण छोटा-

सा है, इस पर दो सौ से अधिक प्रश्नोत्तर का खण्ड क्या बनेगा ! परंतु ज्यों ज्यों मैं लिखता गया, नये-नये विचार उद्भूत होते गये...बुद्धि के द्वार खुलते गये। प्रश्न बनते गये और समाधान मिलते गये।

उन दिनों में मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जहाँ मुझे दो सौ प्रश्न बनाने भी कठिन प्रतीत हो रहे थे, वहाँ प्रश्नोत्तर की संख्या नौ सौ तक पहुँच गयी, तो जरूर कोई न कोई इसमें राज छिपा है। कोई शक्ति मेरे मानस में ऊर्जा भर रही है और कार्य तेजी से हो रहा है।

गुरू कृपा बिना कोई भी लक्ष्य मंजिल को तय नहीं कर पाता है। इस जटिल कार्य में मुझे गुरूदेव का दिशा निर्देश मिला तो समाधान भी उपलब्ध हुए।

मैं कृतज्ञता को अभिव्यक्ति का स्वर दूं, यह उनके कृपा प्रसाद को तोलने का अनुचित प्रयास होगा। हर शिष्य का यही मनोभाव होता है कि जीवन के हर पथ पर सर्वदा-सर्वत्र गुरूदेव की शीतल छाँव मिलती रहे, उस मीठी शीतलता के तले अध्यात्म की यात्रा के नये आयाम उद्घाटित होते रहे। बस ! मैं भी इसी छाँव की शीतलता की याचना प्रस्तुत करता हुआ अनुग्रह एवं आत्म प्रेम की कामना करता हूँ।

परम आदरणीया बहिन म. साध्वी डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा. एवं आदरणीया अग्रजा साध्वी डॉ. नीलांजनाश्रीजी म. ने आवश्यक संशोधन कर पुस्तक के मूल्य में अभिवृद्धि की है। लेखन यात्रा के हर पडाव पर उनके आत्मीय अवदान की सदैव कामना करता हूँ।

कृतज्ञता ज्ञापन के इन क्षणों में परम आत्मीय विद्वद्वर्य श्री नरेन्द्रभाई कोरडिया का जिक्र किये बिना कैसे रह सकता हूँ!

एक तरह से मेरी तत्त्व ज्ञान की यात्रा का शुभारंभ उनसे ही हुआ। उस यात्रा में प्रेरणा छिपी है बहिन म.सा. की। उन्होंने मेरी आँखों से बहते वियोग के आँसूओं को अनदेखा कर आत्मीय नरेन्द्रभाई के पास रखा। वहाँ से शुरू हुई मेरी तत्त्व-श्रुत की साधना और उपासना आज इस मुकाम तक पहुँची है।

पुस्तक लेखन के प्रारंभ में ही मैंने उन्हें कह दिया था कि लेखन तो हो जायेगा पर संपादन तो आपको ही करना है। तो उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा- मेरी ओर से आप

बेफ्रिक रहिये। अपेक्षित सहयोग सदा उपलब्ध है आपको।

वे तत्त्व ज्ञान के धनी पुरूष हैं। यद्यपि लोग कहते हैं कि वे बहुत कठोर हैं परंतु मैंने उन्हें निकटता से देखा है और मैं यह निःसंकोच कह सकता हूँ कि वे बाहर से जितने कठोर एवं तेज है, भीतर से उतने ही कोमल, सरल एवं मीठास से भरे है।

उन्होंने अपनी विशिष्ट प्रज्ञा से श्रम साध्य संपादन कर पुस्तक के गौरव में अभिवृद्धि की है। समयाल्पता एवं व्यस्तता के बीच जो उनका प्रेम भरा सहयोग मिला, वह आजीवन मेरे स्मृति कोष में सुरक्षित रहेगा।

उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन कर शब्दों के ससीम दायरे में उनके असीम आत्मीय भावों को कैद कर मैं अपने आपको गलत ही साबित करूंगा।

वे इसी प्रकार शासन की सेवा करते रहे, उनकी आत्मीयता सदैव प्राप्त होती रहे और साधना के द्वारा वे सिद्धत्व को उपलब्ध हो, यह मेरी अरिहंत देव से अभ्यर्थना है।

साध्वी श्री शासनप्रभाश्रीजी म. एवं त्याग एवं वैराग के धनी शशिजी गोलेच्छा कुनूर का स्नेहिल सहयोग मेरे हृदयांगन में सदैव फूलों की भाँति खिलता रहेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में अप्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष, हर सहयोगी के प्रति मेरी मंगलभावना है।

जीव विचार प्रकरण के माध्यम से जीव जड और चेतन का, जीव और अजीव का भेद विज्ञान समझता हुआ अहिंसा एवं श्रुत उपासना के द्वारा आत्म-शुद्धि की सद्बुद्धि प्राप्त करें। सुज्ञ पाठक अंधकार से प्रकाश की ओर एवं मिथ्या से विश्वास की ओर बढे और क्रमशः शिवत्व एवं सिद्धत्व की सीढियाँ चढते हुए निर्वाण पद को प्राप्त करे। यही प्रकरण अध्ययन का परिणाम है और लेखन का सार्थक मूल्य है।

मणि चरण रज

मुनि मनितप्रभसागर

# अनुक्रमणिका


## अनुभूति अभिव्यक्ति

पृष्ठ संख्या

- कृपामृतम्
- प्रज्ञामृतम्
- बोधामृतम्
- तत्त्वामृतम्
- श्रुतामृतम्

## अनुवाद

- श्री जीव विचार प्रकरण मूल १–४
- गाथा–अन्वय–संस्कृत छाया–शब्दार्थ–भावार्थ एवं विशेष विवेचन ५–१२२

## जीव विचार प्रश्नोत्तर

- प्रारंभिक प्रश्नोत्तर १२३
- एकेन्द्रिय विवेचन खण्ड १३९
- विकलेन्द्रिय विवेचन खण्ड १५५
- नारकी विवेचन खण्ड १६०
- पंचेन्द्रिय तिर्यंच विवेचन खण्ड १७८
- मनुष्य विवेचन खण्ड १८६
- देव विवेचन खण्ड १९५
- जीव के ५६३ भेदों का विशिष्ट विवेचन २२७
- सिद्ध विवेचन खण्ड २३९
- काल विवेचन खण्ड २४५
- माप विवेचन खण्ड २५६
- राजलोक विवेचन खण्ड २५७
- परिभाषा खण्ड २६४

# ।। श्री जीव विचार प्रकरण मूल ।।

भुवण पईवं वीरं, नमिऊण भणामि अबुहबोहत्थं ।
जीवं सरूवं किंचिवि, जह भणियं पुव्वसूरीहिं ।।१।।
जीवा मुत्ता संसारिणो य, तस थावरा य संसारी ।
पुढवी जल जलण वाउ, वणस्सई थावरा नेया ।।२।।
फलिह-मणि-रयण विद्दुम-हिंगुल-हरियाल-मणसिल-रसिंदा ।
कणगाई धाऊ सेढी वन्निय-अरणेट्टय- पलेवा ।।३।।
अब्भय तूरी ऊसं मट्टी पाहाण जाईओ-णेगा ।
सोवीरंजण-लुणाइ पुढवी भेयाइ इच्चाइ ।।४।।
भोमंतरिक्खमुदगं ओसा हिम करग हरितणू महिया ।
हुंति घणोदहिमाई भेया णेगा य आउस्स ।।५।।
इंगाल जाल मुम्मुर उक्कासणि कणग विज्जुमाइया ।
अगणि जियाणं भेया नायव्वा निउण बुद्धीए ।।६।।
उब्भामग उक्कलिया मंडली-मह-सुद्ध-गुंजवाया य ।
घण तणु वायाइया भेया खलु वाउकायस्स ।।७।।
साहारण-पत्तेया वणस्सइ-जीवा दुहा सुए भणिया ।
जेसिमणंताणं तणू एगा साहारणा ते उ ।।८।।
कंदा-अंकुर-किसलय-पणगा-सेवाल-भूमिफोडा य ।
अल्लय तिय-गज्जर-मोत्थ-वत्थुला-थेग-पल्लंगा ।।९।।
कोमल-फलं च सव्वं, गूढ सिराइं सिणाइ पत्ताईं ।
थोहरि कुआरि गुग्गुलि गलोय पमुहाइ छिन्नरुहा ।।१०।।
इच्चाइणो अणेगे हवंति भेया अणंत कायाणं ।
तेसिं परिजाणणत्थं लक्खण मेयं सुए भणियं ।।११।।
गूढ-सिर-संधि-पव्वं सम-भंगमहीरगं च छिन्नरूहं ।
साहारणं सरीरं तव्विवरियं च पत्तेयं ।।१२।।

एग सरीरे एगो जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ।
फल फूल छल्लि कट्ठा मूलग पत्ताणि बीयाणि ॥१३॥
पत्तेय-तरुं मुत्तुं पंचवि पुढवाइणो सयललोए ।
सुहमा हवंति नियमा अंतमुहुत्ताऊ अद्दिस्सा ॥१४॥
संख कवड्डय गंडुल जलोय-चंदणग अलस लहगाइ ।
मेहरि किमि पूयरगा बेइन्दिय माइवाहाइ ॥१५॥
गोमी मंकण जूआ पिपीलि उद्देहिया य मक्कोडा ।
इल्लिय घय मिल्लीओ सावय गोकीड जाइओ ॥१६॥
गद्दहय चोरकीडा, गोमय कीडा य धन्नकीडा य ।
कुंथु गोवालिय इलिया तेइन्दिय इन्दगोवाइ ॥१७॥
चउरिन्दिया य बिच्छू ढिंकुण भमरा य भमरिया तिड्डा।
मच्छिय - डंसा मसगा, कंसारी कविल डोलाइ ॥१८॥
पंचिंदिया य चउहा नारय तिरिया मणुस्स देवा य ।
नेरइया सत्तविहा, नायव्वा पुढवी भेएणं ॥१९॥
जलयर थलयर खयरा तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य ।
सुसुमार मच्छ कच्छव गाहा मगरा य जलचारी ॥२०॥
चउपय उरपरिसप्पा भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा
गो-सप्प नउल पमुहा बोधव्वा ते समासेणं ॥२१॥
खयरा रोमयपक्खी चम्मयपक्खी य पायडा चेव ।
नरलोगाओ बाहिं समुग्ग पक्खी वियय पक्खी ॥२२॥
सव्वे जल थल खयरा, समुच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ।
कम्माकम्मग भूमि, अंतरदीवा मणुस्सा य ॥२३॥
दसहा भवणाहिवइ, अट्ठविहा वाणमंतरा हुंति
जोइसिया पंचविहा दुविहा वेमाणिया देवा ॥२४॥
सिद्धा पनरस भेया तित्थातित्थाइ सिद्ध भेएणं ।
एए संखेवेणं जीव विगप्पा समक्खाया ॥२५॥

एएसिं जीवाणं सरीरमाऊ ठिइ सकायम्मि ।
पाणा जोणि पमाणं जेसिं जं अत्थि तं भणिमो ॥२६॥
अंगुल असंख-भागो सरीरमेगिंदियाणं सव्वेसिं ।
जोयण सहस्स-महियं नवरं पत्तेय-रुक्खाणं ॥२७॥
बारस जोयण तिन्नेव, गाउआ जोयणं च अणुक्कमसो ।
बेइन्दिय तेइन्दिय चउरिन्दिय देह-मुच्चत्तं ॥२८॥
धणुसय पंच पमाणा नेरइया सत्तमाइ पुढवीए ।
तत्तो अद्धद्धूणा नेया रयणप्पहा जाव ॥२९॥
जोयण सहस्स माणा मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ।
धणुह-पहुत्तं पक्खिसु भुअचारी गाउअ-पहुत्तं ॥३०॥
खयरा धणुह-पहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयण-पहुत्तं ।
गाउअ-पहुत्त-मित्ता समुच्छिमा चउप्पया भणिया ॥३१॥
छच्चेव गाउ आइं चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।
कोस तिगं च मणुस्सा, उक्कोस सरीर माणेणं ॥३२॥
ईसाणंत सुराणं रयणीयो सत्त हुंति उच्चत्तं ।
दुग-दुग-दुग-चउ-गोविज्जणुत्तरेक्किक्क परिहाणी ॥३३॥
बावीसा पुढवीए सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ।
वास सहस्सा दस तरु-गणाणं तेउ तिरत्ताउ ॥३४॥
वासाणि बारसाऊ, बेइन्दियाणं तेइन्दियाणं तु ।
अउणापन्न - दिणाई चउरिंदीणं तु छम्मासा ॥३५॥
सुर-नेइयाण ठिई उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ।
चउप्पय तिरिय-मणुस्सा तिन्नि य पलिओवमा हुंति ॥३६॥
जलयर - उर-भुयगाणं, परमाऊ होई पुव्व-कोडीओ ।
पक्खीणं पुण भणियो असंखभागो य पलियस्स ॥३७॥
सव्वे सुहुमा साहारणा य समुच्छिमा मणुस्सा य ॥
उक्कोस जहन्नेणं अंतमुहुत्तं चिय जियंति ॥३८॥
ओगाहणाउ-माणं, एवं संखेवओ समक्खायं ।

जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस-सुत्ताउ ते नेया ॥३९॥
एगिंदिया य सव्वे असंख उस्सपिणी सकायम्मि ।
उववज्जंति चयंति य अणंतकाया अणंताओ ॥४०॥
संखिज्ज-समा विगला, सत्तट्ठ-भवा पणिंदि-तिरि मणुआ ।
उववज्जन्ति सकाए नारय देवा य नो चेव ॥४१॥
दसहा जिआण पाणा, इन्दिय-ऊसास-आउ-बल-रुवा ।
एगिंदिएसु - चउरो, विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ॥४२॥
असन्नि-सन्नि पंचिदिएसु, नव-दस कमेण बोधव्वा ।
तेहिं सह विप्पओगो जीवाणं भण्णए मरणं ॥४३॥
एवं अणोरपारे संसारे सायरम्मि भीमम्मि ।
पत्तो अणंतखुत्तो-जीवेहिं अपत्त-धम्मेहिं ॥४४॥
तह-चउरासी लक्खा, संखा जोणीण होइ जीवाणं ।
पुढवाइणं चउण्ह पत्तेयं सत्त सत्तेव ॥४५॥
दस पत्तेय-तरुणं चउदस लक्खा हवंति इयरेसु ।
विगलिंदिएसु दो दो, चउरो पंचिंदि तिरियाणं ॥४६॥
चउरा-चउरो नारय-सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ।
संपिंडिया य सव्वे, चुलसी लक्खाउ जोणीणं ॥४७॥
सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ-कम्मं न पाण-जोणीयो ।
साइ-अणंता तेसिं ठिई जिणिंदागमे भणिया ॥४८॥
काले अणाई-निहणे जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ ।
भमिया भमिहिंति चिरं जीवा जिण-वयणमलहंता ॥४९॥
ता संपइ संपत्ते मणुअत्ते दुल्लहे वि सम्मत्ते ।
सिरि-संति-सूरि-सिट्ठे, करेह भो उज्जमं धम्मे ॥५०॥
एसो जीव वियारो संखेवरुईण जाणणा हेऊ ।
संखित्तो उद्धरियो रुद्दाओ सुय - समुद्दाओ ॥५१॥

॥ इति श्री जीव विचार प्रकरणम् ॥

# जीव विचार प्रकरण

## मंगलाचरण, विषय, संबंध, प्रयोजन और अधिकारी

### गाथा

**भुवण-पईवं वीरं, नमिऊण भणामि अबुहबोहत्थं ।**
**जीवं-सरूवं किंचिवि, जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥१॥**

### अन्वय

भुवण-पईवं वीरं नमिऊण जह पुव्वसूरीहिं भणियं किंचिवि जीव-सरूवं अबुह-बोहत्थं भणामि ॥१॥

### संस्कृत छाया

भुवन प्रदीपं वीरं नत्वा, भणामि अबुध बोधार्थम् ।
जीव स्वरूपं किंचिदपि यथा भणितं पूर्वसूरिभिः ॥१॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| भुवण - भुवन, लोक (में) | पईवं - प्रदीप, दीपक (के समान) |
| वीरं - महावीर स्वामी को | नमिऊण - नमस्कार-प्रणाम करके |
| भणामि - कहता हूँ । | अबुहबोहत्थं - अबोध-अज्ञानी जीवों के बोध के लिये । |
| जीव-सरूवं - जीव का स्वरूप | जह - जैसा, जिस प्रकार |
| किंचिवि - थोडे कथन में, संक्षेप में | पुव्वसूरीहिं - पूर्वाचार्यों ने |
| भणियं - कहा है, बताया है | |

### भावार्थ

लोक (त्रिभुवन) में दीपक के तुल्य परमात्मा महावीर स्वामी को नमन - वंदन करके अबोध जीवों के बोध-ज्ञान के लिये संक्षेप में जीव तत्त्व का स्वरुप कहता हूँ, जैसा पूवाचार्यों ने बताया है ॥१॥

चित्र : महावीर प्रभु को दीपक की उपमा

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में मुख्य रुप से पांच बातों का वर्णन किया गया हैं-

(१) मंगलाचरण (२) विषय (३) सम्बंध (४) प्रयोजन (५) अधिकारी

**(१) मंगलाचरण** - मंगल + आचरण

मंगल - शुभ , पुण्यकारी, उचित

आचरण - प्रवृत्ति, क्रिया

तीर्थंकर परमात्मा हमारे आदर्श हैं। उनको वंदन/नमन करने से अधिक पुण्यकारी एवं शुभ आचरण और क्या हो सकता है! अत: ग्रंथकार ने त्रिलोक में प्रदीप के समान प्रभु महावीर को वंदन रुपी मंगलाचरण से गाथा का शुभारंभ किया है ।

मंगलाचरण करने से सर्वत्र मंगल ही मंगल होता है। आचरण भी मंगल रूप बन जाता है। मंगलाचरण के परिणाम स्वरुप ग्रंथ रचने वाले, ग्रंथ पढने एवं पढाने वाले के कष्ट नष्ट हो जाते हैं।

**(२) विषय** - गाथा के तीसरे चरण में ग्रंथ का विषय स्पष्ट किया है । प्रस्तुत प्रकरण में संक्षेप में जीव तत्त्व का स्वरुप समझाया गया है ।

**(३) संबंध** - गाथा के चतुर्थ चरण में ग्रंथकार कहते हैं कि यह प्रकरण मैं अपनी कल्पना के आधार पर नहीं रच रहा हूँ। यह प्रकरण परमात्मा महावीर की देशना से संबंधित है। गणधर गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी, श्रुतकेवली भद्रबाहुस्वामी ने प्रभु देशना के अनुरुप जैसा जीव-स्वरुप प्ररुपित किया है, उसी तर्ज/आधार पर मैं यह प्रकरण लिख रहा हूँ ।

(४) **प्रयोजन** - गाथा के दूसरे चरण में प्रस्तुत प्रकरण को रचने का कारण बताया है । जो अज्ञ जीव हैं, जीव के स्वरुप को और उसकी विषय वस्तु को नहीं जानते हैं। उन अज्ञानी, अबोध जीवों की जिज्ञासा को समाहित करने के लिये इस प्रकरण की रचना की गयी है ।

(५) **अधिकारी** - 'अबुह' शब्द का अर्थ दो प्रकार से होता है - (१) जो अज्ञानी हैं (२) जो ज्ञान रूपी प्रकाश को प्राप्त करके अज्ञान रुपी अंधकार को मिटाना चाहते हैं। प्रथम अर्थ 'प्रयोजन' के रूप में गृहण किया गया है और द्वितीय अर्थ के अन्तर्गत इस प्रकरण को पढने के अधिकारीजनों का स्पष्टीकरण है । इस अपार संसार में अनंत जीव हैं पर वे जीव, जो इस प्रकरण से जीव स्वरुप का ज्ञान प्राप्त करके अपनी शंकाओं को समाधान का उजाला देना चाहते हैं । वे इस प्रकरण के अध्ययन के अधिकारी हैं।

## जीव के मुख्य भेद, संसारी एवं स्थावर जीवों के भेद

### गाथा

**जीवा मुत्ता संसारिणो य, तस थावरा य संसारी ।**
**पुढवी-जल-जलण-वाउ, वणस्सई थावरा नेया ॥२॥**

### अन्वय

मुत्ता य संसारिणो जीवा तस य थावरा संसारी पुढवी-जल-जलण वाउ-वणस्सई थावरा नेया ॥२॥

### संस्कृत छाया

जीवा मुक्ताः संसारिणश्च त्रसाः स्थावराश्च संसारिणः ।
पृथ्वी जलं ज्वलनः वायुर्वनस्पतिः स्थावरा ज्ञेयाः ॥२॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| जीवा - जीव (जिसमें चेतना विद्यमान है।) | मुत्ता - मुक्त, जो जन्म-मरण रूपी संसार से मुक्त हो गये हैं । |

| | |
|---|---|
| संसारिणो - संसारी, जो जन्म-मृत्यु रूपी संसार की पीडा से ग्रस्त हैं । | य - और |
| | तस - त्रस |
| थावरा - स्थावर | य - और |
| संसारी - संसारी | पुढवी - पृथ्वीकाय |
| जल - अप्काय, पानी | जलण - तेउकाय, अग्निकाय |
| वाउ - वायुकाय, हवा | वणस्सई - वनस्पतिकाय |
| थावरा - स्थावर | नेया - जानना चाहिये । |

## भावार्थ

मुक्त और अमुक्त (संसारी) दो प्रकार के जीव हैं । त्रस और स्थावर संसारी जीव हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय स्थावर जानने चाहिये ।।२।।

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में जीवों के मुख्य भेद एवं संसारी तथा स्थावर जीवों के भेद बताये गये हैं।

समस्त जीव राशि को मुख्य तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(१) **मुक्त जीव** - वे जीव, जिन्होंने आठों कर्मों का क्षय कर लिया हैं, जन्म-मरण के चक्रव्यूह से मुक्त हो गये हैं, वे मुक्त (सिद्ध) जीव कहलाते हैं।

(२) **संसारी जीव** - वे जीव, जो संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं, अष्ट कर्मों से मुक्त नहीं हुए हैं, वे संसारी जीव कहलाते हैं।

चित्र : मुक्त एवं संसारी जीव

**संसारी जीवों के प्रमुख रुप से दो भेद हैं-**

(१) **त्रस जीव** - वे जीव, जो सुख-दु:ख की परिस्थितियों में इच्छानुसार गमनागमन कर सकते हैं, दौड सकते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, वे त्रस जीव कहलाते हैं । जैसे - देव, मनुष्य, नारकी, हाथी, घोडा, चींटी इत्यादि।

(२) **स्थावर जीव** - वे जीव, जो अनुकूल- प्रतिकूल परिस्थितियों में एक स्थान से अन्य स्थान पर आ- जा नहीं सकते हैं, इच्छानुसार गमनागमन नहीं कर सकते हैं, वे स्थावर जीव कहलाते हैं। जैसे - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय वनस्पतिकाय।

**इन्द्रियों की अपेक्षा से त्रस जीवों को चार भागों में बांटा जा सकता हैं-**

(१) **द्वीन्द्रिय जीव** - जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय और रसनेन्द्रिय रुप दो इन्द्रियाँ होती हैं, वे द्वीन्द्रिय कहलाते हैं ।

(२) **त्रीन्द्रिय जीव** - जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय रुप तीन इन्द्रियाँ होती हैं, वे त्रीन्द्रिय कहलाते हैं ।

(३) **चतुरिन्द्रिय जीव** - जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय रुप चार इन्द्रियाँ होती हैं, वे चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं ।

(४) **पंचेन्द्रिय जीव** - जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोतेन्द्रिय रुप पांच इन्द्रियाँ होती हैं, वे पंचेन्द्रिय कहलाते हैं।

## स्थावर जीवों के भेद

स्थावर जीवों को प्रमुखतया पांच भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

(१) **पृथ्वीकाय** - जिन जीवों की काया पृथ्वी रुप है, वे पृथ्वीकायिक जीव कहलाते हैं। जैसे पाषाण, मिट्टी आदि।

(२) **अप्काय** - जिन जीवों की काया जल/पानी रुप है, वे अप्कायिक जीव कहलाते हैं। जैसे तालाब, नदी आदि का पानी।

(३) **तेउकाय** - जिन जीवों की काया अग्नि रुप है, वे तेउकायिक जीव कहलाते हैं । जैसे अग्निकण, ज्वाला आदि।

**(४) वायुकाय** - जिन जीवों की काया वायु रुप है, वे वायुकायिक जीव कहलाते हैं। जैसे आंधी, गूंजवायु आदि ।

**(५) वनस्पतिकाय** - जिन जीवों की काया वनस्पति रुप है, वे वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं । जैसे फल, फूल, पत्ता आदि ।

उपरोक्त पृथ्वीकायिक आदि पाचों जीवों में स्पर्शनेन्द्रिय रुप एक ही इन्द्रिय होती है । इसलिये ये पांचों भेद एकेन्द्रिय जीवों की श्रेणी में आते हैं।

चित्र : स्थावर जीवों के भेद

चित्र : त्रस एवं स्थावर जीव

## संसारी जीवों के भेद

त्रस → १) द्वीन्द्रिय २) त्रीन्द्रिय ३) चतुरिन्द्रिय ४) पंचेन्द्रिय

स्थावर → एकेन्द्रिय → १) पृथ्वीकाय २) अप्काय ३) तेउकाय ४) वायुकाय ५) वनस्पतिकाय

## प्रथम विभाग

## सकल जीवों के ५६३ भेद

## पृथ्वीकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**फलिह-मणि-रयण विद्दुम-हिंगुल-हरियाल-मणसिल रसिंदा ।**
**कणगाई धाऊ सेढी वन्निय-अरणेट्टय- पलेवा ॥३॥**

### अन्वय

फलिह-मणि-रयण-विद्दुम-हिंगुल-हरियाल-मणसिल-रसिंदा कणगाई धाऊ सेढी वन्निय-अरणेट्टय- पलेवा ॥३॥

### संस्कृत छाया

स्फटिक-मणि-रतन-विद्रुम-हिंगुल-हरिताल-मन:शिला-रसेन्द्रा ।
कनकादयो धातव: खटिका-वणिका अरनेटक: पलेवक: ॥३॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| फलिह - स्फटिक | मणि - चन्द्रकान्त, सूर्यकान्तादि मणि |
| रयण - रतन, हीरा, पन्नादि रत्न | विद्दुम - परवाल, मूंगा |
| हिंगुल - हिंगुल, सिंगरफ, ईंगुर | हरियाल - हरताल, एक प्रकार की विषैली मिट्टी |
| मणसिल - मैनसिल, मन:शिला | रसिंदा - रसेन्द्र, पारा, पारद |
| कणगाई धाऊ - सोना, चांदी, लोहा इत्यादि धातुएँ | सेढी - खटिका, खडिया |
| | अरणेट्टय - अरणेटक |
| वन्निय - सोनागेरु, हरमची, लाल मिट्टी | पलेवा - पलेवक, एक प्रकार का नरम पत्थर |

### भावार्थ

स्फटिक, सूर्यकान्तादि मणि, रतन, मूंगा, हिंगुल, हरताल, मैनसिल,पारा, कनकादि धातुएँ, खडिया, हरमची, अरणेटक,

पलवेक पृथ्वीकायिक जीवों के भेद हैं ।।३।।

**विशेष विवेचन**

उपरोक्त गाथा में पृथ्वीकायिक जीवों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं-

(१) **स्फटिक** - यह एक प्रकार का मूल्यवान् पाषाण है । पारदर्शी (जिसके आर-पार दिखाई देता है) होने से इसके महंगे चश्में, प्रतिमाएँ इत्यादि वस्तुएँ निर्मित होती हैं ।

(२) **मणि - चन्द्रकान्तमणि** - जो चन्द्रमा के समान प्रकाश देता है ।

**सूर्यकान्तमणि** - सूर्य के समान प्रकाश देता है ।

चन्द्रकान्तमणि, सूर्यकान्तमणि आदि पृथ्वीकायिक जीव समुद्र मे उत्पन्न होते हैं।

(३) **रतन** - खान में से निकलने वाले नीलम, माणक, वज्रकर्केतन पन्ने, हीरा आदि ।

(४) **मूंगा** - यह परवाल के नाम से भी प्रसिद्ध है । लाल रंग का होता है और समुद्र में से निकलता है । इसकी प्रतिमाएँ इत्यादि अनेक वस्तुएँ बनती हैं ।

(५) **हिंगुल** - यह लाल रंग की होती है । इसमें से पारा निकलता है ।

(६) **हरताल** - खान में से निकलने वाली यह पीले रंग की विषैली मिट्टी औषधि बनाने एवं अक्षर मिटाने के काम में आती है ।

(७) **मैनसील** - यह एक प्रकार की विषैली वस्तु है जो औषधि आदि निर्माण में प्रयुक्त होती है ।

(८) **पारा** - सफेद वर्ण का यह एक प्रकार का तरल पदार्थ है। अनाज (गेहूँ, ज्वार आदि) के भण्डारों में डाला जाता है जिससे उसमें जीवोत्पत्ति नहीं होती है । दवाईयाँ बनाने में भी यह प्रयुक्त होता है ।

९) **धातु** - सोना, चांदी, जस्ता, लोहा, रांगा, तांबा, एल्युमिनियम, सीसा आदि अनेक प्रकार की धातुएँ।

१०) **खड़िया** - यह एक प्रकार की सफेद मिट्टी है जो लिखने में काम आने चौक बनाने में प्रयुक्त होती है । इसका दीवारें रंगने में भी उपयोग होता है ।

११) **हरमची** - यह सोना, वस्त्रादि रंगने में काम आती है ।

१२) **अरणेट्टय** - एक प्रकार का नरम पत्थर ।

१३) **पलेवक** - नरम पत्थर होते हैं।

## पृथ्वीकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**अब्भय तूरी ऊसं मट्टी पाहाण जाईओऽणेगा ।**
**सोवीरंजण-लुणाइ पुढवी भेयाइ इच्चाइ ॥४॥**

### अन्वय

अब्भय तूरी ऊसं मट्टी पाहाणऽणेगा जाईओ सोवीरंजण-लुणाइ इच्चाइ पुढवी भेयाइ ॥४॥

### संस्कृत छाया

अभ्रकं तूर्यूषं मृत्तिका - पाषाण जातयोऽनेका: ।
सौवीरंजन लवणादय: पृथ्वीभेदा इत्यादय: ॥४॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| अब्भय - अभ्रक | तूरी - तेजंतूरी, फटकडी |
| ऊसं - क्षार, शोरा | मट्टी - मिट्टी (और) |
| पाहाण - पाषाण (की) | जाइओ - जातियाँ |
| (अ)ऽणेगा - अनेक | सोवीरंजन - सुरमा, काजल |
| लुणाइ - नमक | पुढवी - पृथ्वीकायिक (जीवों के) |
| भेयाइ - भेद | इच्चाइ - इत्यादि |

### भावार्थ

अभ्रक, तेजंतूरी, क्षार, मिट्टी और पाषाण की अनेक जातियाँ, सुरमा, नमक इत्यादि पृथ्वीकायिक जीवों के भेद हैं ॥४॥

## विशेष विवेचन

**१४) अभ्रक-** खान से निकलने वाला यह एक प्रकार का चमकीला पदार्थ है । यह पांच रंगों में उपलब्ध होता है । विद्युत् का कुचालक होने से इलेक्ट्रिक-सामग्री निर्माण में इसका बहुत उपयोग होता है ।

**१५) तेजंतूरी** - यह एक विशेष प्रकार की मिट्टी है जिसे लोहे से रस में डालने से लोहा सोना बन जाता है । औषधि निर्माण में भी इसका अच्छा खासा उपयोग होता है।

**१६) क्षार** - इसके अनेक प्रकार होते हैं- नौसागर, शोरा आदि। यह भूमि को ऊसर बना देता है और ऊसर भूमि पर धान्योत्पत्ति नहीं होती है ।

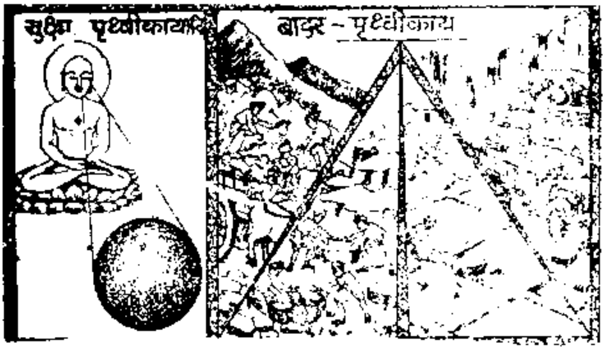


**चित्र : पृथ्वीकायिक जीवों के भेद**

**१७) मिट्टी** - काली, लाल, सफेद, पीली आदि अनेक वर्ण की मिट्टियाँ होती हैं। उनमें भी चिकनी, खुरदरी आदि अनेक प्रकार की मिट्टियाँ होती हैं ।

**१८) पाषाण** - सफेद , नीले, पीले , काले, हरे, भूरे आदि अनेक रंगों के पाषाण पाये जाते हैं।

**१९) सुरमा** - आँख में लगाया जाना वाला काला पदार्थ सुरमा (काजल) कहलाता है। इससे आँखें स्वस्थ रहती है और रोशनी बढती है।

**२०) नमक** - यह अनेक प्रकार का होता है जैसे सैंधा, बिलवन, संचल समुद्र का इत्यादि।

## अप्कायिक जीवों के भेद

### गाथा

**भोमंतरिक्खमुदगं ओसा हिम करग हरितणू महिया ।**
**हुंति घणोदहिमाई भेया णेगा य आउस्स ।।५ ।।**

### अन्वय

भोम-अंतरिक्खं-उदगं ओसा हिम करग हरितणू महिया य घणोदहिमाई आउस्स (अ) णेगा भेया हुंति ।।५ ।।

### संस्कृत छाया

भौमांतरीक्षमुदकमवश्यायो हिम करको हरितनूर्महिका ।
भवन्ति घनोदध्यादयो भेदा अनेके चाप्कायस्य ।।५ ।।

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| भोमं - भूमि का | अंतरिक्खं - आकाश का (वर्षा का) |
| उदगं - पानी | ओसा - ओस |
| हिम - बर्फ | करग - ओले |
| हरितणू - हरी वनस्पतियों के उपर फूटकर निकला हुआ पानी | महिया - कोहरा, जल के छोटे-छोटे कण, जो बादलों से गिरते हैं। |
| हुंति- होते हैं | घणोदहि - घनोदधि |
| माई (आई)- आदि | भेया - भेद |
| (अ) णेगा - अनेक | य- और |
| आउस्स - अप्काय, पानी के | |

### भावार्थ

भूमि और आकाश का पानी, ओस, बर्फ, ओले, हरी वनस्पतियों के उपर फूटकर निकला हुआ पानी, कोहरा, घनोदधि आदि अनेक जलकायिक जीवों के भेद है ।।५ ।।

चित्र : अप्कायिक जीवों के भेद

### विशेष विवेचन

**भूमि का पानी** - कुएँ, तालाब, नदी आदि का पानी ।

**आकाश का पानी** - बरसात का पानी ।

**ओस** - आकाश से होने वाली छोटे-छोटे जलीय कणों की बरसात ।

**बर्फ** - जमा हुआ पानी।

**ओले** - वर्षा में गिरने वाले जमे हुए पानी के छोटे-बडे टुकडे ।

**हरितणू** - हरी वनस्पतियों (फल, फूल, पत्ते इत्यादि) पर फूटकर निकला हुआ पानी ।

**कोहरा** - आकाश से होने वाली अप्कायिक जीवों की बरसात, जिससे संपूर्ण वायुमण्डल धुंधला एवं आच्छादित हो जाता हैं ।

**घणोदधि - घण - जमा हुआ, उदधि - पानी (समुद्र)**

लोक में जहाँ - जहाँ देवलोक विमान एवं नरक पृथिवियाँ हैं, उनके नीचे घी के समान जमे हुए पानी को घणोदधि कहा जाता है ।

उपरोक्त समस्त अप्कायिक जीवों के भेद हैं।

## अग्निकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**इंगाल जाल मुम्मुर उक्कासणि कणग विज्जुमाइया ।**
**अगणि जियाणं भेया नायव्वा निउण बुद्धीए ॥६॥**

**अन्वय**

इंगाल जाल मुम्मुर उक्का असणि कणग विज्जुं आइया अगणि जियाणं भेया
निउण बुद्धीए नायव्वा ॥६॥

**संस्कृत छाया**

अंगार - ज्वाला-मुर्मर-उल्काशनय: कणको विद्युदादय: ।
अग्नि जीवानां भेदा ज्ञातव्या निपुण बुद्ध्या ॥६॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| इंगाल - अंगार, ज्वाला रहित काष्ठ की आग | जाल - ज्वाला |
| मुम्मुर - कंडे की गरम राख में रहने वाले अग्निकण | उक्का - उल्कापात |
| असणि - आकाश से गिरने वाली चिंगारियाँ | कणग - आकाश से तारों के समान |
| विज्जुं - बिजली, विद्युत् | बरसने वाले अग्निकण । |
| आइया - इत्यादि | अगणि - अग्निकायिक |
| जियाणं - जीवों के | भेया - भेद |
| नायव्वा - जानने चाहिये, समझने चाहिये | निउण - सूक्ष्म, निपुण |
| बुद्धीए - बुद्धि - प्रज्ञा से । | |

## भावार्थ

अंगार, ज्वाला, कंडे की राख में रहने वाले अग्निकण, उल्कापात, आकाश से गिरने वाली चिंगारियाँ, आकाश से तारों के समान बरसने वाले अग्निकण, बिजली इत्यादि अग्निकायिक जीवों के भेद सूक्ष्म बुद्धि से समझने / जानने चाहिये ॥६॥

चित्र : तेउकायिक जीवों के भेद

### विशेष विवेचन

इस गाथा में अग्निकायिक जीवों के भेदों का विवेचन किया गया है -

**अंगार** - कोयले आदि की आग ।

**ज्वाला** - लकडी, गैस आदि में उठती हुई आग की लपटें।

**मुर्मर** - कंडे या भरसाय की राख में रहने वाले अग्निकण ।

**उल्कापात** - आकाश से गिरने वाली उल्काएँ।

**अशनि** - आकाश से गिरने वाली चिंगारियाँ ।

**कणग** - आकाश से गिरने वाले तारों के समान अग्निकण ।

**विद्युत्** - आकाश में चमकने वाली बिजली ।

इसके अलावा सूर्यकान्त मणि आदि से एवं दावानल, (बांस आदि के आपस में घिसने से उत्पन्न होने वाली अग्नि) एवं वडवानल (समुद्र में लगने वाली आग) इत्यादि अनेक अग्निकायिक जीवों के भेद होते हैं।

## वायुकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**उब्भामग उक्कलिया मंडली-मह-सुद्ध-गुंजवाया य ।**
**घण तणु वायाइया भेया खलु वाउकायस्स ॥७॥**

### अन्वय

उब्भामग - उक्कलिया मंडली-मह-सुद्ध-गुंजवाया य घण-तणु-वायाइया
खलु वाउकायस्स भेया ॥७॥

### संस्कृत छाया

उद्भ्रामक - उत्कलिकौ मंडलि महा-शुद्ध-गुंज-वाताश्च ।
घनवात - तनुवातादिका भेदाः खलु वायुकायस्य ॥७॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| उब्भामग - उद्भ्रामक | उक्कलिया - उत्कलिका |

| | |
|---|---|
| मंडली - मंडलाकार बहने वाली | मह - महावात |
| सुद्ध - शुद्ध वायु | गुंजवाया - गूंजती वायु |
| य - और | घण - घनवात |
| तणु - तनवात | वाय - वायु |
| आइया - आदि | भेया - भेद |
| खलु - निश्चित् रुप से | वायुकायस्स - वायुकाय के |

## भावार्थ

उद्भ्रामक, उत्कलिका, मंडलाकार, महावात, शुद्ध वायु, गूंजती वायु, घनवात और तनवात आदि निश्चित् रुप से वायुकाय (वायुकायिक जीवों के) के भेद हैं ।।७।।

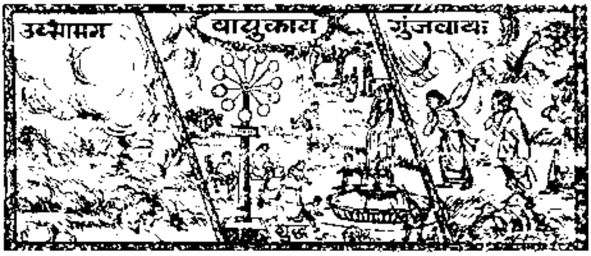


चित्र: वायुकायिक जीवों के भेद

## विशेष विवेचन

**उद्भ्रामक वायु** - उपर की ओर उठकर बहने वाली वायु ।

**उत्कालिका वायु** - नीचे तरफ बहने वाली वायु, जिससे धूल में रेखाएँ अंकित होती हैं।

**मडंलाकार वायु** - गोल - गोल चक्कर काटकर बहने वाली वायु ।

**महावात** - आंधी में बहने वाली तेज वायु ।

**शुद्ध वायु** - शुद्ध और मंद-मंद बहने वाली वायु ।

**गुंज वायु** - गूंजन करती हुई बहने वाली वायु ।

**घनवात** - गाढी वायु।

**तनवात** - पतली वायु।

गाढी और पतली वायु देव विमानों और नरक भूमियों के नीचे रहे हुए घनोदधि के नीचे होती है ।

उपरोक्त सभी वायुकायिक जीवों के भेद हैं ।

## वनस्पतिकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**साहारण-पत्तेया वणस्सइ-जीवा दुहा सुए भणिया ।**
**जेसिमणंताणं तणू एगा साहारणा ते उ ॥८॥**

### अन्वय

सुए वणस्सइ जीवा दुहा भणिया साहारणा पत्तेया जेसिं अणंताणं एगा तणू ते उ साहारणा ॥८॥

### संस्कृत छाया

साधारण-प्रत्येका वनस्पति-जीवद्विधा- श्रुते भणिता ।
येषामनन्तानां तनुरेका साधारणास्ते तु ॥८॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| साहारण - साधारण | पत्तेया - प्रत्येक |
| वणस्सइ - वनस्पतिकायिक | जीवा - जीवों (के) |
| दुहा - दो | सुए - शास्त्र में |
| भणिया - कहे गये हैं | जेसिं - जिन |
| अणंताणं - अनंत (जीवों) का | तणू - शरीर |
| एगा - एक | साहारणा - साधारण |
| ते उ - वे तो | |

### भावार्थ

शास्त्र में वनस्पतिकायिक जीवों के दो भेद कहे गये हैं - साधारण वनस्पतिकाय एवं प्रत्येक वनस्पतिकाय । जिन अनंत जीवों का एक

शरीर होता है, वे साधारण वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं ।।८।।

चित्र : साधारण वनस्पतिकाय के लक्षण

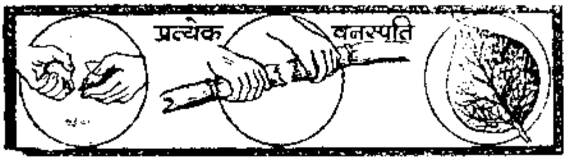


चित्र : प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में वनस्पतिकायिक ज़ीवों के भेद बताये गये हैं। वनस्पतिकाय के दो भेद शास्त्रों में वर्णित हैं - (१) साधारण वनस्पतिकाय (२) प्रत्येक वनस्पतिकाय

(१) **साधारण वनस्पतिकाय** - जिन अनन्त जीवों का अलग-अलग शरीर नहीं होकर एक ही शरीर होता है, वे साधारण वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं, जैसे आलु, प्याज आदि ।

(२) **प्रत्येक वनस्पतिकाय** - जिन जीवों के अलग-अलग शरीर होते हैं। प्रत्येक शरीर में एक ही जीव निवास करता है, वे प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव कहलाते हैं, जैसे आम, केला इत्यादि ।

## साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**कंदा-अंकुर-किसलय-पणगा-सेवाल-भूमिफोडा य ।**
**अल्लय तिय-गज्जर-मोत्थ-वत्थुला-थेग-पल्लंका ।।९।।**

### अन्वय

कंदा-अंकुर-किसलय-पणगा-सेवाल-भूमिफोडा अल्लय तिय-गज्जर-मोत्थ-वत्थुला-थेग-पल्लंका य ।।९।।

### संस्कृत छाया

कन्दा अंकुराः किसलयानि पनकाः शेवालं भूमिस्फोटाश्च ।
आर्द्रकत्रिकं गर्जरं मुस्ता वस्तूलः थेगः पल्लंखः ॥९॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| कंदा - जमीकंद | अंकुर - अंकुरित धान |
| किसलय - कोंपलें | पणगा - पांच रंग की फुल्ली |
| सेवाल - सिवार | भूमिफोडा - भूमिस्फोटक |
| य - और | अल्लयतिय - आर्द्रक त्रिक |
| गज्जर - गाजर | मोत्थ - नागर मोत्था |
| वत्थुला - वथुआ | थेग - एक प्रकार का शाक |
| पल्लंका - पालक | |

## भावार्थ

कंद, अंकुर, कोंपलें, पांच रंग की फुल्ली, सिवार, भूमिस्फोटक, आर्द्रक त्रिक, गाजर, नागर मोत्था, वथुआ, थेग और पालक साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के भेद हैं ॥९॥

### विशेष विवेचन

**कंद** - आलू , प्याज, मूली इत्यादि समस्त जमीकंद ।

**अंकुर** - अंकुरित धान (जिस धान में अंकुर फूट गये हो)।

**किसलय** - कोंपलें, नये कोमल पत्ते ।

**पणगा** - पांच रंग की फुल्ली, जो बासी अन्न में पैदा होती है ।

**सेवाल** - सिवार, एक प्रकार की वनस्पति ।

**भूमिस्फोटक** - वर्षा ऋतु में भूमि को फोडकर पैदा होने वाली वनस्पति जो छत्र के आकार की होती है ।

**आर्द्रकत्रिक** - आर्द्रक, हल्दी और कर्चूरक ।

**गाजर** - एक प्रकार का कंदमूल।

**मोत्थ** - नागर मोत्था ।

**वथुआ** - एक प्रकार का साग। यह उगते समय अनंतकाय होता है परन्तु जब कोमल न रहकर कठोर हो जाता है तब प्रत्येक वनस्पतिकाय में गिना जाता है।

**थेग** - एक प्रकार का कंद।

**पालक** - एक प्रकार का साग ।

साधारण वनस्पतिकाय

## साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के भेद

### गाथा

**कोमल-फलं च सव्वं, गूढ सिराइं सिणाइ पताईं ।**
**थोहरि कुंआरि गुग्गुलि गलोय पमुहाइ छिन्नरूहा ॥१०॥**

### अन्वय

सव्वं कोमल फलं च गूढ सिराइं सिणाइ पताईं छिन्नरूहा थोहरि कुंआरि गुग्गुलि गलोय पमुहाइ ॥१०॥

### संस्कृत छाया

कोमल फलं च सर्वं गूढशिराणि सिनादि पत्राणि ।
थोहरी कुमारी गुग्गुल गडूजी - प्रमुखाश्च छिन्नरुहा: ॥१०॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| कोमल - कोमल, मुलायम | फलं - फल |
| च - और | सव्वं - सब (प्रकार के) |
| गूढ - गुप्त | सिराइं - नसों (वाले) |
| सिणाइ - सन आदि (के) | पताई- पत्ते आदि |
| थोहरि - थोहर | कुंआरि - घी कुंआर |
| गुग्गुलि - गुग्गल | गलोय - गलोय |
| पमुहाइ - प्रमुख आदि | छिन्नरुहा - काटने पर भी बोने से उगे |

## भावार्थ

सब प्रकार के कोमल फल, गुप्त नसों वाले सन आदि के पत्ते और काटने पर बो देने पर उगे थोहर, घी कुंआर, गुग्गल, गलोय आदि प्रमुख वनस्पतियाँ साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के भेद हैं ॥१०॥

### विशेष विवेचन

गाथा संख्या नौ एवं दस में साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के कुछ प्रसिद्ध भेद प्रस्तुत किये गये हैं। शास्त्रों में ३२ प्रकार के साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का वर्णन हैं। इसके अलावा भी बहुत से अप्रसिद्ध साधारण वनस्पतिकायिक जीव हैं। साधारण वनस्पतिकायिक को अनन्तकाय एवं निगोद भी कहा जाता है ।

कोमल फल साधारण वनस्पतिकाय है । साधारण वनस्पतिकायिक की यह विशेषता होती है कि उसके किसी भाग को काटकर बो देने पर भी उग जाता है । गिलोय आदि को काटकर अधर लटका देने पर भी अंकुरित हो जाते हैं।

## साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के भेद एवं लक्षण

### गाथा

**इच्चाइणो अणेगे हवंति भेया अणंतकायाणं ।**
**तेसिं परिजाणणत्थं लक्खण-मेयं सुए भणियं ॥११॥**

### अन्वय

अणंतकायाणं इच्चाइणो अणेगे भेया हवंति तेसिं परिजाणणत्थं एयं लक्खणं सुए भणियं ॥११॥

### संस्कृत छाया

इत्यादयोऽनेके भवन्ति भेदा अनन्तकायानाम् ।
तेषां परिज्ञानार्थं लक्षणमेतच्छ्रुते भणितम् ॥११॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| इच्चाइणो - इत्यादि | अणेगे - अनेक |
| हवंति - होते हैं | भेया - भेद |
| अणंत - अनंत | कायाणं - कायिक (जीवों के) |
| तेसिं - उनको | परिजाणणत्थं - अच्छी तरह जानने के लिये |
| लक्खणं - लक्षण | सुए - शास्त्र में |
| एयं - यह | |
| भणियं - कहे गये हैं। | |

### भावार्थ

इत्यादि (पिछली गाथा से) अनन्तकायिक जीवों के अनेक भेद होते हैं। उनको अच्छी तरह जानने के लिये यह (ये) लक्षण शास्त्र में कहे गये हैं॥११॥

## साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के लक्षण

### गाथा

**गूढ-सिर-संधि-पव्वं सम-भंगमहीरगं च छिन्नरूहं ।**
**साहारणं सरीरं तव्विवरियं च पत्तेयं ॥१२॥**

### अन्वय

गूढ-सिर-संधि च पव्वं समभंग-अहीरगं छिन्नरूहं साहारणं सरीरं च तव्विवरियं पत्तेयं ॥१२॥

## संस्कृत छाया

गूढशिरा-संधि पर्व समभंग महीरकं च छिन्नरूहं ।
साधारण शरीरं तद् विपरीतं च प्रत्येकं ॥१२॥

## शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| गूढ – गुप्त (हो) | सिर – नसें |
| संधि – संधियां, जोड | पव्वं – पर्व, गांठें |
| समभंगं – (जिसको) तोडने से समान टुकडे हो | अहीरगं – जिसके तंतु न हो |
| च – और | छिन्नरूहं – जिसको काटकर भी |
| साहारण – साधारण (वनस्पतिकाय) | बोने से उगे । |
| तव्विवरियं – उसके विपरीत | सरीरं – शरीर |
| पत्तेयं – प्रत्येक (वनस्पतिकाय का) | च – और |

## भावार्थ

जिसकी नसें, जोड और पर्व गुप्त हो (स्पष्ट दिखाई न दें), जिसको तोडने से समान टुकडे हो, जिसके तंतु न हो, जो काटकर भी बोने से उगे, ये सब साधारण वनस्पतिकायिक जीवों के शारीरिक लक्षण हैं और इसके विपरीत प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों के शारीरिक लक्षण जानने चाहिये ॥१२॥

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में साधारण वनस्पतिकाय (शरीर) के लक्षण बताये गये हैं। साधारण शरीर को जानने / पहचानने के चार लक्षण हैं-

(१) जिसकी नसें, संधियां (जोड) एवं पर्व-गांठें गुप्त हो, सरलता से एवं स्पष्ट रुप से दृष्टिगत न हो, वह साधारण शरीर कहलाता है । उदाहरण – घीकुंआर में नसें, संधियां एवं पर्व होने पर भी इक्षुखण्ड (गन्ना) की गांठों, संधियों एवं पर्वों की भाँति स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं ।

(२) जिसको तोडने से समान भाग (टुकडे) हो। एरंड के पत्ते को तोडने से उसके आडे-

तिरछे टुकडे होते हैं जब कि झार (साधारण वनस्पतिकाय) के पत्ते को तोडने से समान टुकडे होते हैं।

(३) जिसके तंतु न हो । ग्वार के तंतु व्यवस्थित दिखाई देते हैं जब कि शकरकंद के तंतु दिखाई नहीं देते हैं।

(४) जिसका कोई भी भाग बोने पर भी उगे । साधारण वनस्पतिकाय छह प्रकार से उगती हैं-

**(१) अग्रबीज**– जिसका अग्र भाग बोने पर उगता है, जैसे कोरंट, नागरवेल आदि।

**(२) मूल बीज** – जिनका मूल भाग बोने पर उगता है, जैसे उत्पल, कंद आदि ।

**(३) स्कन्ध बीज** – जिनकी शाखा (डाली) बोने से उगती है, जैसे गिलोय आदि।

**(४) पर्व बीज** – जिनकी गांठें बोने से उगती हैं, जैसे ऊस, बांस, बैंत आदि।

**(५) बीज रुह** – जिसका बीज बोने से उगता है, जैसे डांगर इत्यादि ।

**(६) संमूर्च्छिम** – जो सिंघाडे के समान बिना बोये उगते हैं।

इससे विपरीत प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर जानना चाहिये । उनकी नसें गुप्त नहीं होती हैं। उनके तंतु स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं । इस प्रकार साधारण वनस्पतिकायिक एवं प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की शारीरिक मे संरचना बडा अन्तर होता है ।

**अन्तर का कारण** – वनस्पतिकायिक जीवों के शरीर की बनावट, आकार, प्रकृति इत्यादि में फर्क होता है क्योंकि साधारण वनस्पतिकाय के एक शरीर में अनन्त जीव निवास करते हैं, प्रत्येक आत्मा का अलग-अलग शरीर नहीं होता हैं जबकि प्रत्येक वनस्पतिकाय के एक शरीर में एक ही जीवात्मा का वास होता है। प्रत्येक जीवात्मा की अलग-अलग शारीरिक स्थिति, व्यवस्था, आकार, प्रकार, स्वभाव होता हैं ।
साधारण वनस्पतिकाय का शारीरिक स्वभाव एवं गठन प्रत्येक वनस्पतिकाय की अपेक्षा अधिक नाजुक एवं जड होता है ।

साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर अनन्त जीवों का पिण्ड होने के कारण जल्दी से जन्म लेने वाला होता है एवं देरी से मृत्यु को प्राप्त होने वाला होता है ।

प्रत्येक वनस्पति उत्पन्न होते समय साधारण होती है । अंकुरित होने के बाद वह यदि प्रत्येक वनस्पतिकाय की श्रेणी की हो तो प्रत्येक बन जाती है और यदि साधारण वनस्पति

की जाति की हो तो साधारण वनस्पतिकाय का रुप-स्वरुप और स्वभाव धारण कर लेती है।

बहुत-सी वनस्पतियाँ ऐसी हैं जिनका मूल (जड) तो प्रत्येक होता है और शेष भाग साधारण होता है । किसी का कंद साधारण होता है और बाकी शेष प्रत्येक होता है । साधारण वनस्पतिकाय अनन्त जीवों से युक्त होती है और उनका एक ही शरीर होने से वे एक साथ ही आहार ग्रहण करते हैं। एक साथ श्वास लेते हैं और छोडते हैं।

## प्रत्येक वनस्पतिकाय की परिभाषा एवं भेद

### गाथा

**एग सरीरे एगो जीवो जेसिं तु ते य पत्तेया ।**
**फल फूल छल्लि कट्ठा मूलग पत्ताणि बीयाणि ॥१३॥**

### अन्वय

जेसिं एग सरीरे एगो जीवो ते तु पत्तेया य फल फूल छल्लि कट्ठा मूलग पत्ताणि बीयाणि ॥१३॥

### संस्कृत छाया

एकस्मिन् शरीरे एको जीवो येषां तु ते च प्रत्येका: ।
फलपुष्पछल्लिकाष्ठानि मूलक पत्राणि बीजानि ॥१३॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| एग - एक | सरीरे - शरीर में |
| एगो - एक | जीवो - जीव |
| जेसिं - जिनके | तु - तो |
| ते - वे | य - और |
| पत्तेया - प्रत्येक | फल - फल |
| फूल - पुष्प | छल्लि - छाल |
| कट्ठा - काष्ठ, लकडी | मूलग - मूल - जड |
| पत्ताणि - पत्ते | बीयाणि- बीज |

## भावार्थ

जिस वनस्पति के एक शरीर में एक जीव होता है, वह प्रत्येक वनस्पतिकाय कहलाती है और इसके सात भेद हैं - (१) फल (२) फूल (३) छाल (४) काष्ठ (५) मूल (६) पत्ता (७) बीज ॥१३॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में प्रत्येक वनस्पतिकाय के लक्षण एवं भेद प्रस्तुत किये गये हैं।

जिस वनस्पति के एक शरीर में एक जीवात्मा होती है, वह प्रत्येक वनस्पतिकाय कहलाती हैं। इसके सात भेद होते हैं - फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल, पत्ता और बीज।

वनस्पतियों की उत्पत्ति एवं नाश के कारण अलग-अलग होते हैं। उनके अवयव एवं उपयोगिता भिन्न-भिन्न होती हैं। कुछ वनस्पतियों में संख्यात जीव होते हैं, कुछ में असंख्यात जीव होते हैं और कुछ में अनन्त जीव होते हैं।

संपूर्ण वृक्ष रुपी जीव का शरीर अलग होता है, फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल, बीज, शाखाओं, प्रशाखाओं, छोटी-बडी लताओं का भी शरीर अलग-अलग होता है। एक शरीर में एक जीव होने से वह प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव कहलाता है। एक वृक्ष आश्रित होकर असंख्यात प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव जीवन यापन करते हैं।

इस अपेक्षा से कोई वृक्ष संख्यात या असंख्यात जीवों का समूह होता है। वृक्ष का कोई भाग यदि साधारण वनस्पतिकायिक होता है तो वह अनन्त जीवों का भी आधार बन जाता है।

प्रत्येक वनस्पतिकाय बारह प्रकार की होती हैं -

(१) **वृक्ष** - आम, पीपल, नाशपाती, नीम, बबूल आदि ।

(२) **गुच्छ** - कपास, मिर्च आदि के पौधें।

(३) **गुल्म** - मोगरा, कोरंड आदि के पुष्प ।

(४) **लता** - अशोक, चंपक आदि की निराश्रित लताएँ ।

(५) **वल्लि** - करेले, खरबूजे, काशीफल आदि की लताएँ ।

**(६) पर्वगा** - ईख, बांस आदि की गांठें, जो बोने से उगे ।

**(७) तृण** - डाभ आदि ।

**(८) वलय** - केला, सुपारी, केवडा, खजूर आदि वलय वाले वृक्ष ।

**(९) हरित** - धनिया आदि शाक भाजी ।

**(१०) औषधि** - गेहूं, ज्वार, बाजरा, मक्का आदि ।

**(११) जलरुह** - कमल, सिंघाडे आदि पानी में उत्पन्न होनेवाली अनेक प्रकार की वनस्पतियाँ।

**(१२) कुहुणा** - वर्षा ऋतु में पैदा होने वाली छत्राकार प्रत्येककायिक वनस्पतियाँ ।

किसी भी वनस्पति के दस भाग होते हैं -

(१) मूल - जड (२) स्कन्ध (३) थड (४) छाल (५) शाखा (६) काष्ठ (७) पत्र (८) पुष्प (९) फल (१०) बीज

## सूक्ष्म जीवों की व्यापकता

### गाथा

**पत्तेय-तरुं मुत्तुं पंचवि पुढवाइणो सयललोए ।**
**सुहुमा हवंति नियमा अंतमुहुत्ताऊ अद्दिस्सा ।।१४।।**

### अन्वय

पत्तेय-तरुं मुत्तुं पंचवि पुढवाइणो अंतमुहुत्ताउ सुहुमा अद्दिस्सा सयललोए नियमा हवंति ।।१४।।

### संस्कृत छाया

प्रत्येक तरुं मुक्त्वा पंचापि पृथिव्यादय: सकललोके ।
सूक्ष्मा भवन्ति नियमादन्त मुहूर्त्तायुषऽदृश्या : ।।१४।।

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| पत्तेय - प्रत्येक | तरुं - वृक्ष को (वनस्पतिकाय) |
| मुत्तुं - छोडकर | पंचवि - पांचों ही |
| पुढवाइणो - पृथ्वीकाय आदि | सयल - सकल, समस्त |

| | |
|---|---|
| लोए - लोक में | सुहुमा - सूक्ष्म |
| हवंति - होते हैं | नियमा - निश्चय से (निश्चित् रुप से) |
| अन्तमुहुत्त - अन्तर्मुहूर्त्त | आउ - आयुष्य (वाले) |
| अदिस्सा - अदृश्य | |

## भावार्थ

प्रत्येक वनस्पतिकाय को छोडकर अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य वाले पांचों ही सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं साधारण वनस्पतिकाय, अदृश्य रुप से सम्पूर्ण लोक में निश्चित् रुप से होते हैं ॥१४॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय एवं साधारण वनस्पतिकाय जीवों के भेदों का वर्णन किया गया है ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय सूक्ष्म रुप में नहीं होती है । पिछली ११ गाथाओं में पृथ्वीकायादि का बादर रुप में वर्णन किया गया था ।

इस प्रकार पृथ्वीकायादि छह बादर रुप में होते हैं और प्रत्येक वनस्पतिकाय के अलावा पृथ्वीकायादि पांच सूक्ष्म रुप में भी होते हैं। अतः बादर एवं सूक्ष्म की अपेक्षा से ग्यारह भेद होते हैं। इन ग्यारह भेदों को पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की अपेक्षा से गिनने से २२ भेद होते हैं।

**सूक्ष्म से अभिप्राय-** जिन जीवों का एक शरीर अथवा संयुक्त अनेक शरीर भी आँखों से न देखे जा सके एवं किसी यंत्र की सहायता से भी जाने / देखे न जा सके, उन जीवों को सूक्ष्म कहा जाता हैं। सूक्ष्म जीव उसी प्रकार संपूर्ण चौदह राज लोक में ठांस-ठांस कर भरे हुए हैं जैसे काजल की डिब्बी में अंजन ।

**बादर से अभिप्राय-** जिन जीवों को चर्म चक्षुओं से अथवा अन्य किसी यंत्र की सहायता से देखा जा सके, उन्हें बादर कहते हैं। यदि किसी एक शरीर को देखा जा सकता है अथवा अनेक शरीर एकत्र होने पर भी दृष्टिगोचर होते हैं, दिखाई देते हैं, वे बादर जीव कहलाते हैं ।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय एवं वायुकाय इन चारों का शरीर सूक्ष्म होने पर भी प्रत्येक ही होते है अर्थात् एक शरीर में एक ही जीव होता है जब कि साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर सूक्ष्म होने के साथ उसके एक शरीर में अनन्त जीव निवास करते हैं।

**अन्तर्मुहूर्त्त का अर्थ -**

एक घडी में चौबीस मिनट होते हैं और दो घडी का एक मुहूर्त्त होता है ।

**अन्तर्मुहूर्त्त** - २ समय से लगाकर ४८ मिनट में से एक समय कम ।

**जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त** - २ समय से ९ समय तक जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है ।

**मध्यम अन्तर्मुहूर्त्त** - १० समय से लेकर ४८ मिनट में से दो समय न्यून मध्यम अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है ।

**उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त** - ४८ मिनट में से एक समय न्यून होने पर उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कहलाता है ।

इन पांचों सूक्ष्म जीवों का आयुष्य मध्यम अन्तर्मुहूर्त्त का होता है एवं कम से कम आयुष्य २५६ आवलिका का होता है ।

इन स्थावर जीवों में पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय,वायुकाय एवं साधारण वनस्पतिकाय, इन पांचों के सूक्ष्म-बादर एवं पर्याप्ता अपर्याप्ता की अपेक्षा से कुल २० भेद होते हैं।

प्रत्येक वनस्पतिकाय सूक्ष्म नहीं होने से बादर पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की अपेक्षा से दो भेद होते हैं। इस प्रकार पांच स्थावरकाय के कुल २२ भेद होते हैं।

## स्थावर जीवों के २२ भेद

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | पृथ्वीकाय | सूक्ष्म | पर्याप्ता |
| २ | पृथ्वीकाय | सूक्ष्म | अपर्याप्ता |
| ३ | पृथ्वीकाय | बादर | पर्याप्ता |
| ४ | पृथ्वीकाय | बादर | अपर्याप्ता |
| ५ | अप्काय | सूक्ष्म | पर्याप्ता |
| ६ | अप्काय | सूक्ष्म | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७ | अप्काय | बादर | पर्याप्ता |
| ८ | अप्काय | बादर | अपर्याप्ता |
| ९ | तेउकाय | सूक्ष्म | पर्याप्ता |
| १० | तेउकाय | सूक्ष्म | अपर्याप्ता |
| ११ | तेउकाय | बादर | पर्याप्ता |
| १२ | तेउकाय | बादर | अपर्याप्ता |
| १३ | वाउकाय | सूक्ष्म | पर्याप्ता |
| १४ | वाउकाय | सूक्ष्म | अपर्याप्ता |
| १५ | वाउकाय | बादर | पर्याप्ता |
| १६ | वाउकाय | बादर | अपर्याप्ता |
| १७ | साधारण वनस्पतिकाय | सूक्ष्म | पर्याप्ता |
| १८ | साधारण वनस्पतिकाय | सूक्ष्म | अपर्याप्ता |
| १९ | साधारण वनस्पतिकाय | बादर | पर्याप्ता |
| २० | साधारण वनस्पतिकाय | बादर | अपर्याप्ता |
| २१ | प्रत्येक वनस्पतिकाय | बादर | पर्याप्ता |
| २२ | प्रत्येक वनस्पतिकाय | बादर | अपर्याप्ता |

# त्रस जीव विभाग

## द्वीन्द्रिय जीवों के भेद

### गाथा

**संख कवड्डय गंडुल जलोय-चंदणग अलस लहगाइ ।**
**मेहरि किमि पूयरगा बेइन्दिय माइवाहाइ ॥१५॥**

### अन्वय

संख कवड्डय गंडुल जलोय चंदणग अलस लहगाइ मेहरि किमि पूयरगा माइवाहाइ बेइन्दिय ॥१५॥

संस्कृत छाया

शंख कपर्दको गंडोलो जलौकाश्चन्दनकालस लहकादय: (लघुगात्री)।

मेहरक: कृमय: पूतरका द्वीन्द्रिया मातृवाहिकादय: ॥१५॥

शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| संख - शंख | कवड्डय - कौडी |
| गंडुल - गंडोल | जलोय - जलौका, जोंक |
| चंदणग - अक्ष, आयरिया | अलस - भूनाग, केंचुए |
| लहगाइ - लालयक आदि | मेहरि - काष्ठ (लकडी के कीडे) |
| किमि - कृमि | पूयरगा - पूरा |
| बेइन्दिय - द्वीन्द्रिय | माइवाहाइ - मातृवाहिका आदि |

## भावार्थ

**शंख, कौडी, गंडोल, जोंक, अक्ष, केंचुए, लालयक, काष्ठ के कीडे, कृमि, पूरा, मातृवाहिका आदि द्वीन्द्रिय जाति के जीव हैं ॥१५॥**

विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में द्वीन्द्रिय जाति के कुछ भेद प्रस्तुत किये गये हैं।

जिन जीवों के दो इन्द्रियाँ (स्पर्शनेन्द्रिय एवं रसनेन्द्रिय) होती हैं, वे द्वीन्द्रिय कहलाते हैं। द्वीन्द्रिय जीवों के गाथा में वर्णित भेद निम्नलिखित हैं-

**शंख** - वर्षा ऋतु में शंख नामक जीव अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं । इनका जन्म स्थान समुद्रादि हैं।

शंख सफेद एवं बादामी वर्ण का होता है और उसके उपर बना शंख का आवरण सुरक्षा का काम करता है । जैसे ही किसी जीव के आक्रमण का भय उपस्थित होता है, वह जीव उसमें छिपकर अपनी सुरक्षा कर लेता है । निर्जीव शंख मंदिरों में एवं अन्य स्थानों में अनेक अवसरों पर बजाने के काम में आता हैं ।

**कौडी** - इनका शारीरिक रुप-स्वरुप शंख के समान ही होता है । ये भी समुद्र में उत्पन्न

होती हैं एवं भय की स्थिति में ढाल के समान कठिन भाग में छिप जाती हैं । छोटी-बडी कई प्रकार की निर्जीव कौडियाँ खेलने में काम आती हैं।

**गंडोल** – पेट में जो मोटे कीडे उत्पन्न होते हैं, उन्हें गंडोल कहते हैं। इन्हें मल्हप भी कहा जाता है ।

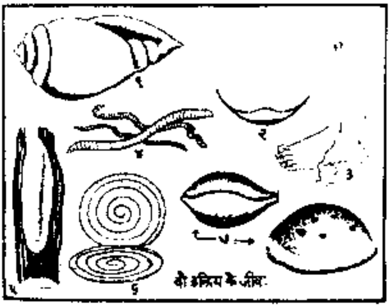

चित्र : द्वीन्द्रिय जाति के जीव

**जौंक** – यह पानी में उत्पन्न होती है। शरीर के खराब खून को चूसती है ।

**अक्ष** – इसे चंदनक एवं आग्ररिया के नाम से भी पुकारा जाता है । इसके निर्जीव शरीर को तपागच्छीय परम्परा में स्थापनाचार्य के रुप में रखा जाता है ।

**केंचुए** – वर्षा ऋतु में सर्प के समान लम्बे-पतले एवं लाल रंग के जीव उत्पन्न होते हैं, उन्हें केंचुआ कहा जाता है । इसके अन्य नाम अलसिया एवं भूनाग भी है ।

**लालयक** – बासी रोटी में जो जीव उत्पन्न होते हैं, उन्हें लालयक कहा जाता है ।

**मेहरि** – लकडी की घून में उत्पन्न होने वाले जीव मेहरि कहलाते हैं।

**कृमि** – पेट, फोडे और बवासीर में पैदा होने वाले जीव कृमि कहलाते हैं।

**पूरा** – पानी में उत्पन्न होने वाले वे जीव जिनका मुंह श्याम वर्ण का होता है एवं काया श्वेत एवं रक्त वर्ण की होती है, पूरा कहलाते हैं।

**मातृवाहिका** – चुडेल के नाम से जानी जाने वाली मातृवाहिका अधिकतर गुजरात प्रदेश में पैदा होती है ।

इत्यादि शब्द से नाहरु, द्विदल आदि जीवों को ग्रहण करना चाहिये।

**नाहरू** – पानी छानकर नहीं पीने से या गंदा पानी पीने से नाहरु नामक जीव शरीर में

प्रविष्ट हो जाता है, बाद में ये जीव कुछ समय के बाद लम्बे धागे के समान मनुष्य के हाथ /पाँव से बाहर निकलते हैं, उस वक्त भयंकर दर्द का अनुभव होता है।

**द्विदल** – द्विदल के साथ कच्चा दही, छाछ आदि ग्रहण करने से द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती हैं। द्विदल अर्थात् जिसको तोडने से दो भाग हो जैसे चना, मोठ आदि।

## त्रीन्द्रिय जीवों के भेद

### गाथा

**गोमी मंकण जूआ पिपीलि उद्देहिया य मक्कोडा ।**
**इल्लिय घय मिल्लीओ सावय गोकीड जाइओ ॥१६॥**

### अन्वय

गोमी मंकण जूआ पिपीलि उद्देहिया मक्कोडा इल्लिय घय मिल्लीओ सावय य गोकीड जाइओ ॥१६॥

### संस्कृत छाया

गुल्मी – मत्कुण यूके पिपील्यूपदेहिका च मत्कोटका: ।
ईलिका घृतेलिका: सावा गोकीटक जातय: ॥१६॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| गोमी – कानखजूरा | मंकण – खटमल |
| जूआ – जूं, यूका, लीख | पिपीलि – चींटी (कीडी) |
| उद्देहिया – दीमक, उदेही | य – और |
| मक्कोडा – चींटा (मकोडा) | इल्लिय – इल्ली |
| घयमिल्लीयो – घृतेलिका | सावय – सावय, चर्मयूका |
| गोकीड जाइओ – गोकीट की जातियाँ | |

### भावार्थ

**कानखजूरा, खटमल, यूका, चींटी, दीमक, चींटा, इल्ली, घृतेलिका, चर्मयूका, गोकीट की जातियाँ त्रीन्द्रिय जाति के जीव हैं ॥१६॥**

## विशेष विवेचन

**कानखजूरा** - ये लम्बे-पतले विषैले जीव होते हैं।

**खटमल** - ये लाल रंग के छोटे-छोटे जीव होते हैं। बिछौने, बिस्तर, पलंग, खाट आदि में पैदा होते हैं। सोने वाले को खतरनाक काटते हैं और खून चूसते हैं।

**जूँ** - यह माथे में पसीने, मेल इत्यादि के संयोग से पैदा होती है, यह प्रारंभ में लीख अर्थात् छोटे रुप में होती है। माथे में काले रंग की लीख एवं कपडों में सफेद रंग की लीख पैदा होती है, बाद में वह जूं में बदल जाती है।

**चींटी** - ये काली, लाल वर्ण की होती है। लाल रंग की चींटी भयंकर काटती है और वहाँ पर बडा लाल निशान उभर आता है।

**उदेहि** - इसे उधई भी कहा जाता है। कपडे, कागज, काष्ठ इत्यादि में पैदा होकर उन्हें नष्ट कर देती है ।

**चींटा** - इसे मकोडा भी कहा जाता है, काले एवं लाल रंग के बडे आकार में होते हैं। लाल रंग के चींटे का डंक अति तीक्ष्ण होता है ।

**इल्ली** - चावल, ज्वार आदि अनाजों में उत्पन्न होने वाला जीव।

**घृतेलिका** - घी में उत्पन्न होने वाले जीव ।

**चर्मयूका** - बालों के मूल भाग में पैदा होने वाला यह जीव शरीर/ चमडी से चिपका रहता है एवं भावी कष्ट को सूचित करता है ।

**गोकीट की जातियाँ** - पशुओं के कान आदि में पैदा होने वाले जीव ।

## त्रीन्द्रिय जीवों के भेद

### गाथा

**गद्दहय चोरकीडा, गोमय कीडा य धन्नकीडा य ।**
**कुंथु गोवालिय इलिया तेइन्दिय इन्दगोवाइ ॥१७॥**

### अन्वय

गद्दहय चोरकीडा गोमयकीडा य धन्नकीडा कुंथु गोवालिय इलिया य इन्दगोवाइ तेइन्दिय ॥१७॥

### संस्कृत गाथा

गर्दभक चौरकीटा गोमय कीटाश्च धान्य कीटाश्च ।

कुंथु गोपालिका इलिका त्रीन्द्रिया इन्द्र गोपदाय: ॥१७॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| गद्दहय - गर्दभक | चोरकीडा - विष्टा के कीडे |
| गोमयकीडा - गोबर के कीडे | य - और |
| धन्नकीडा - धान्य के कीडे | कुंथु - एक प्रकार का जीव |
| गोवालिय - गोपालिका | इलिया - ईलिका, सुरसली |
| तेइन्दिय - त्रीन्द्रिय | इन्दगोवाइ - इन्द्रगोप इत्यादि |

## भावार्थ

**गर्दभक, विष्टा के कीडे, गोबर के कीडे, धान्य के कीडें, कुंथु, गोपालिका, ईलिका, इन्द्रगोप इत्यादि त्रीन्द्रिय जाति के जीव हैं ॥१७॥**

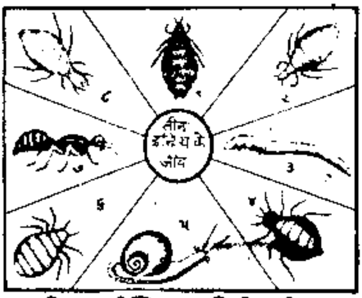


चित्र : त्रीन्द्रिय जाति के जीव

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में त्रीन्द्रिय जाति के जीवों के कुछ उदाहरण बताये गये हैं।

जिन जीवों के तीन इन्द्रियाँ होती है, उन्हें त्रीन्द्रिय कहा जाता है । त्रीन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एवं घ्राणेन्द्रिय रुप तीन इन्द्रियाँ होती हैं।

**गर्दभक-** गौशाला आदि की गीली भूमियों में पैदा होने वाला जीव है। यह सफेद रंग का होता है ।

**विष्ठा के कीड़े** - विष्टा में उत्पन्न होने वाले जीव जो मुख से जमीन में बडे-बडे छिद्र करते हैं।

**कुंथु** - इन जीवों की उत्पत्ति महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् हुई थी । ये बहुत ही छोटे एवं क्षूद्र जीव होते हैं।

**अनाज के कीड़े** - गेहूं आदि अनाजों (धान्य) में पैदा हाने वाले रक्तवर्णीय छोटे - छोटे जीव ।

**गोपालिका** - एक प्रकार का अप्रसिद्ध जीव ।

**इलिका** - चावल आदि में पैदा होने वाला जीव, जो लट रुप होता है । इसे सुरसली भी कहते है ।

**इन्द्रगोप** - वर्षाकाल के प्रारंभ में पैदा होने वाला लाल रंग का जीव ।

इनके अलावा भी अनेक त्रीन्द्रिय जाति के जीव होते हैं।

## चतुरिन्द्रिय जीवों के भेद

### गाथा

**चउरिन्दिया य बिच्छू ढिंकुण भमरा य भमरिया तिड्डा।**
**मच्छिय डंसा मसगा, कंसारी कविल डोलाइ ॥१८॥**

### अन्वय

बिच्छू ढिंकुण भमरा भमरिया तिड्डा य मच्छिय -डंसा मसगा कंसारी कविल य डोलाइ चउरिन्दिया ॥१८॥

### संस्कृत छाया

चतुरिन्द्रियाश्च वृश्चिको ढिंकुणा भ्रमराश्च भ्रमरिकास्तिड्डः ।
मक्षिका दंशा मशका: कंसारिका कपिलडोलकादय: ॥१८॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| चउरिन्दिया - चतुरिन्द्रिय | य - और |
| बिच्छू - बिच्छू | ढिंकुण - ढिंकुण |

| | |
|---|---|
| भ्रमरा - भ्रमर, भौंरा | य - और |
| भ्रमरिया - भ्रमरिका, बरें, ततैया | तिड्डा - टिड्डी |
| मच्छिय - मक्खी, मधुमक्खी | डंसा - डांस |
| मसगा - मच्छर | कंसारी - कांसारिका |
| कविल - मकडी | डोलाइ - खडमांकडी, डोलक |

## भावार्थ

बिच्छु, ढिंकुण, भ्रमर,भ्रमरिका, टिड्डी, मक्खी, डांस, मच्छर, कांसारिका, मकडी और डोलक आदि चतुरिन्द्रिय जीव है ॥१८॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में चतुरिन्द्रिय जाति के जीवों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

जिन जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय एवं चक्षुरिन्द्रिय रुप चार इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय कहते हैं।

**बिच्छु** - ये छोटे-बडे, विषैले - निर्विष एवं अनेक रंगों में पाये जाते हैं।

**ढिंकुण** - घुडसाल आदि में पैदा होने वाला जीव ।

**भ्रमर** - ये काले-पीले आदि वर्णों मे पाये जाते हैं। फूलों से रस चूसकर जीवन यापन करते हैं। साधु की गौचरी भँवरे के समान कही गयी है क्योंकि जिस प्रकार भँवरा फूलों से थोडा -२ रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार साधु भी अलग -२ स्थानों से थोडा-२ आहार-पानी ग्रहण करता है।

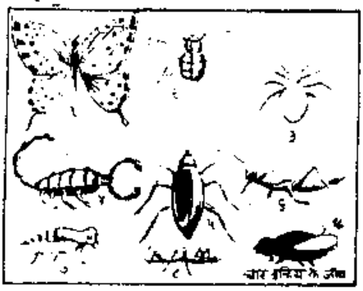


चित्र : चतुरिन्द्रिय जाति के जीव

**टिड्डी** - ये फसल को नष्ट कर देती हैं। इनके समूह को टिड्डी दल कहा जाता है।

**मक्षिका** - मक्खी, मधुमक्खी आदि।

**कांसारिका** - यह उजडे स्थानों में पैदा होती है।

**ढोलक** - यह टिड्डी की जाति का हरे रंग का जीव है। इसे खडमांकडी भी कहा जाता है। यह अधिकतर मकई के खेतों में पाया जाता है।

भ्रमरिका, डंसा, मच्छर, मकडी आदि से सभी सुपरिचित है। आदि शब्द से पतंगा, पिस्सु, तितली, खद्योत आदि अनेक प्रकार के उड़ने वाले (संपातिम) चतुरिन्द्रिय प्राणी हैं।

द्वीन्द्रिय जीवों के प्राय: पाँव नहीं होते हैं। त्रीन्द्रिय जीवों के ४-६ या इससे भी अधिक पाँव होते हैं। चतुरिन्द्रिय के ६-८ या इससे भी अधिक पाँव होते हैं।

मुंह के आगे दो बाल हो तो त्रीन्द्रिय एवं सींग के समान दो बाल हो तो चतुरिन्द्रिय जानना चाहिये।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय को विकलेन्द्रिय भी कहा जाता हैं। पर्याप्ता और अपर्याप्ता के भेद से इनके कुल छह भेद होते हैं।

## विकलेन्द्रिय जीवों के छह भेद

(१) द्वीन्द्रिय जीवों के दो भेद

१) द्वीन्द्रिय पर्याप्ता  २) द्वीन्द्रिय अपर्याप्ता

(२) त्रीन्द्रिय जीवों के दो भेद

१) त्रीन्द्रिय पर्याप्ता  २) त्रीन्द्रिय अपर्याप्ता

(३) चतुरिन्द्रिय जीवों के दो भेद

१) चतुरिन्द्रिय पर्याप्ता  २) चतुरिन्द्रिय अपर्याप्ता

## पंचेन्द्रिय जीवों के भेद

### गाथा

**पंचिंदिया य चउहा नारय तिरिया मणुस्स देवा य ।**
**नेरइया सत्तविहा, नायव्वा पुढवी भेएणं ॥१९॥**

### अन्वय

य पंचिंदिया चउहा नारय तिरिया मणुस्स य देवा पुढवी भेएणं नेरइया सत्तविहा नायव्वा ॥१९॥

### संस्कृत छाया

पंचेन्द्रियाश्च चतुर्धा नारकास्तिर्यंचो मनुष्यदेवाश्च ।
नैरयिकाः सप्तविधा ज्ञातव्याः पृथ्वी भेदेन ॥१९॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| पंचिंदिया -पंचेन्द्रिय | य- और |
| चउहा - चार | नारय - नारकी |
| तिरिया - तिर्यंच | मणुस्स - मनुष्य |
| देवा - देवता | य - और |
| नेरइया - नरक में रहने जीव | सत्तविहा - सात प्रकार के |
| नायव्वा - जानना | पुढवी - पृथ्वी |
| भेएणं - भेद से | |

## भावार्थ

पांच इन्द्रियों वाले जीवों के चार प्रकार हैं- नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव। पृथ्वी के भेद से नरक में रहने वाले (नारकी) जीवों के सात भेद जानने चाहिये ॥१९॥

### विशेष विवेचन

जिन जीवों के पांच इन्द्रियाँ होती हैं, वे पंचेन्द्रिय प्राणी कहलाते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों के चार प्रकार हैं - (१) नारकी (२) तिर्यंच (३) मनुष्य (४) देवता। इनके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय रुप पांच इन्द्रियाँ होती हैं।

## नरक का परिचय

सम्पूर्ण विश्व चौदह राज प्रमाण है । राज एक प्रकार का मापदण्ड है। इस माप से संपूर्ण विश्व चौदह रज्जु (राज) प्रमाण होने से इस लोक को चौदह राजलोक भी कहा जाता है।

इनमें से नीचे के सात राज प्रमाण में सात नरक भूमियाँ हैं जिनमें नारकी जीव निवास करते हैं, इस कारण इन्हें नरक पृथिवियाँ कहा जाता हैं। इस सात राज प्रमाण के भाग को अधोलोक भी कहा जाता हैं। सातों नरक पृथिवियों की लम्बाई समान है परन्तु चौडाई में तरतमता है और क्रमशः बढता हुआ नरक भूमियों का परिमाण है ।

जहाँ नारकी जीव अपने पाप कर्मों का अशुभ फल प्राप्त करते हैं, उसे नरक कहते है । इनमें सीमंतक आदि नरकावास है, उनमें नारकी जीव निवास करते हैं। प्रथम तीन नरक तक क्रूर परमाधामी देव वेदना एवं दुःख देते हैं। आगे के नरकों में नारकी जीव आपस में लड-झगड कर अपार दुःख प्राप्त करते हैं। उत्तरोत्तर नरकों में दुःख और पीडा बढती जाती है । प्रथम नरक के अपेक्षा दूसरी नरक में अधिक दुःख है और दूसरी नरक अपेक्षा तीसरी नरक में अधिक दुःख है। इसी प्रकार सातों नरकों के संदर्भ में समझना चाहिये।

नारकी जीवों का जन्म कुंभी में होता है जो संकडे मुँह का एवं चौडे पेट वाला होता है। नारकी जीवों को परमाधामी देव तीक्ष्ण हथियार से कुंभी में से काट-काट कर निकालते हैं पर उनका वैक्रिय शरीर होने से वे टुकडे पुनः एक शरीर रूप हो जाते हैं।

नरक में स्त्री-पुरुष नहीं होते हैं। वहाँ मात्र नपुंसक ही होते हैं। उनके प्रबल एवं तीव्र कामवासना का भाव होता है पर पूर्ति के साधन नहीं होने से वे अति दुःखी होते हैं।

वहाँ सर्दी व तापमान अत्यधिक होता है। उन जीवों को यदि शीत ऋतु में हिमालय की चोटी पर सुलाया जाये तो वे शांति से सो जाये। गर्मी में यदि उठती हुई खतरनाक लपटों के मध्य रखा जावे तो भी प्रसन्नता का अनुभव हो। कहने का अर्थ इतना ही है कि वहाँ इतनी अधिक सर्दी एवं गर्मी है।

नारकी जीव तीन ज्ञान से युक्त होते हैं - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान। जो मिथ्यात्वी होते हैं, उनके मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान एवं विभंगज्ञान होता है।

मिथ्यात्वी नारकी वेदना से पीडित होकर क्रोधपूर्वक और अधिक कर्मों का बंधन करते हैं। जो नारकी सम्यक्त्वी होते हैं, वे अपने किये हुए दुष्कर्मों का प्रतिफल समझकर समता से दर्द को सहते हैं।

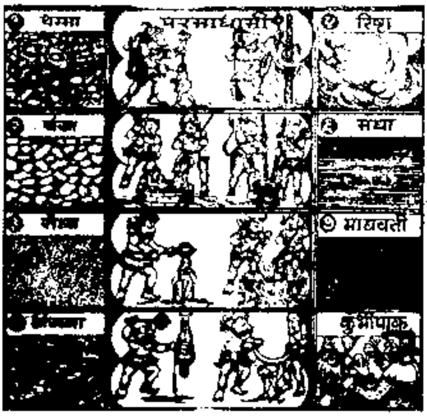


चित्र : सात नरकों में वेदना

## नारकी जीवों के १४ भेद

| | | |
|---|---|---|
| १ | रत्नप्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| २ | रत्नप्रभा नारकी | अपर्याप्ता |
| ३ | शर्कराप्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| ४ | शर्कराप्रभा नारकी | अपर्याप्ता |
| ५ | वालुकाप्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| ६ | वालुकाप्रभा नारकी | अपर्याप्ता |
| ७ | पंकप्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| ८ | पंकप्रभा नारकी | अपर्याप्ता |
| ९ | धूमप्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| १० | धूमप्रभा नारकी | अपर्याप्ता |
| ११ | तम:प्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| १२ | तम:प्रभा नारकी | अपर्याप्ता |
| १३ | तमस्तम:प्रभा नारकी | पर्याप्ता |
| १४ | तमस्तम:प्रभा नारकी | अपर्याप्ता |

## पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के भेद

### गाथा

**जलयर थलयर खयरा तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा य ।**
**सुसुमार मच्छ कच्छव गाहा मगरा य जलचारी ॥२०॥**

### अन्वय

जलयर थलयर य खयरा तिविहा पंचिंदिया तिरिक्खा सुसुमार मच्छ कच्छव गाहा य मगरा जलचारी ॥२०॥

### संस्कृत छाया

जलचर स्थलचर खेचरास्त्रिविधाः पंचेन्द्रियास्तिर्यंचश्च ।
शिशुमारा मत्स्याः कच्छपा ग्राहा मकराश्च जलचराः ॥२०॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| जलयर - जलचर, पानी में रहने वाले | थलयर - स्थलचर, भूमि पर रहने वाले |
| खयरा - खेचर, आकाश में उडने वाले | तिविहा - तीन प्रकार के |
| पंचिन्दिया - पंचेन्द्रिय | तिरिक्खा - तिर्यंच |
| य - और | सुसुमार - सूंस |
| मच्छ - मछली | कच्छव - कछुआ |
| गाहा - घडियाल | मगरा - मगरमच्छ |
| य - और | जलचारी - जल में रहने वाले जीव |

### भावार्थ

पानी में रहने वाले, धरती पर रहने वाले, आकाश में उडने वाले, ये तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्राणियों के तीन भेद हैं । सुंस, मछली, कछुआ, घडियाल और मगरमच्छ जल में रहने वाले (जलचर) जीव हैं ॥२०॥

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पंचेन्द्रिय तिर्यंच के प्रकारों का वर्णन हैं।

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय ये पांचों स्थावर एकेन्द्रिय हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय विकलेन्द्रिय हैं।

पांच इन्द्रियों वाले तिर्यंच के तीन भेद होते हैं (१) जलचर (२) स्थलचर (३) खेचर, मछली, मगरमच्छ, घडियाल इत्यादि जलचर जीव हैं।

चित्र : जलचर जीवों के भेद

## स्थलचर तिर्यंच के प्रकार

### गाथा

**चउपय उरपरिसप्पा भुयपरिसप्पा य थलयरा तिविहा**
**गो-सप्प नउल पमुहा बोधव्वा ते समासेणं ॥२१॥**

### अन्वय

थलयरा तिविहा चउपय उरपरिसप्पा य भुयपरिसप्पा ते समासेणं गो सप्प नउल पमुहा बोधव्वा ॥२१॥

### संस्कृत छाया

चतुष्पदा उर:परिसर्पभुजपरिसर्पाश्च स्थलचरास्त्रिविधा ।
गो सर्प नकुल प्रमुखा बोधव्यास्ते समासेन ॥२१॥

शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| चउपय - चतुष्पद, चार पाँव वाले | उरपरिसप्पा - उरपरिसर्प |
| भुयपरिसप्पा - भुजपरिसर्प | य - और |
| थलयरा - स्थलचर | तिविहा - तीन प्रकार के |
| गो - गाय | सप्प - सर्प |
| नउल - नेवला, न्योला | पमुहा - प्रमुख |
| बोधव्वा ते - वे जानने चाहिये | समासेणं - समास से (अनुक्रम से) |

## भावार्थ

स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्राणियों के तीन प्रकार हैं- चतुष्पद (चार पाँव वाले), उरपरिसर्प (पेट के बल चलने वाले), भुजपरिसर्प (भुजाओं से चलने वाले)। वे संक्षेप में अनुक्रम से गाय, सर्प और नेवला जानने चाहिये ॥२१॥

### विशेष विवेचन

तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तीन प्रकारों में से दूसरे स्थलचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय के तीन भेदों का विवेचन इस गाथा में किया गया है -

**(१) चतुष्पद** - वे जीव, जिनके चार पाँव होते हैं, वे चतुष्पद कहलाते हैं। जैसे गाय, बैल, घोडा, हाथी, हरिण, सिंह, चीता, गधा, ऊट, बकरी आदि।

चित्र : स्थलचर जीवों के भेद

**(२) उरपरिसर्प** - वे जीव, जो पेट के बल पर चलते हैं, वे उरपरिसर्प कहलाते हैं। जैसे सर्प, अजगर आदि।

**(३) भुजपरिसर्प** - वे जीव, जो भुजाओं के बल पर चलते हैं, वे भुजपरिसर्प कहलाते हैं। जैसे चूहा, बन्दर, लंगूर, छिपकली आदि ।

## खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के भेद

### गाथा

**खयरा रोमयपक्खी चम्मयपक्खी य पायडा चेव ।**
**नरलोगाओ बाहिं समुग्ग पक्खी वियय पक्खी ॥२२॥**

### अन्वय

रोमयपक्खी य चम्मयपक्खी खयरा पायडा चेव नरलोगाओ बाहिं समुग्गपक्खी विययपक्खी ॥२२॥

### संस्कृत छाया

खेचरा रोमज पक्षिणश्चर्मज पक्षिणाश्च प्रकटाश्चैव
नरलोकाद् बहिः समुद्गपक्षिणो वितत पक्षिणः ॥२२॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| खयरा - खेचर | रोमयपक्खी - रोमज पक्षी |
| चम्मयपक्खी - चर्मज पक्षी | य - और |
| पायडा - प्रकट (प्रसिद्ध) | चेव - निश्चय ही |
| नरलोगाओ - मनुष्य लोक से | बाहिं - बाहर |
| समुग्गपक्खी - समुद्ग पक्षी | विययपक्खी - वितत् पक्षी |

## भावार्थ

रोमज पक्षी (रोम से बने हुए पंखों वाले) एवं चर्मज पक्षी (चर्म से बने हुए पंखों वाले पक्षी) प्रसिद्ध हैं। मनुष्य लोक से बाहर समुद्ग पक्षी (सिकुडे हुए पंखों वाले) एवं वितत पक्षी (फैले हुए पंखों वाले) होते हैं ॥२२॥

चित्र : खेचर जीवों के भेद

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में खेचर जाति के विभिन्न प्रकारों का वर्णन है ।

मनुष्य लोक अर्थात् जम्बूद्वीप, धातकीद्वीप एवं अर्धपुष्करावर्त द्वीप को अढी द्वीप कहा जाता है । अढी द्वीप में पाये जाने वाले पक्षियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

(१) **रोमज पक्षी** - जिनके पंख रोम से बने हुए होते हैं, (जिनके पंख कोमल एवं मुलायम होते हैं) वे रोमज पक्षी कहलाते हैं, जैसे कबूतर, तोता, सारस, चिडियाँ, हंस, कौआ, मोर आदि।

(२) **चर्मज पक्षी** - जिनके पंख चमडे से बने हुए होते हैं,(जिनके पंख कठोर होते हैं ) वे चर्मज पक्षी कहलाते हैं, जैसे चमगादड, बादुर आदि ।

मनुष्य लोक के बाहर दो प्रकार के पक्षी पाये जाते हैं -

(१) **समुद्ग पक्षी** - जिन पक्षियों के पंख उडते समय भी बंद रहते हैं, वे समुद्ग पक्षी कहलाते हैं।

(२) **वितत पक्षी** - जिन पक्षियों के पंख बैठते समय भी खुले रहते हैं, वे वितत पक्षी कहलाते हैं। समुद्ग एवं वितत पक्षियों का जन्म एवं मरण आकाश में ही होता है।

## संमूर्च्छिम एवं गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच तथा मनुष्य

### गाथा

**सव्वे जल थल खयरा, समुच्छिमा गब्भया दुहा हुंति ।**
**कम्माकम्मग भूमि, अंतरदीवा मणुस्सा य ॥२३॥**

### अन्वय

सव्वे जल थल खयरा समुच्छिमा गब्भया दुहा हुंति कम्माकम्मग भूमिं य अंतरदीवा मणुस्सा ॥२३॥

### संस्कृत छाया

सर्वे जल स्थल खेचराः संमुर्च्छिमा गर्भजा द्विविधा भवन्ति ।
कर्माकर्मभूमिजा अन्तर्द्वीपा मनुष्याश्च ॥२३॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| सव्वे - समस्त | जल - जलचर |
| थल - स्थलचर | खयरा - खेचरा |
| समुच्छिमा - संमूर्च्छिम | गब्भया - गर्भज |
| दुहा - दो (प्रकार के) | हुन्ति - होते हैं |
| कम्माकम्मगभूमि - कर्मभूमिज-अकर्मभूमिज | अन्तरदीवा - अन्तर्द्वीपज |
| य- और | मणुस्सा - मनुष्य |

### भावार्थ

समस्त जलचर, स्थलचर, खेचर तथा कर्मभूमि, अकर्मभूमि एवं अन्तर्द्वीप में उत्पन्न हुए मनुष्य संमूर्च्छिम और गर्भज रुप दो प्रकार के होते हैं ॥२३॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पंचेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य के भेद बताये गये हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के तीन भेद होते हैं- जलचर, स्थलचर और खेचर । इसमें भी स्थलचर के तीन प्रकार होते हैं- चतुष्पद, उरपरिसर्प एवं भुजपरिसर्प । इस प्रकार जलचर, चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचर, इन पांचों के गर्भज एवं समूर्च्छिम की अपेक्षा से १० भेद होते हैं। ये दस भेद पर्याप्ता और अपर्याप्ता की अपेक्षा से २० भेद होते हैं। एकेन्द्रिय के २२, विकलेन्द्रिय के ६ एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच के २०, इस प्रकार तिर्यंच के कुल ४८ भेद होते हैं।

## पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणियों के २० भेद

| | | | |
|---|---|---|---|
| १) | जलचर | गर्भज | पर्याप्ता |
| २) | जलचर | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३) | जलचर | संमूर्च्छिम | पर्याप्ता |
| ४) | जलचर | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ५) | चतुष्पद | गर्भज | पर्याप्ता |
| ६) | चतुष्पद | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ७) | चतुष्पद | संमूर्च्छिम | पर्याप्ता |
| ८) | चतुष्पद | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ९) | उरपरिसर्प | गर्भज | पर्याप्ता |
| १०) | उरपरिसर्प | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ११) | उरपरिसर्प | संमूर्च्छिम | पर्याप्ता |
| १२) | उरपरिसर्प | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १३) | भुजपरिसर्प | गर्भज | पर्याप्ता |
| १४) | भुजपरिसर्प | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १५) | भुजपरिसर्प | संमूर्च्छिम | पर्याप्ता |
| १६) | भुजपरिसर्प | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १७) | खेचर | गर्भज | पर्याप्ता |
| १८) | खेचर | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९) | खेचर | संमूर्च्छिम | पर्याप्ता |
| २०) | खेचर | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

## संमूर्च्छिम एवं गर्भज

**संमूर्च्छिम** - माता- पिता (नर-नारी) के संयोग / शारीरिक संबंध के बिना बाह्य संयोग प्राप्त करके पैदा होने वाले जीव संमूर्च्छिम कहलाते हैं।

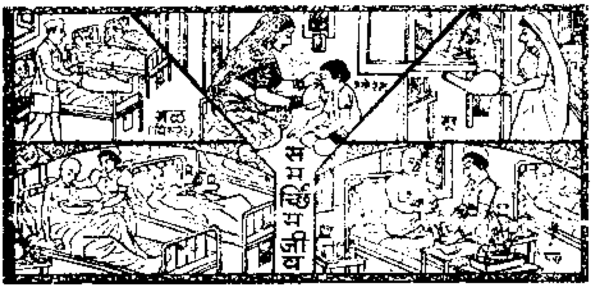

**चित्र : संमूर्च्छिम जीवों के उत्पत्ति स्थान**

**गर्भज-** वे जीव, जो माता-पिता (नर-नारी) के संबंध से पैदा होते हैं, वे गर्भज कहलाते हैं।

एकेन्द्रिय (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वाउकाय, वनस्पतिकाय) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, और चतुरिन्द्रिय जाति के जीवों का केवल संमूर्च्छिम जन्म ही होता है । वे गर्भज नहीं होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य में गर्भज एवं संमूर्च्छिम दोनों भेद होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच के दोनों भेद पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में पाये जाते है। गर्भज मनुष्य पर्याप्ता और अपर्याप्ता होते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्ता अवस्था में ही मर जाते है । वे पर्याप्ता नहीं होते हैं।

### संमूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति के प्रकार

- एकेन्द्रिय एवं द्वीन्द्रिय जाति के जीव उत्पत्ति के संयोग मिल जाने पर अपनी जाति के जीवों के आस पास पैदा हो जाते हैं।
- त्रीन्द्रिय जाति के जीव स्वजातीय जीवों के मल, विष्टा आदि में उत्पन्न होते हैं।
- चतुरिन्द्रिय जाति के जीव स्वजातीय जीवों के मल, लार आदि में उत्पन्न होते हैं।

- पंचेन्द्रिय जाति के संमूर्च्छिम जीव स्वजातीय जीवों के मल, पसीना, वीर्य, रुधिर, मेल, पित्त, पेशाब आदि में पैदा होते हैं।

## मनुष्य के भेद

मनुष्य के मुख्य रुप से तीन भेद हैं।

**१) कर्मभूमिज मनुष्य २) अकर्मभूमिज मनुष्य ३) अन्तर्द्वीपज मनुष्य**

**(१) कर्मभूमि** - जहाँ असि, मसि और कृषि का कार्य होता है । जहाँ अस्त्र-शस्त्र, लेखन एवं खेती का कार्य होता है, उसे कर्मभूमि कहते हैं। कर्मभूमि में जन्म लेने वाले मनुष्य कर्मभूमिज मनुष्य कहलाते हैं। कर्मभूमियाँ कुल पन्द्रह हैं - पांच भरत, पांच महाविदेह और पांच ऐरावत ।

**(२) अकर्मभूमि** - जिस भूमि में अस्त्र-शस्त्र, लेखन एवं कृषि का कार्य नहीं होता है, उसे अकर्मभूमि कहते हैं। उस भूमि में उत्पन्न हुए मनुष्य अकर्मभूमिज मनुष्य कहलाते हैं। अकर्मभूमियाँ ३० हैं- पांच हिमवंत, पांच हिरण्यवंत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यक्, पांच देवकुरु और पांच उत्तरकुरु ।

**(३) अन्तर्द्वीप** - जिसके चांरों तरफ पानी हो, वे अन्तर्द्वीप कहलाते हैं। वहाँ जन्म लेने वाले मनुष्य अन्तर्द्वीपज कहलाते हैं। अन्तर्द्वीप कुल छप्पन हैं।

भरत क्षेत्र की उत्तर दिशा में हिमवन्त नामक पर्वत है । वह पूर्व एवं पश्चिम दिशा में लवण समुद्र तक लम्बा है । इन दोनों दिशाओं में दो-दो द्रष्ट्रांकार भूमियाँ हैं । इसी प्रकार ऐरावत क्षेत्र के उत्तर में शिखरी पर्वत है । वह भी पूर्व एवं पश्चिम दिशा में लवण समुद्र तक लम्बा है । उन दोनों दिशाओं में भी दो-दो द्रष्ट्रांकारभूमियाँ है । इस प्रकार कुल आठ भूमियाँ होती हैं प्रत्येक द्रष्ट्रांकार भूमि में सात-सात अन्तर्द्वीप हैं। इस प्रकार कुल ५६ अन्तर्द्वीप होते हैं।

हिमवन्त पर्वत पर स्थित २८ अन्तर्द्वीपों के जो नाम हैं, उसी नाम के २८ अन्तर्द्वीप शिखरी पर्वत पर स्थित हैं।

पन्द्रह कर्मभूमियाँ, तीस अकर्मभूमियाँ और छप्पन्न अन्द्वीप होने से मनुष्यों के एक सौ एक भेद होते हैं। उनमें गर्भज अपर्याप्ता एवं पर्याप्ता एवं संमूर्च्छिम अपर्याप्ता रूप तीन-तीन भेद होने से कुल तीन सौ तीन भेद होते हैं।

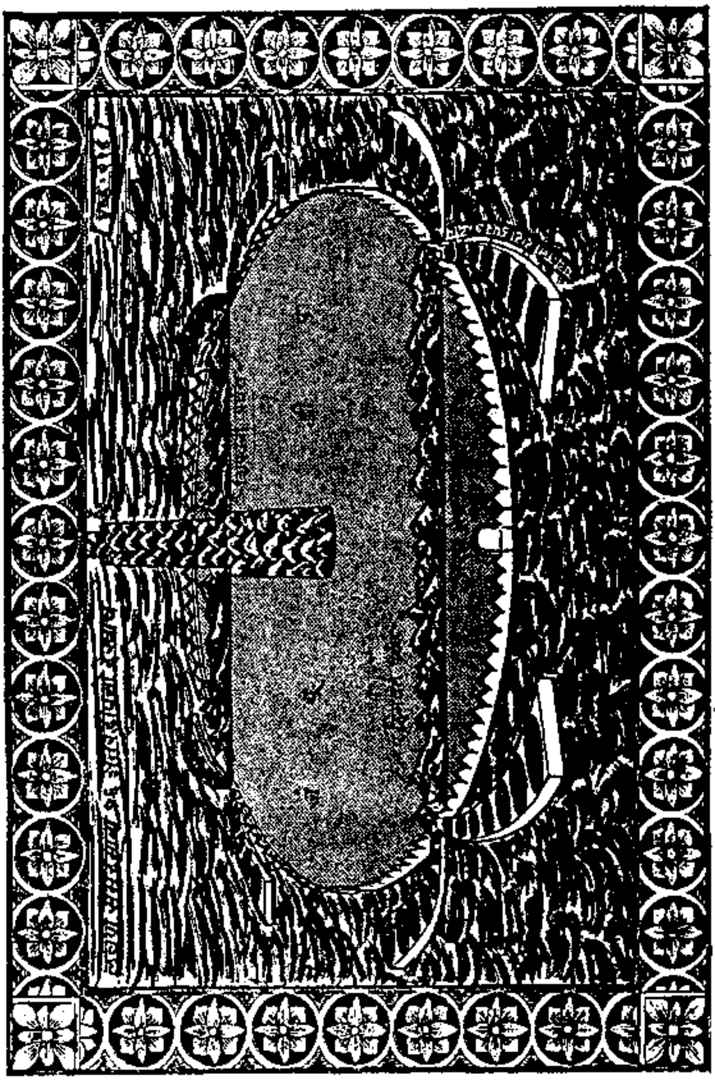

चित्र : छप्पन अन्तर्द्वीप

# मनुष्य के तीन सौ तीन भेद

## कर्मभूमिज मनुष्य के ४५ भेद

| क्र. | | | |
|---|---|---|---|
| १ | प्रथम भरत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| २ | प्रथम भरत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३ | प्रथम भरत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ४ | द्वितीय भरत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ५ | द्वितीय भरत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ६ | द्वितीय भरत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ७ | तृतीय भरत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ८ | तृतीय भरत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ९ | तृतीय भरत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १० | चतुर्थ भरत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ११ | चतुर्थ भरत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १२ | चतुर्थ भरत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १३ | पंचम भरत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १४ | पंचम भरत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १५ | पंचम भरत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १६ | प्रथम ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १७ | प्रथम ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १८ | प्रथम ऐरावत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १९ | द्वितीय ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| २० | द्वितीय ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २१ | द्वितीय ऐरावत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २२ | तृतीय ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| २३ | तृतीय ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २४ | तृतीय ऐरावत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २५ | चतुर्थ ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| २६ | चतुर्थ ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २७ | चतुर्थ ऐरावत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २८ | पंचम ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| २९ | पंचम ऐरावत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३० | पंचम ऐरावत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ३१ | प्रथम महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ३२ | प्रथम महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३३ | प्रथम महाविदेह क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ३४ | द्वितीय महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ३५ | द्वितीय महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३६ | द्वितीय महाविदेह क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ३७ | तृतीय महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ३८ | तृतीय महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३९ | तृतीय महाविदेह क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ४० | चतुर्थ महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ४१ | चतुर्थ महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ४२ | चतुर्थ महाविदेह क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ४३ | पंचम महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ४४ | पंचम महाविदेह क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ४५ | पंचम महाविदेह क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

## अकर्मभूमिज मनुष्य के १० भेद

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४६ | प्रथम हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ४७ | प्रथम हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४८ | प्रथम हिमवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ४९ | द्वितीय हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ५० | द्वितीय हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ५१ | द्वितीय हिमवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ५२ | तृतीय हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ५३ | तृतीय हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ५४ | तृतीय हिमवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ५५ | चतुर्थ हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ५६ | चतुर्थ हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ५७ | चतुर्थ हिमवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ५८ | पंचम हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ५९ | पंचम हिमवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ६० | पंचम हिमवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ६१ | प्रथम हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ६२ | प्रथम हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ६३ | प्रथम हिरण्यवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ६४ | द्वितीय हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ६५ | द्वितीय हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ६६ | द्वितीय हिरण्यवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ६७ | तृतीय हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ६८ | तृतीय हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ६९ | तृतीय हिरण्यवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ७० | चतुर्थ हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ७१ | चतुर्थ हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ७२ | चंतुर्थ हिरण्यवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ७३ | पंचम हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७४ | पंचम हिरण्यवंत क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ७५ | पंचम हिरण्यवंत क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ७६ | प्रथम हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ७७ | प्रथम हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ७८ | प्रथम हरिवर्ष क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ७९ | द्वितीय हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ८० | द्वितीय हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ८१ | द्वितीय हरिवर्ष क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ८२ | तृतीय हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ८३ | तृतीय हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ८४ | तृतीय हरिवर्ष क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ८५ | चतुर्थ हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ८६ | चतुर्थ हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ८७ | चतुर्थ हरिवर्ष क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ८८ | पंचम हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ८९ | पंचम हरिवर्ष क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ९० | पंचम हरिवर्ष क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ९१ | प्रथम रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ९२ | प्रथम रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ९३ | प्रथम रम्यक् क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ९४ | द्वितीय रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ९५ | द्वितीय रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ९६ | द्वितीय रम्यक् क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ९७ | तृतीय रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ९८ | तृतीय रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९९ | तृतीय रम्यक् क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १०० | चतुर्थ रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १०१ | चतुर्थ रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १०२ | चतुर्थ रम्यक् क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १०३ | पंचम रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १०४ | पंचम रम्यक् क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १०५ | पंचम रम्यक् क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १०६ | प्रथम देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १०७ | प्रथम देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १०८ | प्रथम देवकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १०९ | द्वितीय देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ११० | द्वितीय देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १११ | द्वितीय देवकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ११२ | तृतीय देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ११३ | तृतीय देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ११४ | तृतीय देवकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ११५ | चतुर्थ देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ११६ | चतुर्थ देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ११७ | चतुर्थ देवकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ११८ | पंचम देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| ११९ | पंचम देवकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १२० | पंचम देवकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १२१ | प्रथम उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १२२ | प्रथम उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १२३ | प्रथम उत्तरकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १२४ | द्वितीय उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १२५ | द्वितीय उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १२६ | द्वितीय उत्तरकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १२७ | तृतीय उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १२८ | तृतीय उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १२९ | तृतीय उत्तरकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १३० | चतुर्थ उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १३१ | चतुर्थ उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १३२ | चतुर्थ उत्तरकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १३३ | पंचम उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | पर्याप्ता |
| १३४ | पंचम उत्तरकुरु क्षेत्र | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १३५ | पंचम उत्तरकुरु क्षेत्र | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

## हिमवंत पर्वत पर स्थित २८ अन्तर्द्वीपज मनुष्यों के ८४ भेद

| | | | |
|---|---|---|---|
| १३६ | एकोरुक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १३७ | एकोरुक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १३८ | एकोरुक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १३९ | अभासिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १४० | अभासिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १४१ | अभासिक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १४२ | वैषाणिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १४३ | वैषाणिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १४४ | वैषाणिक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १४५ | लांगूलिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १४६ | लांगूलिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १४७ | लांगूलिक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १४८ | हयकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १४९ | हयकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १५० | हयकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १५१ | गजकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १५२ | गजकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १५३ | गजकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १५४ | गोकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १५५ | गोकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १५६ | गोकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १५७ | शष्कुली कर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १५८ | शष्कुली कर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १५९ | शष्कुली कर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १६० | आदर्शमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १६१ | आदर्शमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १६२ | आदर्शमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १६३ | मेण्ढ्रमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १६४ | मेण्ढ्रमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १६५ | मेण्ढ्रमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १६६ | अयोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १६७ | अयोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १६८ | अयोमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १६९ | गोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १७० | गोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १७१ | गोमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १७२ | हयमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १७३ | हयमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १७४ | हयमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १७५ | गजमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १७६ | गजमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १७७ | गजमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १७८ | हरिमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १७९ | हरिमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १८० | हरिमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १८१ | व्याघ्रमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १८२ | व्याघ्रमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १८३ | व्याघ्रमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १८४ | आसकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १८५ | आसकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १८६ | आसकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १८७ | हरिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १८८ | हरिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १८९ | हरिकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १९० | हस्तिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १९१ | हस्तिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १९२ | हस्तिकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १९३ | कर्णप्रावरण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १९४ | कर्णप्रावरण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| १९५ | कर्णप्रावरण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १९६ | उल्कामुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| १९७ | उल्कामुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १९८ | उल्कामुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| १९९ | मेघमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २०० | मेघमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २०१ | मेघमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २०२ | विद्युन्मुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २०३ | विद्युन्मुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २०४ | विद्युन्मुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २०५ | घणदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २०६ | घणदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २०७ | घणदंत अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २०८ | लष्ट्रदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २०९ | लष्ट्रदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २१० | लष्ट्रदंत अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २११ | गुढदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २१२ | गुढदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २१३ | गुढदंत अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २१४ | सुद्धदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २१५ | सुद्धदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २१६ | सुद्धदंत अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २१७ | विद्युद्दन्त अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २१८ | विद्युद्दन्त अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २१९ | विद्युद्दन्त अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

## शिखरी पर्वत पर स्थित २८ अन्तर्द्वीपज मनुष्य के ८४ भेद

| | | | |
|---|---|---|---|
| २२० | एकोरुक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २२१ | एकोरुक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २२२ | एकोरुक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २२३ | अभासिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २२४ | अभासिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २२५ | अभासिक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २२६ | वैषाणिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २२७ | वैषाणिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २२८ | वैषाणिक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २२९ | लांगूलिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २३० | लांगूलिक अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २३१ | लांगूलिक अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २३२ | हयकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २३३ | हयकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २३४ | हयकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २३५ | गजकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २३६ | गजकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २३७ | गजकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २३८ | गोकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २३९ | गोकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २४० | गोकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २४१ | शष्कुली कर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २४२ | शष्कुली कर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २४३ | शष्कुली कर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २४४ | आदर्शमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २४५ | आदर्शमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २४६ | आदर्शमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २४७ | मेण्ढ्मुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २४८ | मेण्ढ्मुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २४९ | मेण्ढ्मुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २५० | अयोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २५१ | अयोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २५२ | अयोमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २५३ | गोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २५४ | गोमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २५५ | गोमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २५६ | हयमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २५७ | हयमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २५८ | हयमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २५९ | गजमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २६० | गजमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २६१ | गजमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २६२ | हरिमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २६३ | हरिमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २६४ | हरिमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २६५ | व्याघ्रमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २६६ | व्याघ्रमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २६७ | व्याघ्रमुख अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २६८ | आसकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २६९ | आसकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २७० | आसकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २७१ | हरिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २७२ | हरिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २७३ | हरिकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २७४ | हस्तिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २७५ | हस्तिकर्ण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २७६ | हस्तिकर्ण अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २७७ | कर्णप्रावरण अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २७८ | कर्णप्रावरण अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २८९ | कर्णप्रावरण अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २८० | उल्कामुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २८१ | उल्कामुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २८२ | उल्कामुख अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २८३ | मेघमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २८४ | मेघमुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २८५ | मेघमुख अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २८६ | विद्युन्मुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २८७ | विद्युन्मुख अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २८८ | विद्युन्मुख अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २८९ | घणदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २९० | घणदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २९१ | घणदंत अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २९२ | लष्ट्रदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २९३ | लष्ट्रदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| २९४ | लष्ट्रदंत अन्तर्द्वीप | संमूच्छिम | अपर्याप्ता |
| २९५ | गुढदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २९६ | गुढदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २९७ | गुढदंत अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| २९८ | सुद्धदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| २९९ | सुद्धदंत अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३०० | सुद्धदंत अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |
| ३०१ | विद्युद्दन्त अन्तर्द्वीप | गर्भज | पर्याप्ता |
| ३०२ | विद्युद्दन्त अन्तर्द्वीप | गर्भज | अपर्याप्ता |
| ३०३ | विद्युद्दन्त अन्तर्द्वीप | संमूर्च्छिम | अपर्याप्ता |

## देवताओं के भेद

### गाथा

**दसहा भवणाहिवइ, अट्ठविहा वाणमंतरा हुंति**
**जोइसिया पंचविहा दुविहा वेमाणिया देवा ॥२४॥**

### अन्वय

दसहा भवणाहिवइ अट्ठविहा वाणमंतरा पंचविहा जोइसिया दुविहा वेमाणिया देवा हुंति ॥२४॥

### संस्कृत छाया

दशधा भवनाधिपतयोऽष्टविधा वाणमन्तरा भवंति ।
ज्योतिष्का: पंचविधा द्विविधा वैमानिका देवाः ॥२४॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| दसहा - दस प्रकार के | भवणाहिवइ - भवनाधिपति (भवनपति) |
| अट्ठविहा - आठ प्रकार के | वाणमंतरा - वाणव्यंतर |
| हुंति - होते हैं | जोइसिया - ज्योतिष्क |
| पंचविहा - पांच प्रकार के | दुविहा - दो प्रकार के |
| वेमाणिया - वैमानिक | देवा - देव |

## भावार्थ

भवनपति देव दस प्रकार के, वाणव्यंतर देव आठ प्रकार के, ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के, वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं ॥२४॥

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में देवता के भेदों का वर्णन किया गया है -

**(१) भवनपति देव** - घर जैसे भवनों में रहने वाले भवनपति देव कहलाते हैं। इनके दस भेद हैं। रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक पृथ्वी के उपर का एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण का थर प्रतर है, उसके उपर का एक हजार योजन का परिमाण एवं नीचे का एक हजार योजन का परिमाण छोडकर शेष १,७८,००० योजन परिमाण में भवनपति देव निवास करते हैं।

भवनपतिदेव दिखने कुमार की भाँति स्वरुपवान्, मनोहर एवं सुंदर होते हैं। इनकी गति मधुर एवं मंद-मंद होती है ।

**(२) व्यंतर देव** - भवनपति देव जिस १,७८,००० योजन परिमाण में रहते हैं, उसे उपर के हजार योजन परिमाण में से नीचे एवं उपर के दस-दस योजन छोडकर शेष ८० योजन में वाणव्यंतर एवं व्यंतर देव निवास कहते हैं।

ये जंगलों, पहाडों एवं गुफाओं के अन्तरों में रहने के कारण व्यंतर एवं वाणव्यंतर कहलाते हैं।

**(३) ज्योतिष्क देव**- मध्य लोक के ठीक मध्य में मेरुपर्वत है और मेरुपर्वत के मूल में आठ रुचक प्रदेश वाला समतल भूभाग है जिसका नाम समभूतला है । इस समभूतला प्रदेश से ९०० योजन उपर एवं ९०० योजन नीचे तक मध्य लोक है । इस प्रकार मध्य लोक (तिर्च्छा लोक) १८०० योजन प्रमाण विस्तृत है ।

समभूतला प्रदेश के उपरी ९०० योजन में ज्योतिष्क देव स्थित है । वे प्रकाश (ज्योति) करते हैं, इस कारण उन्हें ज्योतिष्क देव कहते है । ज्योतिष्क देवों के क्षेत्र की अपेक्षा से दो भेद हैं-

**(१) चर ज्योतिष्क** - ढाई द्वीप (मनुष्य लोक) में जो ज्योतिष्क देव हैं एवं सदा

मेरुपर्वत की प्रदक्षिणा देते हैं, उन्हें चर ज्योतिष्क कहा जाता है ।

**(२) अचर ज्योतिष्क** - वे ज्योतिष्क देव, जो ढाई द्वीप से बाहर स्थित है एवं सदैव स्थिर ही रहते हैं, उन्हें अचर ज्योतिष्क कहा जाता है ।

प्रकाशित करने की अपेक्षा से ज्योतिष्क देवों को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता हैं - (१) चन्द्र (२) सूर्य (३) ग्रह (४) नक्षत्र (५) तारा

समभूतला पृथ्वी के उपर के ७९० योजन के बाद ज्योतिष्क क्षेत्र का प्रारंभ होता है । ७९० योजन के बाद तारों के विमान है । वहाँ से दस योजन की ऊँचाई पर सूर्य देवता का विमान है । वहाँ से अस्सी योजन की उँचाई पर चन्द्र देव का विमान स्थित है । वहाँ से चार योजन की ऊँचाई पर नक्षत्रों के विमान हैं एवं वहाँ से सोलह योजन की ऊंचाई पर ग्रहों के विमान हैं।

**(४) वैमानिक देव -**

वि - भिन्न - भिन्न, मान - प्रमाण, लम्बाई-चौडाई, माप। अलग - २ मान/माप वाले विमानों में उत्पन्न होने वाले देव वैमानिक कहलाते हैं।

ज्योतिष्क क्षेत्र के उपर असंख्यात योजन की ऊँचाई पर वैमानिक निकाय का प्रारंभ होता है । असंख्यात योजन पार करने के बाद मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में सौधर्म देवलोक एवं उत्तर में ईशान देवलोक स्थित है । सौधर्म देवलोक के बहुत उपर सम श्रेणी में तीसरा सनत्कुमार देवलोक है, उसी प्रकार ईशान देवलोक के उपर माहेन्द्र देवलोक स्थित है । ईशान और माहेन्द्र देव विमान के बहुत उपर मध्य में ब्रह्मलोक है ।

उसके उपर छट्ठा लांतक देवलोक, उसके उपर सातवां महाशुक्र देवलोक, उसके उपर आठवां सहस्रार देवलोक है । उसके उपर पहले-दूसरे देवलोक के समान नवमां आनत एवं दसवां प्राणत देवलोक है । उनके उपर समश्रेणी में ग्यारहवां आरण एवं बारहवां अच्युत देवलोक है ।

तीन किल्बिषिक देवों में से प्रथम किल्बिषिक प्रथम और दूसरे देवलोक के नीचे हैं। दूसरा किल्बिषिक देवलोक तीसरे और चौथे देवलोक के नीचे है । तीसरा किल्बिषिक छट्ठे देवलोक के नीचे है ।

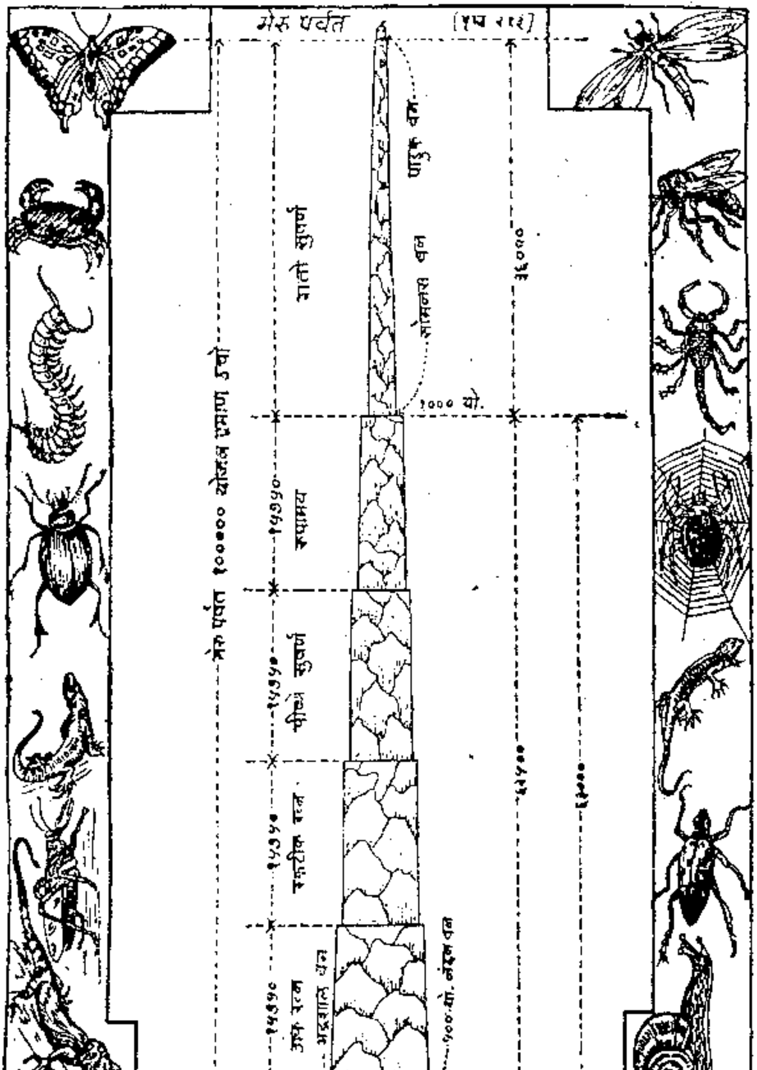
मेरु पर्वत
मेरु पर्वत १००००० योजन प्रमाण ऊंचा
पांडुक वन
सोमनस वन
नंदन वन
भद्रशाल वन
३६०००
१००० यो.
अं. क. वि.

चित्र : मेरू पर्वत

लोकंतिक देवलोक नौ हैं और वे पांचवें देवलोक के ब्रह्मप्रतर में स्थित हैं।

बारहवें अच्युत देवलोक के उपर नवग्रैवेयक देवों के देवविमान स्थित हैं। उनके उपर पांच अनुत्तर देवों के विमान हैं जो समान ऊँचाई पर स्थित हैं। पांच अनुत्तर विमानों में से सर्वार्थसिद्ध विमान मध्य में है, शेष चार अनुत्तर विमान चारों दिशाओं में स्थित है ।

वे देव, जो तीर्थंकर परमात्मा के च्यवन, जन्म आदि पंचकल्याणक पर उनके खजाने को धन-धान्य, सोना-चांदी आदि से परिपूर्ण करते हैं, वे तिर्यग्जृंभक देव कहलाते हैं। वे भी व्यंतर. वाणव्यंतर देवों के स्थान पर निवास करते हैं। वे देव, जो नारकी जीवों को घोर यातनाएँ देते हैं, परमाधामी देव कहलाते हैं। वे बडे क्रूर, हिंसक और कषायी होते हैं। इन सभी देवों को मुख्य रुप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है -

(१) **कल्पोपपन्न देव** - जिन देवों में स्वामी-सेवक या राजा-प्रजा का व्यवहार होता है । छोटे-बडे का व्यवहार होता है, वे कल्पोपपन्न देव कहलाते हैं। भवनपति, परमाधामी, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक वैमानिक, नवलोकांतिक, किल्बिषिक देवों में इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था होती हैं, इस कारण वे कल्पोपपन्न देव कहलाते हैं।

(२) **कल्पातीत देव** - जिन देवों में समानता होती है । सेठ-नौकर जैसी व्यवस्था नहीं होती है, वे कल्पातीत देव कहलाते हैं। नवग्रैवेयक देव एवं पांच अनुत्तर विमान के देव इसी श्रेणी में आते हैं।

## देवताओं के भेद

जीवों के ५६३ भेदों में से १९८ भेद देवताओं के होते हैं।

| | | |
|---|---|---|
| भवनपति देव | - | १० |
| परमाधामी | - | १५ |
| व्यंतर देव | - | ८ |
| वाणव्यंतर देव | - | ८ |

| | | |
|---|---|---|
| तिर्यग्जृंभक देव | – | १० |
| चर ज्योतिष्क | – | ५ |
| अचर ज्योतिष्क | – | ५ |
| सौधर्म आदि देव | – | १२ |
| लोकान्तिक देव | – | ९ |
| ग्रैवेयक देव | – | ९ |
| अनुत्तर देव | – | ५ |
| किल्बिषिक देव | – | ३ |
| कुल | – | ९९ |

इस प्रकार कल्पोपपन्न एवं कल्पातीत देवों के कुल ९९ भेद होते हैं । ये ९८ भे पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की अपेक्षा से १९८ होते हैं।

# देवों के कुल १९८ भेदों की सूची

## भवनपति देवों के २० भेद

| | | |
|---|---|---|
| १ | असुरकुमार | पर्याप्ता |
| २ | असुरकुमार | अपर्याप्ता |
| ३ | नागकुमार | पर्याप्ता |
| ४ | नागकुमार | अपर्याप्ता |
| ५ | विद्युत्कुमार | पर्याप्ता |
| ६ | विद्युत्कुमार | अपर्याप्ता |
| ७ | सुपर्णकुमार | पर्याप्ता |
| ८ | सुपर्णकुमार | अपर्याप्ता |
| ९ | अग्निकुमार | पर्याप्ता |
| १० | अग्निकुमार | अपर्याप्ता |
| ११ | वायुकुमार | पर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| १२ | वायुकुमार | अपर्याप्ता |
| १३ | स्तनितकुमार | पर्याप्ता |
| १४ | स्तनितकुमार | अपर्याप्ता |
| १५ | उदधिकुमार | पर्याप्ता |
| १६ | उदधिकुमार | अपर्याप्ता |
| १७ | द्वीपकुमार | पर्याप्ता |
| १८ | द्वीपकुमार | अपर्याप्ता |
| १९ | दिक्कुमार | पर्याप्ता |
| २० | दिक्कुमार | अपर्याप्ता |

## व्यंतर देवों के १६ भेद

| | | |
|---|---|---|
| २१ | किन्नर देव | पर्याप्ता |
| २२ | किन्नर देव | अपर्याप्ता |
| २३ | किंपुरुष देव | पर्याप्ता |
| २४ | किंपुरुष देव | अपर्याप्ता |
| २५ | महोरग देव | पर्याप्ता |
| २६ | महोरग देव | अपर्याप्ता |
| २७ | गान्धर्व देव | पर्याप्ता |
| २८ | गान्धर्व देव | अपर्याप्ता |
| २९ | यक्ष देव | पर्याप्ता |
| ३० | यक्ष देव | अपर्याप्ता |
| ३१ | राक्षस देव | पर्याप्ता |
| ३२ | राक्षस देव | अपर्याप्ता |
| ३३ | भूत देव | पर्याप्ता |
| ३४ | भूत देव | अपर्याप्ता |
| ३५ | पिशाच देव | पर्याप्ता |
| ३६ | पिशाच देव | अपर्याप्ता |

## वाणव्यंतर देवों के १६ भेद

| | | |
|---|---|---|
| ३७ | अणपन्नी देव | पर्याप्ता |
| ३८ | अणपन्नी देव | अपर्याप्ता |
| ३९ | पणपन्नी देव | पर्याप्ता |
| ४० | पणपन्नी देव | अपर्याप्ता |
| ४१ | इसीवादी देव | पर्याप्ता |
| ४२ | इसीवादी देव | अपर्याप्ता |
| ४३ | भूतवादी देव | पर्याप्ता |
| ४४ | भूतवादी देव | अपर्याप्ता |
| ४५ | कंदित देव | पर्याप्ता |
| ४६ | कंदित देव | अपर्याप्ता |
| ४७ | महाकंदित देव | पर्याप्ता |
| ४८ | महाकंदित देव | अपर्याप्ता |
| ४९ | कोहंड देव | पर्याप्ता |
| ५० | कोहंड देव | अपर्याप्ता |
| ५१ | पतंग देव | पर्याप्ता |
| ५२ | पतंग देव | अपर्याप्ता |

## चर ज्योतिष्क देवों के १० भेद

| | | |
|---|---|---|
| ५३ | सूर्य देव | पर्याप्ता |
| ५४ | सूर्य देव | अपर्याप्ता |
| ५५ | चन्द्र देव | पर्याप्ता |
| ५६ | चन्द्र देव | अपर्याप्ता |
| ५७ | ग्रह देव | पर्याप्ता |
| ५८ | ग्रह देव | अपर्याप्ता |
| ५९ | नक्षत्र देव | पर्याप्ता |
| ६० | नक्षत्र देव | अपर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| ६१ | तारा देव | पर्याप्ता |
| ६२ | तारा देव | अपर्याप्ता |

## अचर ज्योतिष्क देवों के १० भेद

| | | |
|---|---|---|
| ६३ | सूर्य देव | पर्याप्ता |
| ६४ | सूर्य देव | अपर्याप्ता |
| ६५ | चन्द्र देव | पर्याप्ता |
| ६६ | चन्द्र देव | अपर्याप्ता |
| ६७ | ग्रह देव | पर्याप्ता |
| ६८ | ग्रह देव | अपर्याप्ता |
| ६९ | नक्षत्र देव | पर्याप्ता |
| ७० | नक्षत्र देव | अपर्याप्ता |
| ७१ | तारा देव | पर्याप्ता |
| ७२ | तारा देव | अपर्याप्ता |

## वैमानिक देवों के २४ भेद

| | | |
|---|---|---|
| ७३ | सौधर्म देव | पर्याप्ता |
| ७४ | सौधर्म देव | अपर्याप्ता |
| ७५ | ईशान देव | पर्याप्ता |
| ७६ | ईशान देव | अपर्याप्ता |
| ७७ | सनत्कुमार देव | पर्याप्ता |
| ७८ | सनत्कुमार देव | अपर्याप्ता |
| ७९ | माहेन्द्र देव | पर्याप्ता |
| ८० | माहेन्द्र देव | अपर्याप्ता |
| ८१ | ब्रह्मलोक देव | पर्याप्ता |
| ८२ | ब्रह्मलोक देव | अपर्याप्ता |
| ८३ | लांतक देव | पर्याप्ता |
| ८४ | लांतक देव | अपर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| ८५ | महाशुक्र देव | पर्याप्ता |
| ८६ | महाशुक्र देव | अपर्याप्ता |
| ८७ | सहस्रार देव | पर्याप्ता |
| ८८ | सहस्रार देव | अपर्याप्ता |
| ८९ | आनत देव | पर्याप्ता |
| ९० | आनत देव | अपर्याप्ता |
| ९१ | प्राणत देव | पर्याप्ता |
| ९२ | प्राणत देव | अपर्याप्ता |
| ९३ | आरण देव | पर्याप्ता |
| ९४ | आरण देव | अपर्याप्ता |
| ९५ | अच्युत देव | पर्याप्ता |
| ९६ | अच्युत देव | अपर्याप्ता |

**लोकांतिक देवों के १८ भेद**

| | | |
|---|---|---|
| ९७ | सारस्वत देव | पर्याप्ता |
| ९८ | सारस्वत देव | अपर्याप्ता |
| ९९ | आदित्य देव | पर्याप्ता |
| १०० | आदित्य देव | अपर्याप्ता |
| १०१ | वह्नि देव | पर्याप्ता |
| १०२ | वह्नि देव | अपर्याप्ता |
| १०३ | अरुण देव | पर्याप्ता |
| १०४ | अरुण देव | अपर्याप्ता |
| १०५ | गर्दतोय देव | पर्याप्ता |
| १०६ | गर्दतोय देव | अपर्याप्ता |
| १०७ | तुषित देव | पर्याप्ता |
| १०८ | तुषित देव | अपर्याप्ता |
| १०९ | अव्याबाध देव | पर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| ११० | अव्याबाध देव | अपर्याप्ता |
| १११ | मरुत देव | पर्याप्ता |
| ११२ | मरुत देव | अपर्याप्ता |
| ११३ | अरिष्ट देव | पर्याप्ता |
| ११४ | अरिष्ट देव | अपर्याप्ता |

## ग्रैवेयक देवों के १८ भेद

| | | |
|---|---|---|
| ११५ | सुदर्शन देव | पर्याप्ता |
| ११६ | सुदर्शन देव | अपर्याप्ता |
| ११७ | सुप्रतिबद्ध देव | पर्याप्ता |
| ११८ | सुप्रतिबद्ध देव | अपर्याप्ता |
| ११९ | मनोरम देव | पर्याप्ता |
| १२० | मनोरम देव | अपर्याप्ता |
| १२१ | सर्वतोभद्र | पर्याप्ता |
| १२२ | सर्वतोभद्र | अपर्याप्ता |
| १२३ | सुविशाल देव | पर्याप्ता |
| १२४ | सुविशाल देव | अपर्याप्ता |
| १२५ | सुमनस देव | पर्याप्ता |
| १२६ | सुमनस देव | अपर्याप्ता |
| १२७ | सौमनस्य देव | पर्याप्ता |
| १२८ | सौमनस्य देव | अपर्याप्ता |
| १२९ | प्रियंकर देव | पर्याप्ता |
| १३० | प्रियंकर देव | अपर्याप्ता |
| १३१ | नंदीकर देव | पर्याप्ता |
| १३२ | नंदीकर देव | अपर्याप्ता |

## अनुत्तर देवों के दस भेद

| | | |
|---|---|---|
| १३३ | विजय देव | पर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| १३४ | विजय देव | अपर्याप्ता |
| १३५ | वैजयन्त देव | पर्याप्ता |
| १३६ | वैजयन्त देव | अपर्याप्ता |
| १३७ | जयन्त देव | पर्याप्ता |
| १३८ | जयन्त देव | अपर्याप्ता |
| १३९ | अपराजित देव | पर्याप्ता |
| १४० | अपराजित देव | अपर्याप्ता |
| १४१ | सर्वार्थसिद्ध देव | पर्याप्ता |
| १४२ | सर्वार्थसिद्ध देव | अपर्याप्ता |

**तिर्यग्जृंभक देवों के २० भेद**

| | | |
|---|---|---|
| १४३ | अन्नजृंभकदेव | पर्याप्ता |
| १४४ | अन्नजृंभकदेव | अपर्याप्ता |
| १४५ | पानजृंभक देव | पर्याप्ता |
| १४६ | पानजृंभक देव | अपर्याप्ता |
| १४७ | वस्त्रजृंभकदेव | पर्याप्ता |
| १४८ | वस्त्रजृंभकदेव | अपर्याप्ता |
| १४९ | लयनजृंभकदेव | पर्याप्ता |
| १५० | लयनजृंभकदेव | अपर्याप्ता |
| १५१ | पुष्पजृंभक देव | पर्याप्ता |
| १५२ | पुष्पजृंभक देव | अपर्याप्ता |
| १५३ | फलजृंभक देव | पर्याप्ता |
| १५४ | फलजृंभक देव | अपर्याप्ता |
| १५५ | पुष्पफलजृंभकदेव | पर्याप्ता |
| १५६ | पुष्पफलजृंभकदेव | अपर्याप्ता |
| १५७ | शयनजृंभकदेव | पर्याप्ता |
| १५८ | शयनजृंभकदेव | अपर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| १५९ | विद्याजृंभकदेव | पर्याप्ता |
| १६० | विद्याजृंभकदेव | अपर्याप्ता |
| १६१ | अवियतजृंभक देव | पर्याप्ता |
| १६२ | अवियतजृंभक देव | अपर्याप्ता |

## परमाधामी देवों के ३० भेद

| | | |
|---|---|---|
| १६३ | अंब देव | पर्याप्ता |
| १६४ | अंब देव | अपर्याप्ता |
| १६५ | अंबरिश देव | पर्याप्ता |
| १६६ | अंबरिश देव | अपर्याप्ता |
| १६७ | श्याम देव | पर्याप्ता |
| १६८ | श्याम देव | अपर्याप्ता |
| १६९ | शबल देव | पर्याप्ता |
| १७० | शबल देव | अपर्याप्ता |
| १७१ | रुद्र देव | पर्याप्ता |
| १७२ | रुद्र देव | अपर्याप्ता |
| १७३ | उपरुद्र देव | पर्याप्ता |
| १७४ | उपरुद्र देव | अपर्याप्ता |
| १७५ | काल देव | पर्याप्ता |
| १७६ | काल देव | अपर्याप्ता |
| १७७ | महाकाल देव | पर्याप्ता |
| १७८ | महाकाल देव | अपर्याप्ता |
| १७९ | असिपत्र देव | पर्याप्ता |
| १८० | असिपत्र देव | अपर्याप्ता |
| १८१ | वण देव | पर्याप्ता |
| १८२ | वण देव | अपर्याप्ता |
| १८३ | कुंभी देव | पर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| १८४ | कुंभी देव | अपर्याप्ता |
| १८५ | वालुका देव | पर्याप्ता |
| १८६ | वालुका देव | अपर्याप्ता |
| १८७ | वैतरणी देव | पर्याप्ता |
| १८८ | वैतरणी देव | अपर्याप्ता |
| १८९ | खरस्वर देव | पर्याप्ता |
| १९० | खरस्वर देव | अपर्याप्ता |
| १९१ | महाघोष देव | पर्याप्ता |
| १९२ | महाघोष देव | अपर्याप्ता |
| | **किल्बिषिक देवों के ६ भेद** | |
| १९३ | प्रथम किल्बिषिक देव | पर्याप्ता |
| १९४ | प्रथम किल्बिषिक देव | अपर्याप्ता |
| १९५ | द्वितीय किल्बिषिक देव | पर्याप्ता |
| १९६ | द्वितीय किल्बिषिक देव | अपर्याप्ता |
| १९७ | तृतीय किल्बिषिक देव | पर्याप्ता |
| १९८ | तृतीय किल्बिषिक देव | अपर्याप्ता |

## मुक्त जीवों के भेद

### गाथा

**सिद्धा पनरस भेया तित्थातित्थाइ सिद्ध भेएणं ।**
**एए संखेवेणं जीव विगप्पा समक्खाया ॥२५॥**

### अन्वय

तित्थातित्थाइ सिद्ध भेएणं सिद्धा पनरस भेया एए जीव विगप्पा संखेवेणं समक्खाया ॥२५॥

### संस्कृत छाया

सिद्धाः पंचदश भेदाः तीर्थातीर्थादि सिद्धभेदेन ।
एते संक्षेपेण जीव विकल्पाः समाख्याताः ॥२५॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| सिद्धा - सिद्ध | पनरस - पन्द्रह |
| भेया - भेद | तित्थ - तीर्थंकर |
| अतित्थ - अतीर्थंकर | आइ - आदि |
| सिद्ध - सिद्ध | भेएणं - भेदों की अपेक्षा से |
| एए - ये | संखेवेणं - संक्षेप में |
| जीव - जीव (के) | विगप्पा - विकल्प (भेद) |
| समक्खाया - आख्यान | |

## भावार्थ

तीर्थंकर, अतीर्थंकर आदि भेदों की अपेक्षा से सिद्ध जीव पन्द्रह प्रकार के हैं। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय एवं सिद्धों के भेद संक्षेप में आख्यायित (निरुपित) किये गये हैं ॥२५॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में सिद्धों के भेदों का वर्णन किया गया है ।

- सिद्ध किसे कहें ?

- वे जीव जिन्होंने घाती रुप चार कर्मों का एवं अघाती रूप चार कर्मों का सर्वथा - संपूर्ण क्षय कर दिया हैं। जन्म-जरा और मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर लोक के अग्रभाग सिद्धशिला पर बिराजमान हो गये हैं, वे जीव सिद्धात्मा/मुक्तात्मा कहलाते हैं। सिद्ध जीवों के पन्द्रह भेद होते हैं। इस गाथा दो भेद नामपूर्वक प्ररूपित किये गये हैं।

**तीर्थंकर सिद्ध** - वे जीव, जो तीर्थंकर बनकर मोक्षगामी होते हैं, वे तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं। जैसे महावीरादि चौबीस तीर्थंकर परमात्मा। तीर्थंकर साधु-साध्वी-श्रावक-

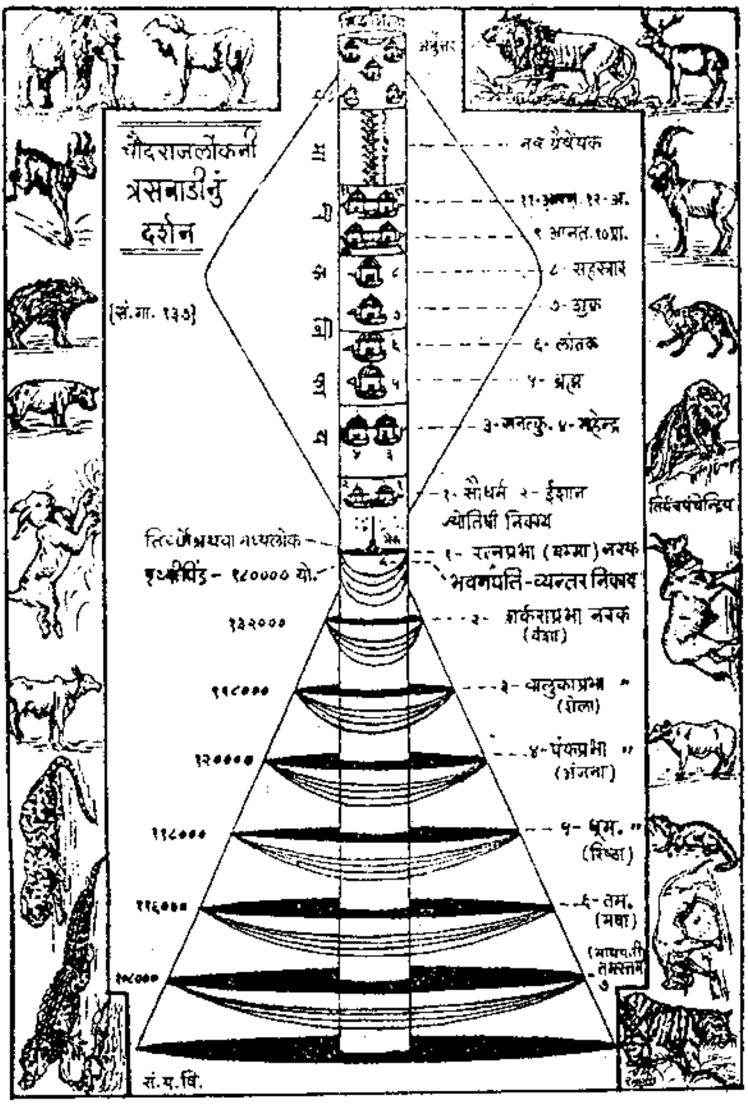
चौदराजलोकनी
त्रसनाडीनुं
दर्शन
(सं.गा. १३७)
अनुत्तर
नव ग्रैवेयक
११-आरण १२-अ.
९ आनत १०प्रा.
८- सहस्त्रार
७- शुक्र
६- लांतक
५- ब्रह्म
३-सनत्कु. ४- महेन्द्र
१- सौधर्म २- ईशान
ज्योतिषी निकाय
तिर्यग्‌ अथवा मध्यलोक
१- रत्नप्रभा (घम्मा) नरक
भवनपति-व्यन्तर निकाय
२- शर्कराप्रभा नरक
(वंशा)
३- वालुकाप्रभा "
(शैला)
४- पंकप्रभा "
(अंजना)
५- धूम. "
(रिष्टा)
६- तम.
(मघा)
तमस्तम
७
तिर्यंचपंचेन्द्रिय
सं.प.वि.

चित्र : चौदह राजलोक

श्राविका रुप चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं।

**अतीर्थंकर सिद्ध** – वे जीव, जो तीर्थंकर नहीं बनते हैं, सामान्य केवली अवस्था में मोक्षधाम को उपलब्ध करते हैं, वे अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं, जैसे गौतम गणधर, पुण्डरिक स्वामी आदि ।

इन पच्चीस गाथाओं में संसारी जीव के ५६३ भेद विस्तार से उदाहरण सहित बताये गये हैं एवं सिद्धात्माओं के भी पन्द्रह भेद बताये गये हैं।

## संसारी जीवों के भेद-प्रभेद

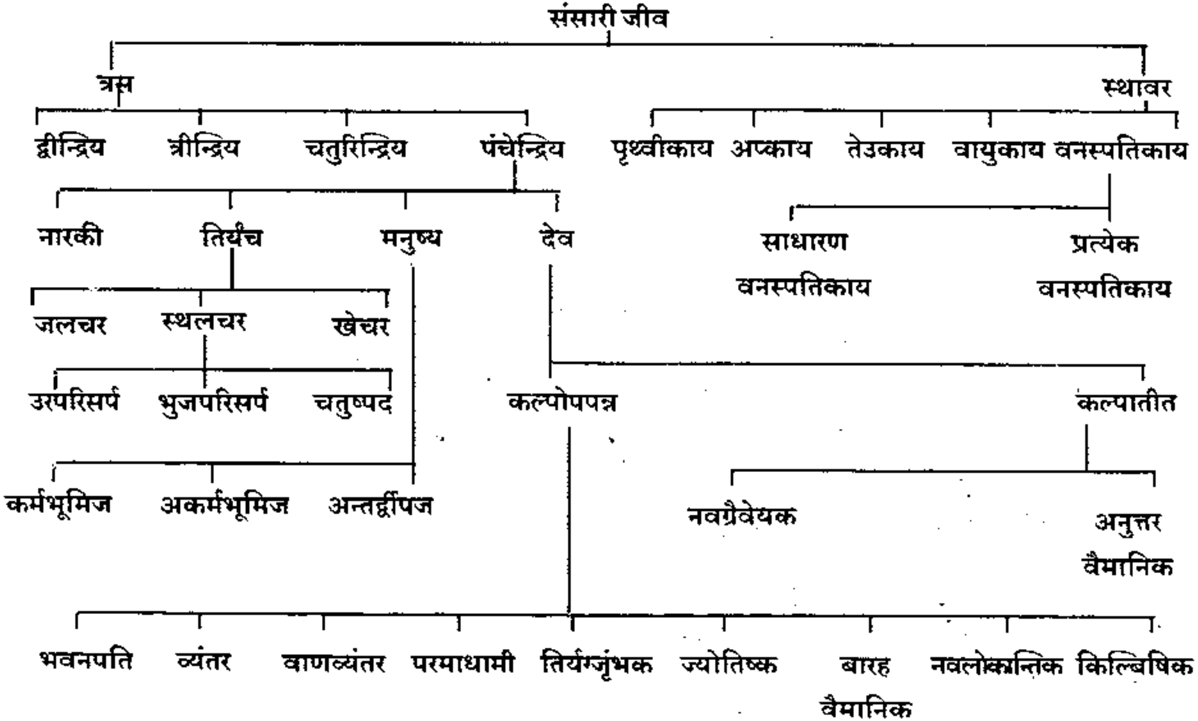

# द्वितीय विभाग

## पांच द्वारों का कथन

### गाथा

**एएसिं जीवाणं सरीरमाऊ ठिई सकायम्मि ।**
**पाणा जोणि पमाणं जेसिं जं अत्थि तं भणिमो ॥२६॥**

### अन्वय

एएसिं जीवाणं जेसिं जं सरीरं आऊ सकायम्मि ठिई पाणा जोणि पमाणं अत्थि तं भणिमो ॥२६॥

### संस्कृत छाया

एतेषां जीवानां शरीरमायुः स्थितिः स्वकाये ।
प्राण योनि प्रमाणं येषां यदस्ति तद्भणिष्यामः ॥२६॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| एएसिं - इन पूर्वोक्त | जीवाणं - जीवों में |
| सरीरं - शरीर | आउ - आयुष्य |
| ठिई - स्थिति | सकायम्मि - स्वकाय में |
| पाणा - प्राण | जोणि - योनि |
| पमाणं - प्रमाण | जेसिं - जिसको |
| जं - जितना | अत्थि - है |
| तं - उसे | भणिमो - कहते हैं। |

### भावार्थ

इन पूर्वोक्त पांच सौ त्रेसठ जीवों में जिनका जितना शरीर (अवगाहना), आयुष्य, स्वकाय स्थिति, प्राण और योनियों का प्रमाण होता है, उसे कहा जाता है ॥२६॥

## विशेष विवेचन

जीव विचार प्रकरण को प्रमुखतया दो भागों में विभक्त किया जा सकता है - प्रथम भाग में जीव राशि के कुल ५६३ भेदों का प्रस्तुतीकरण है और दूसरे विभाग में पांच सौ त्रेसठ भेदों का पांच द्वारों के द्वारा विशेष विवेचन हैं ।

## पांच द्वार

**(१) शरीर या अवगाहना द्वार** - इस द्वार के अन्तर्गत जीवों लम्बाई बताई जाती है । उनका शरीरमान जघन्य और उत्कृष्ट, दोनों प्रकारों से प्रस्तुत किया जायेगा ।

**(२) आयुष्य द्वार** - किस जीव का न्यूनतम (जघन्य) आयुष्य कितना है और उत्कृष्ट (अधिकतम) आयुष्य कितना है, उसका विवेचन आयुष्य द्वार में समाहित होता है।

**(३) स्वकाय स्थिति द्वार** - कौनसा जीव कितनी बार उसी काया (भव-पर्याय) में जन्म-मरण करता है, इस पदार्थ का निरुपण स्वकाय स्थिति द्वार करता है ।

**(४) प्राण द्वार** - किस जीव में कितने प्राण होते हैं, इसका वर्णन प्राण द्वार करता है।

**(५) योनि द्वार** - एकेन्द्रिय आदि जीवों की कितनी योनियाँ होती हैं, इसका विवेचन करने वाला योनि द्वार कहलाता है ।

## प्रथम अवगाहना द्वार का कथन

## एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की ऊँचाई

### गाथा

**अंगुल असंख-भागो सरीरमेगिंदियाणं सव्वेसिं ।**
**जोयण सहस्स-महियं नवरं पत्तेय-रुक्खाणं ॥२७॥**

### अन्वय

सव्वेसिं एगिंदियाणं सरीरं अंगुल असंखभागो नवरं पत्तेय रुक्खाणं जोयण सहस्सं-अहियं ॥२७॥

### संस्कृत छाया

अंगुलासंख्येय भागः शरीरमेकेन्द्रियाणां सर्वेषाम् ।
योजन सहस्रमधिकं नवरं प्रत्येक-वृक्षाणाम् ॥२७॥

शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| अंगुल - अंगुल का | जोयण- योजन |
| असंखभागो - असंख्यातवां भाग | सहस्सं- हजार |
| सरीरं - शरीर (अवगाहना) | अहियं- अधिक |
| ऐगिंदियाणं - एकेन्द्रिय जीवों की | नवरं- परन्तु |
| सव्वेसिं - समस्त | पत्तेय- प्रत्येक |
| रुक्खाणं- वृक्षों की (वनस्पतिकायिक जीवों की) | |

## भावार्थ

समस्त एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की अवगाहना (ऊँचाई) अंगुली के असंख्यातवें भाग जितनी है परन्तु प्रत्येक वनस्पतिकाय की अवगाहना हजार योजन से कुछ अधिक है ॥२७॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में एकेन्द्रिय जीवों के शरीर की ऊँचाई का विवेचन है ।

अंगुली का असंख्यातवां भाग कितना होता है ?

सुई की नोंक पर जितना भाग टिके, उसका भी असंख्यातवां भाग अंगुल का असंख्यातवां भाग कहलाता हैं। इसके भी असंख्यात भेद होते हैं।

सूक्ष्म हो या बादर, समस्त एकेन्द्रिय अर्थात् पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है । यह जघन्य और उत्कृष्ट रुप से कही गयी है । हालांकि इनकी अवगाहना में भी विशेष अन्तर होता है ।

प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है जबकि उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन से थोडी अधिक होती है पर यह पर्याप्ता जीवों की होती है । इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों के बावीस भेदों में से इक्कीस भेदों की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है । उसमें भी तरतमता होती है, वह इस प्रकार है -

सबसे छोटा शरीर – सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – सूक्ष्म वायुकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – सूक्ष्म अग्निकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – सूक्ष्म अप्काय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – सूक्ष्म पृथ्वीकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – बादर वायुकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – बादर अग्निकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – बादर अप्काय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – बादर पृथ्वीकाय का

उससे असंख्यात गुणा बडा – बादर साधारण वनस्पतिकाय का

प्रत्येक वनस्पतिकाय की जो उत्कृष्ट अवगाहना कही गयी है, वह समुद्र में पद्मनाल आदि की एवं ढाई द्वीप के बाहर स्थित लतादि की समझनी चाहिये ।

## विकलेन्द्रिय जीवों के शरीर की अवगाहना

### गाथा

**बारस जोयण तिन्नेव, गाउआ जोयणं च अणुक्कमसो ।**
**बेइन्दिय तेइन्दिय चउरिन्दिय देह-मुच्चत्तं ।।२८।।**

### अन्वय

बेइन्दिय तेइन्दिय चउरिन्दिय देह-मुच्चत्तं अणुक्कमसो बारस जोयण
तिन्नेव गाउआ च जोयणं ।।२८।।

### संस्कृत छाया

द्वादश योजनानि त्रिण्येव गव्यूतानि योजनं च अनुक्रमशः
द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय देहस्योच्चत्वम् ।।२८।।

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| बारस – बारह | जोयण – योजन |
| तिन्नेव – तीन ही | गाउआ – गाउ (गव्यूत) |

| | |
|---|---|
| जोयणं - योजन | च- और |
| अणुक्कमसो - अनुक्रम से | बेइन्दिय - द्वीन्द्रिय |
| तेइन्दिय - त्रीन्द्रिय | चउरिन्दिय - चतुरिन्द्रिय |
| देहं - देह की , शरीर की | उच्चत्तं - ऊँचाई |

## भावार्थ

दो इन्द्रियों वाले, तीन इन्द्रियों वाले एवं चार इन्द्रियों वाले जीवों की ऊँचाई अनुक्रम से बारह योजन, तीन गाउ तथा योजन (एक योजन) है ॥२८॥

### विशेष विवेचन

इस गाथा में विकलेन्द्रिय जीवों की अवगाहना का प्रस्तुतीकरण हैं ।

गाउ का प्रमाण - एक कोस के प्रमाण को गाउ या गव्यूत कहते है ।

योजन का प्रमाण - चार गव्यूत प्रमाण का एक योजन होता है

द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन, त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाउ, चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन की होती है ।

यह अवगाहना समस्त जाति की नहीं, प्रत्येक प्राणी की अपेक्षा से जाननी चाहिये ।

## नारकी जीवों की अवगाहना

### गाथा

**धणुसय पंच पमाणा नेरइया सत्तमाइ पुढवीए ।**
**तत्तो अद्धद्धूणा नेया रयणप्पहा जाव ॥२९॥**

### अन्वय

सत्तमाइ पुढवीए नेरइया पंच-सय धणु-पमाणा तत्तो जाव रयणप्पहा अद्धद्धूणा नेया ॥२९॥

### संस्कृत छाया

पंचशतधनुः प्रमाण नैरयिका सप्तम्यां पृथिव्याम् ।
तत्तोऽर्द्धर्द्धोना रत्नप्रभां यावत ॥२९॥

| शब्दार्थ | |
|---|---|
| धणु - धनुष | सय - सौ, शत |
| पंच - पांच | पमाणा - प्रमाण |
| नेरइया - नारकी जीवों का (शरीर) | सत्तमाइ - सातवीं |
| पुढवीए - पृथ्वी में | तत्तो - वहाँ से |
| अद्धद्धूणा - आधा-आधा कम | नेया - समझना, जानना |
| रयणप्पहा - रत्नप्रभा (नरक) पृथ्वी | जाव - तक |

## भावार्थ

सातवीं नरक के जीवों की अवगाहना पांच सौ धनुष प्रमाण की होती है। वहाँ से रत्नप्रभा नरक पृथ्वी तक आधी-आधी समझनी चाहिये ।।२९।।

### विशेष विवेचन

इस गाथा में अवगाहना द्वार के अन्तर्गत नरक के जीवों का विवेचन किया गया है।

धनुष्य किसे कहते है ?

चार हाथ के प्रमाण को धनुष्य कहते है।

### नारकी जीवों की अवगाहना

| | |
|---|---|
| १) रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकी | ७ धनुष्य ७८ अंगुल |
| २) शर्कराप्रभा पृथ्वी के नारकी | १५ धनुष्य ६० अंगुल |
| ३) वालुकाप्रभा पृथ्वी के नारकी | ३१ धनुष्य २४ अंगुल |
| ४) पंकप्रभा पृथ्वी के नारकी | ६२ धनुष्य ४८ अंगुल |
| ५) धूमप्रभा पृथ्वी के नारकी | १२५ धनुष्य ०० अंगुल |
| ६) तम:प्रभा पृथ्वी के नारकी | २५० धनुष्य ०० अंगुल |
| ७) तमस्तम: प्रभा पृथ्वी के नारकी | ५०० धनुष्य ०० अंगुल |

इस प्रकार प्रथम नरक की अपेक्षा दूसरी नरक के नारकी जीवों की अवगाहना दुगुनी होती है। दूसरी नरक के नारकी जीवों की अपेक्षा तीसरी नरक के नारकी जीवों की

अवगाहना दुगुनी हाती है, इस प्रकार सातवीं नरक तक समझनी चाहिये ।

इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि सातवीं नरक के नारकी जीवों की अपेक्षाकृत छट्ठी नरक के के नारकी जीवों की अवगाहना आधी होती है । इसी प्रकार प्रथम नरक तक जाननी चाहिये ।

## गर्भज तिर्यंच प्राणियों की अवगाहना

### गाथा

**जोयण सहस्स माणा मच्छा उरगा य गब्भया हुंति ।**
**धणुह-पहुत्तं पक्खिसु भुयचारी गाउअ-पहुत्तं ॥३०॥**

### अन्वय

मच्छा य गब्भया उरगा जोयण सहस्स-माणा हुंति पक्खिसु धणुह-पहुत्तं
पक्खिसु भुयचारी गाउअ-पहुत्तं ॥३०॥

### संस्कृत छाया

योजन सहस्र माना मत्स्या उरगाश्च गर्भजा भवन्ति ।
धनुः पृथक्त्वं पक्षिषु भुजपरिसर्पाणां गव्यूत पृथक्त्वम् ॥३०॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| जोयण - योजन | सहस्स - हजार |
| माणा - मान, प्रमाण | मच्छा - मछलियाँ (जलचर जीव) |
| उरगा - उरपरिसर्प | य - और |
| गब्भया - गर्भज | हुंति - होते हैं |
| धणुह - धनुष्य | पहुत्तं - पृथक्त्व |
| पक्खिसु - पक्षियों में | भुयचारी -भुजपरिसर्प |
| गाउअ - गाउ, गव्यूत | पहुत्तं - पृथक्त्व |

### भावार्थ

मछलियाँ इत्यादि जलचर जीवों की और गर्भज उरपरिसर्प जीवों की अवगाहना हजार योजन की होती है । पक्षियों अर्थात खेचर जीवों की

अवगाहना धनुष्य पृथक्त्व और भुजपरिसर्प की अवगाहना की गव्यूत पृथक्त्व होती है ।।३०।।

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणियों की अवगाहना का स्पष्टीकरण है ।

धनुष्य पृथक्त्व - दो से नौ की संख्याओं को पृथक्त्व कहते है जैसे २-३, २-४, २-५, २-६, २-७.२-८,२-९,३-४,३-५,३-६,३-७,३-८,३-९,४-५,४-६,४-७,४-८,४-९,५-६,५-७,५-८,५-९,६-७,६-८,६-९,७-८,७-९,८-९, ये समस्त पृथक्त्व के भेद हैं।

गव्यूत पृथक्त्व एवं योजन पृथक्त्व को भी धनुष्य पृथक्त्व की भाँति समझना चाहिये।

गर्भज और संमूर्च्छिम, दोनों ही प्रकार के जलचर जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की होती है । गर्भज उरपरिसर्प जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना हजार योजन की होती हैं । गर्भज खेचर एवं गर्भज भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट अवगाहना क्रमशः धनुष्य पृथक्त्व एवं गव्यूत पृथक्त्व की होती है ।

यहाँ पृथक्त्व के विभिन्न प्रकारों में से कोई भी प्रकार हो सकता है ।

यहाँ जो उत्कृष्ट अवगाहना बताई गयी है, वह ढाई द्वीप से बाहर के जीवों की समझनी चाहिये । उत्कृष्ट अवगाहना वाले मत्स्य स्वयंभूरमण समुद्र में होते हैं।

## संमूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की अवगाहना

### गाथा

**खयरा धणुह-पहुत्तं, भुयगा उरगा य जोयण-पहुत्तं ।**
**गाउअ-पहुत्त-मित्ता समुच्छिमा चउप्पया भणिया ।।३१।।**

### अन्वय

समुच्छिमा खयरा य भुयगा धणुह-पहुत्तं उरगा जोयण पहुत्तं चउप्पया गाउअ-पहुत्त-मित्ता भणिया ।।३१।।

**संस्कृत छाया**

खेचराणां धनुः पृथक्त्वम् भुजगानामुरगाणां च योजन पृथक्त्वम् ।
गव्यूतिपृथक्त्वमात्राः संमूर्च्छिमाश्चतुष्पदा भणिताः ॥३१॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| खयरा - खेचर | धणुह-पहुत्तं - धनुष्य पृथक्त्व |
| भुयगा - भुजपरिसर्प | उरगा - उरपरिसर्प |
| य - और | जोयण - योजन |
| पहुत्तं - पृथक्त्व | गाउअपहुत्तं - गाउ पृथक्त्व |
| मित्ता - माप वाले | समुच्छिमा - संमूर्च्छिम |
| चउप्पया - चतुष्पद | भणिया - कहे गये हैं |

**भावार्थ**

संमूर्च्छिम खेचर एवं संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प की अवगाहना धनुष्य पृथक्त्व, संमूर्च्छिम उरपरिसर्प की अवगाहना योजन पृथक्त्व एवं संमूर्च्छिम चतुष्पद की अवगाहना गव्यूत पृथक्त्व की होती है ॥३१॥

**विशेष विवेचन**

संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणियों की उत्कृष्ट अवगाहना का इस गाथा में वर्णन है ।

संमूर्च्छिम खेचर की उत्कृष्ट अवगाहना - धनुष्य पृथक्त्व

संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प की उत्कृष्ट अवगाहना - धनुष्य पृथक्त्व

संमूर्च्छिम उरपरिसर्प की उत्कृष्ट अवगाहना - योजन पृथक्त्व

संमूर्च्छिम चतुष्पद की उत्कृष्ट अवगाहना - गव्यूत पृथक्त्व

## गर्भज चतुष्पद एवं मनुष्य की अवगाहना

**गाथा**

**छच्चेव गाउ आइं चउप्पया गब्भया मुणेयव्वा ।**
**कोस तिगं च मणुस्सा, उक्कोस सरीर माणेणं ॥३२॥**

### अन्वय

गब्भया चउप्पया छच्चेव गाउ आइं च मणुस्सा उक्कोस सरीर माणेणं कोस तिगं मुणेयव्वा ॥३२॥

### संस्कृत छाया

षडगव्यूतय एवं चतुष्पदा गर्भजा ज्ञातव्याः ।
कोशत्रिकं च मनुष्याः उत्कृष्ट शरीर मानेन : ॥३२॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| छच्चेव - छह ही | गाउआइं - गव्यूत |
| चउप्पया - चतुष्पद | गब्भया - गर्भज |
| मुणेयव्वा - जानना चाहिये | कोस - कोस, गाउ |
| तिगं - तीन | च - और |
| मणुस्सा - मनुष्य | उक्कोस - उत्कृष्ट |
| सरीर - शरीर (अवगाहना) | माणेणं - मान-प्रमाण की अपेक्षा से |

## भावार्थ

**गर्भज चतुष्पद एवं गर्भज मनुष्य का उत्कृष्ट रूप से शरीर का प्रमाण क्रमशः छह गाउ और तीन गाउ जानना चाहिये ॥३२॥**

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में गर्भज चतुष्पद एवं गर्भज मनुष्य की उत्कृष्ट अवगाहना कही गयी है ।

गर्भज चतुष्पद की छह कोस की जो उत्कृष्ट अवगाहना कही गयी है, वह देवकुरु एवं उत्तरकुरु क्षेत्र के चतुष्पद प्राणियों की होती है ।

तीन कोस की उत्कृष्ट अवगाहना देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के युगलिकों की होती हैं एवं भरत और ऐरावत क्षेत्र के अवसर्पिणी के प्रथम आरे के युगलिकों की होती हैं।

## देवों की अवगहना

### गाथा

**ईसाणंत सुराणं रयणीयो सत्त हुंति उच्चत्तं ।**
**दुग-दुग-दुग-चउ-गेविज्जणुत्तरेक्किक्क परिहाणी ॥३३॥**

### अन्वय

ईसाणंत सुराणं उच्चत्तं सत्त रयणीयो हुंति दुग-दुग-दुग-चउ गेविज्जणुत्तरेक्किक्क परिहाणी ॥३३॥

### संस्कृत छाया

ईशानन्तसुराणां रत्नयः सप्त भवन्त्युच्चत्वम् ।
द्विक द्विक द्विक चतुष्क ग्रैवेयकानुत्तरेष्वेकैकपरिहानिः ॥३३॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| ईसाणंत - ईशानं देवलोक तक के | सुराणं - देवताओं की |
| रयणीयो - हाथ की | सत्त - सात |
| हुंति - होती हैं | उच्चत्तं - ऊँचाई (अवगाहना) |
| दुग - दो | दुग - दो |
| दुग - दो | चउ - चार |
| गेविज - ग्रैवेयक में | अनुत्तरे - अनुत्तर में |
| इक्किक्क - एक-एक | परिहाणी - कम, न्यून |

### भावार्थ

दूसरे ईशान देवलोक तक के देवताओं की अवगाहना सात हाथ की होती है । दो, दो, दो, चार, ग्रैवेयक और अनुत्तर (देव) की ऊँचाई एक-एक हाथ कम है ॥३३॥

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में देवताओं की अवगाहना का विवेचन है ।

- भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, परमाधामी, ज्योतिष्क, प्रथम तथा द्वितीय देवलोक एवं पहले किल्बिषिक के देवों की अवगाहना सात हाथ की होती है ।
- तीसरे एवं चौथे देवलोक तथा दूसरे किल्बिषिक के देवों की अवगाहना छह हाथ की होती है ।
- पांचवें एवं छट्ठे देवलोक, नवलोकांतिक एवं तीसरे किल्बिषिक के देवों की अवगाहना पांच हाथ की होती है ।
- सातवें एवं आठवें देवलोक के देवों की अवगाहना चार हाथ की होती है ।
- नवमें, दसवें, ग्यारहवें एवं बारहवें देवलोक के देवों की अवगाहना तीन हाथ की होती है।
- नवग्रैवेयक देवों की अवगाहना दो हाथ की होती है ।
- पांच अनुत्तर विमान के देवों की अवगाहना एक हाथ की होती है ।

यहाँ अवगाहना द्वार का कथन परिपूर्ण होता है ।

## द्वितीय आयुष्य द्वार का कथन
## एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य
### गाथा

**बावीसा पुढवीए सत्त य आउस्स तिन्नि वाउस्स ।**
**वास सहस्सा दस तरु-गणाणं तेउ तिरत्ताउ ॥३४॥**

### अन्वय

पुढवीए आउस्स वाउस्स तरु गणाणं बावीसा सत्त तिन्नि य दस वास सहस्सा तेऊ तिरत्ताउ ॥३४॥

### संस्कृत छाया

द्वाविंशतिः पृथिव्या सप्तअप्कायस्य त्रीणि वायुकायस्य ।
वर्ष सहस्रा दश तरुगणानां तेजस्कायस्य त्रीण्यहो रात्र्यायुः॥३४॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| बावीसा - बावीस | पुढवीए - पृथ्वीकाय की |
| सत्त - सात | य - और |
| आउस्स - अप्काय की | तिन्नि - तीन |
| वाउस्स - वायुकाय की | वास - वर्ष |
| सहस्सा - सहस्र, हजार | दस - दस |
| तरु गणाणं - प्रत्येक वनस्पतिकाय की | तेउ - अग्निकाय की |
| तिरत्त - तीन अहोरात्र की | आउ - आयुष्य |

## भावार्थ

**पृथ्वीकायिक जीवों की, अप्कायिक जीवों की, अग्निकायिक जीवों की, वायुकायिक जीवों की तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की आयु क्रमशः बावीस हजार वर्ष, सात हजार वर्ष, तीन अहोरात्र, तीन हजार वर्ष, दस हजार वर्ष है ।।३४।।**

### विशेष विवेचन

साधारण वनस्पतिकाय के अलावा पृथ्वीकायादि पांचों स्थावर प्राणियों का उत्कृष्ट आयुष्य प्रस्तुत गाथा में कहा गया है । ये पांचों ही सूक्ष्म की अपेक्षा से नहीं, बादर की अपेक्षा से कहे गये हैं-

- बादर पृथ्वीकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु - २२ हजार वर्ष
- बादर अप्कायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु - ७ हजार वर्ष
- बादर अग्निकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु - ३ अहोरात्र
- बादर वायुकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु - ३ हजार वर्ष
- प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु - १० हजार वर्ष
- प्रत्येक वनस्पतिकाय सूक्ष्म नहीं होती हैं, वह केवल बादर ही होती है ।

अहोरात्र का क्या अर्थ है ?

दिन और रात (२४ घण्टे) को अहोरात्र कहते हैं।

समस्त एकेन्द्रिय जीवों की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ।

## विकलेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट आयुष्य

### गाथा

**वासाणि बारसाऊ, बेइन्दियाणं तेइन्दियाणं तु ।**
**अउणापन्न - दिणाईं चउरिंदीणं तु छम्मासा ॥३५॥**

### अन्वय

बेइन्दियाणं तेइन्दियाणं तु चउरिंदीणं आऊ बारस वासाणि अउणापन्न दिणाईं तु छम्मासा ॥३५॥

संस्कृत छाया

वर्षाणि द्वादशायुर्द्वीन्द्रियाणां त्रींदियाणां तु ।
एकोपंचाशद्दिनानि चतुरिन्द्रियाणां तु षण्मासाः ॥३५॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| वासाणि - वर्ष | बारस - बारह |
| आऊ - आयु | बेइन्दियाणं - द्वीन्द्रिय की |
| तेइन्दियाणं - त्रीन्द्रिय की | तु - और |
| अउणापन्न - उनपचास | दिणाईं - दिन |
| चउरिंदीणं - चतुरिन्द्रिय की | तु - और |
| छम्मासा - छह मास | |

## भावार्थ

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जाति के जीवों की आयु क्रमशः बारह वर्ष, उनपचास दिन और छह मास की होती है ॥३५॥

### विशेष विवेचन

इस गाथा में विकलेन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट आयुष्य का कथन है-

- द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु - बारह वर्ष

- *त्रीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु - उनपचास दिन*
- चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु - छह मास

## देवता, नारकी, मनुष्य एवं चतुष्पद की उत्कृष्ट आयु

### गाथा

**सुर-नेइयाण ठिई उक्कोसा सागराणि तित्तीसं ।**
**चउप्पय तिरिय-मणुस्सा तिन्नि य पलिओवमा हुंति ॥३६॥**

### अन्वय

सुरनेरइयाण य चउप्पय तिरिय मणुस्सा उक्कोसा ठिई तित्तीसं सागराणि तिन्नि पलिओवमा हुंति ॥३६॥

### संस्कृत छाया

सुर-नैरयिकाणां स्थितिरूत्कृष्टा सागरोपमाणि त्रयस्त्रिंशत ॥
चतुष्पद तिर्यंच मनुष्याणां त्रीणि च पल्योपमानि भवन्ति ॥३६॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| सुर - देवता (की) | नेरइयाण -नारकी की |
| ठिई -स्थिति | उक्कोसा - उत्कृष्ट |
| सागराणि - सागरोपम | तित्तीसं - तैतीस |
| चउप्पय - चतुष्पद | तिरिय - तिर्यंच (की) |
| मणुस्सा - मनुष्य की | तिन्नि - तीन |
| य - और | पलिओवमा - पल्योपम |
| हुंति - होती है। | |

### भावार्थ

देवता एवं नारकी की उत्कृष्ट स्थिति तैतीस सागरापम की एवं मनुष्य व चतुष्पद तिर्यंच की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की होती है ॥३६॥

चित्र : पल्योपम की गणना

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में चारों गति के पंचेन्द्रिय जीवों के उत्कृष्ट आयुष्य का विवेचन है ।

**पल्योपम** - एक योजन लम्बे, एक योजन चौडे और एक योजन गहरे कुएँ में युगलिक मनुष्य के सात दिन के बच्चे के एक बाल के सात टुकडे और उस प्रत्येक टुकडे के आठ-आठ टुकडे किये हुए बालों से वह कुआँ इस प्रकार भरा जाए कि अग्नि उसे जला नहीं सके, पानी बहा न सके, वायु उडा न सके । यहाँ तक कि चक्रवर्ती की विशाल सेना उसके उपर से गुजरे तो भी वे दबे नहीं । एक वर्ष गुजरने पर एक टुकडा बाहर निकाले । इस प्रकार जितने समय में वह कुआँ खाली हो, उसको अद्धा पल्योपम कहते है ।

एक पल्योपम असंख्यात वर्षों का होता है । दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

कोडाकोडी किसे कहते है ?

करोड को करोड से गुणा करने पर जो प्रतिफल प्राप्त होता है, वह कोडाकोडी कहलाता है ।

● देवों का उत्कृष्ट आयुष्य तैतीस सागरोपम का होता है, यह आयुष्य अनुत्तर वैमानिक सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों का होता है ।

● नारकी की उत्कृष्ट आयु तैतीस सागरोपम की होती है । यह सातवीं नरक के नारकी जीवों के होती है ।

● मनुष्य का उत्कृष्ट आयुष्य तीन पल्योपम का होता है । भरत एवं ऐरावत क्षेत्र के उत्सर्पिणी काल के छट्ठे आरे में तथा अवसर्पिणी काल के प्रथम आरे में मनुष्यों का आयुष्य तीन पल्योपम का होता है । अकर्मभूमि के तीस भेदों में से पांच उत्तरकुरु और

पांच देवकुरु के मनुष्यों का आयुष्य भी तीन पल्योपम का होता है।

चतुष्पद तिर्यंचों का आयुष्य भी मनुष्य की भाँति ही समझना चाहिये ।

देव और नारकी जीवों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष और मनुष्य तथा तिर्यंच का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का होता है।

## गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच की उत्कृष्ट आयु

### गाथा

**जलयर-उर-भुयगाणं, परमाऊ होई पुव्व-कोडीओ ।**
**पक्खीणं पुण भणियो असंखभागो य पलियस्स ॥३७॥**

### अन्वय

जलयर उर भुयगाणं परमाऊ पुव्वकोडिओ होई पुण य पक्खीणं पलियस्स असंखभागो भणिओ ॥३७॥

### संस्कृत छाया

जलचरोरगभूजगानां परमायुर्भवति पूर्वकोटि तु ।
पक्षिणां पुनर्भणितोऽसंख्येयभागश्च पल्योपमस्य ॥३७॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| जलयर - जलचर की | उर - उरपरिसर्प की |
| भुयगाणं - भुजपरिसर्प की | परम - उत्कृष्ट |
| आऊ - आयु | होई - होती है |
| पुव्वकोडीओ - पूर्वकोटि की | पक्खीणं - पक्षिओं की, खेचर की |
| पुण - एवं | भणियो - कही गयी है । |
| असंख - असंख्यातवां | भागो - भाग, प्रमाण |
| य - और | पलियस्स - पल्योपम का |

### भावार्थ

जलचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प प्राणियों की उत्कृष्ट आयु पूर्व करोड (पूर्वकोटि) की होती है । खेचर (पक्षियों) प्राणियों की उत्कृष्ट आयु

पल्योपम का असंख्यातवां भाग कही गयी है ॥३७॥

**विशेष विवेचन**

प्रस्तुत गाथा में पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणियों की उत्कृष्ट आयु का कथन है ।

- गर्भज जलचर एवं संमूर्च्छिम जलचर का उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व वर्ष
- संमूर्च्छिम चतुष्पद का उत्कृष्ट आयुष्य - ८४००० वर्ष
- गर्भज भुजपरिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व वर्ष
- संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य - ४२००० वर्ष
- गर्भज उरपरिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य - करोड पूर्व वर्ष
- संमूर्च्छिम उरपरिसर्प का उत्कृष्ट आयुष्य - ५३००० वर्ष
- गर्भज खेचर का उत्कृष्ट आयुष्य - पल्योपम का असंख्यातवां भाग
- संमूर्च्छिम खेचर का उत्कृष्ट आयुष्य - ७२००० वर्ष

पूर्व का अर्थ क्या है?

सत्तर लाख छप्पन हजार करोड वर्ष को पूर्व कहते है ।

## एकेन्द्रिय, साधारण वनस्पतिकाय एवं संमूर्च्छिम मनुष्य का आयुष्य

**गाथा**

**सव्वे सुहुमा साहारणा य समुच्छिमा मणुस्सा य ।**
**उक्कोस-जहन्नेणं अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ॥३८॥**

**अन्वय**

सव्वे सुहुमा साहारणा य समुच्छिमा मणुस्सा उक्कोस - जहन्नेणं अंत-मुहुत्तं चिय जियंति ॥३८॥

**संस्कृत छाया**

सर्वे सूक्ष्माः साधारणाश्च सम्मूर्छिमा मनुष्याश्च ।
उत्कृर्षेण जघन्येऽन्तर्मुहूर्त्तमेव जीवन्ति ॥३८॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| सव्वे - समस्त | सुहुमा - सूक्ष्म (जीव) |
| साहारणा - साधारण (वनस्पतिकाय) | य - और |
| समुच्छिमा - संमूर्च्छिम | मणुस्सा - मनुष्य की |
| य - और | उक्कोस - उत्कृष्ट से |
| जहन्नेणं -जघन्य से | अंतमुहुत्तं - अन्तर्मुहूर्त्त |
| चिय - निश्चय ही | जियंति - जीते हैं। |

## भावार्थ

समस्त सूक्ष्म जीव, साधारण वनस्पतिकायिक जीव एवं संमूर्च्छिम मनुष्य निश्चित् रूप से उत्कृष्ट एवं जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त जीते हैं।

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में सूक्ष्म, साधारण जीवों एवं संमूर्च्छिम मनुष्यों के आयुष्य का वर्णन है।

सूक्ष्म पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, सूक्ष्म एवं बादर साधारण वनस्पतिकाय के जीवों की, संमूर्च्छिम मनुष्यों की जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु अन्तर्मुहूर्त्त की होती है ।

## आयुष्य एवं अवगाहना द्वार का उपसंहार

### गाथा

**ओगाहणाउ-माणं, एवं संखेवओ समक्खायं ।**
**जे पुण इत्थ विसेसा, विसेस-सुत्ताउ ते नेया ॥३९॥**

### अन्वय

एवं ओगाहणाउ-माणं संखेवओ पुण इत्थ जे विसेसा ते विसेस सुत्ताउ नेया ॥३९॥

### संस्कृत छाया

अवगाहना-आयुर्मानेवं संक्षेपतः समाख्यातम् ।
ये पुनरत्र विशेषा विशेषसूत्रेभ्यस्ते ज्ञेयाः ॥३९॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| ओगाहणा - अवगाहना | आउ - आयु |
| माणं - प्रमाण | एवं - इस प्रकार |
| संखेवओ - संक्षेप में | समक्खायं - सम्यक् रूप से कहा गया |
| जे - जो | पुण - फिर भी |
| इत्थ - यहाँ | विसेसा - विशेष है |
| विसेस - विशेष | सुत्ताउ - सूत्रों से |
| ते - उनसे | नेया - जानने चाहिये |

## भावार्थ

इस प्रकार अवगाहना और आयुष्य, इन दोनों द्वारों का प्रमाण संक्षेप में कहा गया है, अन्य भी जो विशेष है, वह विशेष सूत्रों से जानना चाहिये ॥३९॥

## तृतीय स्वकाय स्थिति द्वार का कथन
## एकेन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति

### गाथा

**एगिंदिया य सव्वे असंख उस्सप्पिणी सकायम्मि ।**
**उववज्जंति चयंति य अणंतकाया अणंताओ ॥४०॥**

### अन्वय

सव्वे एगिंदिया य अणंतकाया सकायम्मि असंख य अणंताओ उस्सप्पिणी उववजंति य चयंति ॥४०॥

### संस्कृत छाया

एकेन्द्रियाश्च सर्वेऽसंख्येयोत्सर्पिण्यवसर्पिण: स्वकाये ।
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते चानन्तकाया अनन्ता: ॥४०॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| एगिंदिया - एकेन्द्रिय जीव | य - और |
| सव्वे - समस्त | असंख - असंख्य |
| उस्सप्पिणी - उत्सर्पिणी | सकायम्मि - स्वयं की काया में |
| उववज्जन्ति - उत्पन्न होते हैं | चयन्ति - मरते हैं |
| य - और | अणंतकाया - अनन्तकायिक जीव |
| अणंताओ - अनंत | (साधारण वनस्पतिकाय) |

## भावार्थ

सभी एकेन्द्रिय जीव अपनी काया में असंख्य उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी तक एवं अनन्तकायिक जीव अपनी काया में अनंत बार जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में एकेन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति का उल्लेख किया गया है ।

- पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव असंख्य अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी तक उसी काया(पर्याय) में जन्म-मृत्यु को प्राप्त होते हैं।
- अनन्तकाय (साधारण वनस्पतिकाय) के जीव अनन्त काल चक्र तक अनंतकाय में जन्म लेते हैं और मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

  उसी काया में जन्म लेने का अर्थ उसी शरीर को उपलब्ध करना नहीं है, उसी पर्याय को प्राप्त करने से है । जैसे पृथ्वीकाय के जीव मरकर उसी शरीर में नहीं, पृथ्वीकाय की पर्याय को असंख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक प्राप्त करता है ।
- **उत्पसर्पिणी-अवसर्पिणी से आशय**

  दस कोडा-कोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी होती है और उतने ही काल की एक अवसर्पिणी होती है । २० कोडाकोडी सागरोपम अर्थात् एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी का एक कालचक्र होता है ।

## विकलेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति

### गाथा

**संखिज्ज-समा विगला, सत्तट्ठ-भवा पणिंदि-तिरि मणुआ ।**
**उववज्जन्ति सकाए नारय-देवा य नो चेव ।।४१।।**

### अन्वय

विगला संखिज्ज-समा पणिंदि-तिरि मणुआ सत्तट्ठ भवा सकाए उववज्जन्ति नारय य देवा नो चेव ।।४१।।

### संस्कृत छाया

संख्येय समान् विकलाः सप्ताष्ट भवान् पञ्चेन्द्रियतिर्यगमनुष्यः ।
उत्पद्यन्ते स्वकाये नारका देवा न चैव ।।४१।।

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| संखिज्ज - संख्याता | समा - वर्ष |
| विगला - विकलेन्द्रिय | सत्तट्ठ - सात - आठ |
| भवा - भव | पणिंदि - पंचेन्द्रिय |
| तिरि - तिर्यंच | मणुआ - मनुष्य |
| उववज्जन्ति - उत्पन्न होते हैं | सकाए - स्वकाय में |
| नारय - नारकी | देवा - देवता |
| य - और | नो - नहीं |
| चेव - ही | |

### भावार्थ

विकलेन्द्रिय जीव संख्यात वर्षों तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य सात या आठ भवों तक स्वकाय में उत्पन्न होते हैं। नारकी और देवता अपनी काया में उत्पन्न नहीं होते हैं।।४१।।

### विशेष विवेचन

इस गाथा में विकलेन्द्रिय जाति के जीवों की तथा पंचेन्द्रिय मनुष्य - तिर्यंच- देव और

नारकी जीवों से सम्बधित स्वकाय स्थिति का कथन किया गया है ।

- विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय) जाति के जीव संख्यात वर्षों तक अपनी ही काया (पर्याय) में जन्म लेते हैं और मरते हैं।
- पंचेन्द्रिय तिर्यंच एवा मनुष्य सात अथवा आठ भवों तक स्वकाय-स्वपर्याय में जन्म लेते हैं और मरते हैं।

प्रश्न – पंचेन्द्रिय तिर्यंच एवं मनुष्य सात अथवा आठ भवों तक जन्म लेते हैं, यह सात अथवा आठ का विकल्प क्यों प्रस्तुत किया गया?

– संख्यात वर्ष वाला पंचेन्द्रिय मनुष्य एक साथ सात भव ही मनुष्य के कर सकता है, समाधान-आठवां भव देव अथवा तिर्यंच का ही करता है परन्तु जिसने सातवें भव में असंख्यात वर्ष आयु का बंध किया है, वह मरकर आठवां भव असंख्यात वर्ष वाले युगलिक मनुष्य का करता है । युगलिक मरकर देवगति में ही जाता है। अत: ७/८ से अधिक भव नहीं हो सकते ।

इसी प्रकार तिर्यंच का भी समझना चाहिये । कोई भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणी अधिकतम सात भव ही पंचेन्द्रिय तिर्यंच के लगातार कर सकता है । आठवां भव पाने के लिये युगलिक तिर्यंच (गर्भज) चतुष्पद एवं खेचर का धारण करना होता है क्योंकि उनका ही आयुष्य करोड पूर्व से अधिक होता है, शेष समस्त का मात्र करोड पूर्व का होता है अत: युगलिक गर्भज तिर्यंच जिसकी आयु करोड पूर्व से अधिक हो, वही भव आठवां हो सकता है ।

अगला भव तो निश्चित् रूप से देव का ही होता है, उसके बाद तिर्यंच बन सकता है। नारकी और देवता स्वकाय में उत्पन्न नहीं होते हैं। वे मरकर मनुष्य या तिर्यंच गति में ही जाते हैं। देव मरकर न देव बन सकता है, न नारकी। उसी प्रकार नारकी मरकर देवलोक और नरक में नहीं जा सकता है ।

## चतुर्थ प्राण द्वार का कथन
## एकेन्द्रिय व विकलेन्द्रिय के प्राणों का निरुपण

### गाथा

**दसहा जिआण पाणा, इन्दिय-ऊसास-आउ-बल-रुवा ।**
**एगिंदिएसु - चउरो, विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ॥४२॥**

### अन्वय

जिआण इंदिय-ऊसास-आउ-बल रुवा दसहा पाणा एगिंदिएसु चउरो विगलेसु छ सत्त अट्ठेव ॥४२॥

### संस्कृत छाया

दशधाः प्राणः इन्द्रियोच्छ्वासायुर्बल रुपाः ।
एकेन्द्रियेषु चत्वारो विकलेषु षट् सप्त अष्टैव ॥४२॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| दसहा - दस प्रकार के | जिआण - जीवों के |
| पाणा - प्राण | इन्दिय - इन्द्रियाँ (पांच) |
| ऊसास - श्वासोच्छ्वास | आउ - आयुष्य |
| बल - बल (तीन) | रुवा - रुप |
| एगिंदिएसु - एकेन्द्रियों में | चउरो - चार |
| विगलेसु - विकलेन्द्रियों में | छ - छह |
| सत्त - सात | अट्ठेव - आठ ही |

### भावार्थ

जीवों में इन्द्रिय (पांच), बल (तीन), श्वासोच्छ्वास एवं आयु रुप दस प्रकार के प्राण होते हैं । एकेन्द्रिय जाति में चार, द्वीन्द्रिय जाति में छह, त्रीन्द्रिय जाति में सात और चतुरिन्द्रिय जाति में आठ प्राण होते हैं ॥४२॥

## विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में दस प्राणों की विवेचना के साथ एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीवों के प्राणों का भी वर्णन किया गया है ।

- जिन शक्तियों से जीवन चलता है, वे प्राण कहलाते हैं।
- जिन शक्तियों को जीव धारण करता है, वे प्राण कहलाते हैं।

**प्राण के दस प्रकार**

(१) स्पर्शनेन्द्रिय प्राण (२) रसनेन्द्रिय प्राण (३) घ्राणेन्द्रिय प्राण (४) चक्षुरिन्द्रिय प्राण (५) श्रोत्रेन्दिय प्राण (६) मन बल प्राण (७) वचन बल प्राण (८) काय बल प्राण (९) श्वासोच्छ्वास प्राण (१०) आयुष्य प्राण

(अ) एकेन्द्रिय जीवों (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय) में चार प्राण होते हैं-

(१) स्पर्शनेन्द्रिय प्राण (२) काय बल प्राण (३) श्वासोच्छ्वास प्राण (४) आयुष्य प्राण

(आ) द्वीन्द्रिय जीवों में उपरोक्त चार बलों के अतिरिक्त दो और प्राण होते हैं-

(१) रसनेन्द्रिय प्राण (२) वचन बल प्राण, इस प्रकार छह प्राण होते हैं।

(इ) त्रीन्द्रिय जीवों में उपरोक्त छह प्राणों के अलावा घ्राणेन्द्रिय प्राण सहित सात प्राण होते हैं।

(ई) चतुरिन्द्रिय जीवों में उपरोक्त सात प्राणों के अतिरिक्त चक्षुरिन्द्रिय प्राण सहित आठ होते हैं।

## संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में प्राण

### गाथा

**असन्नि-सन्नि पंचिंदिएसु, नव-दस कमेण बोधव्वा ।**
**तेहिं सह विप्पओगो जीवाणं भण्णए मरणं ॥४३॥**

### अन्वय

असन्नि-सन्नि पंचिंदिएसु कमेण नव-दस बोधव्वा तेहिं सह विप्पओगो जीवाणं मरणं भण्णए ॥४३॥

**संस्कृत छाया**

असंज्ञीसंज्ञीपंचेन्द्रियेषु नव दश क्रमेण बोधव्या ।
तैः सह विप्रयोगो जीवानां भणयते मरणं ।।४३।।

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| असन्नि -असंज्ञी | सन्नि - संज्ञी |
| पंचिदिएसु - पंचेन्द्रिय जीवों में | नव - नौ |
| दस -दस | कमेण - अनुक्रम से |
| बोधव्वा - जानने चाहिये | तेहिं -उनके |
| सह - साथ, संग (का) | विप्पओगो - विप्रयोग, वियोग |
| जीवाणं - जीवों का | भण्णए - कहा जाता है |
| मरणं - मरण | |

## भावार्थ

असंज्ञी एवं संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणियों में अनुक्रम से नौ एवं दस प्राण होते हैं। उनका वियोग जीवों का मरण कहलाता है ।।४३।।

**विशेष विवेचन**

असंज्ञी एवं संज्ञी जीवों के प्राण-संख्या का उल्लेख इस गाथा में किया गया है ।

**असंज्ञी** - वे जीव जिनके मन नहीं हो। मन रहित जीव असंज्ञी कहलाते हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, संमूर्च्छिम तिर्यंच एवं संमूर्च्छिम मनुष्य असंज्ञी होते हैं।

**संज्ञी** - जिनके जीवों के मन हो अथवा चिन्तन की शक्ति हो, वे संज्ञी कहलाते है । केवल पंचेन्द्रिय जाति के जीव ही संज्ञी होते है । उनमें देव, नारकी, पर्याप्ता गर्भज मनुष्य एवं तिर्यंच संज्ञी होते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में पांच इन्द्रिय(स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय) प्राण, तीन बल (मन बल, वचन बल, काय बल) प्राण, श्वासोच्छ्वास

प्राण और आयुष्य प्राण रुप दस प्राण होते हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में मन बल प्राण के अतिरिक्त नौ प्राण होते हैं।

## उपदेश का कथन

### गाथा

**एवं अणोरपारे संसारे सायरम्मि भीमम्मि ।**
**पत्तो अणंतखुत्तो-जीवेहिं अपत्त-धम्मेहिं ॥४४॥**

### अन्वय

अणोरपारे भीमम्मि संसारे सायरम्मि अपत्त- धम्मेहिं जीवेहिं एवं अणंत-खुत्तो पत्तो ॥४४॥

### संस्कृत छाया

एवमनोरपारे संसारे सागरे भीमे ।
प्राप्तोऽनंतकृत्व जीवैरप्राप्त धर्मैः ॥४४॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| एवं - इस प्रकार | अणोरपारे - बिना आरपार के |
| संसारे - संसार रुपी (में) | सायरम्मि - समुद्र में |
| भीमम्मि - भयंकर | पत्तो - प्राप्त किया है |
| अणंत - अनन्त | खुत्तो - बार |
| जीवेहिं - जीव ने | अपत्तधम्मेहिं - धर्म को प्राप्त किये बिना |

## भावार्थ

बिना आर-पार के अनादि अनन्त संसार रुपी भयंकर समुद्र में धर्म को प्राप्त किये बिना जीव ने इस प्रकार (जन्म-मरण, प्राण-वियोग) अनन्त बार प्राप्त किया है ॥४४॥

### विशेष विवेचन

जीव अनादिकाल से संसार में भ्रमण कर रहा है । परमात्मा महावीर के वचन कहते हैं - इस संसार में सुई की नोंक जितनी जगह भी अवशेष नहीं है जहाँ जीव ने जन्म न लिया

हो और मृत्यु प्राप्त न की हो ।

परिवार, पुत्र, धन, सत्ता, संपत्ति सब कुछ यहीं छोडकर जीव को संसार से रवाना होना पडा है । न कोई सुरक्षा देने में सक्षम है, न शरण देने में समर्थ है । आचारांग सूत्र के प्रथम सूत्र स्कंध के द्वितीय अध्ययन के प्रथम अध्याय में कहा गया है -

**णालं ते तव ताणाए वा, सरणाए वा, तुमंपि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए ।**

न जीव को कोई त्राण दे सकता है, न शरण दे सकता है न जीव किसी को त्राण और शरण दे सकता है ।

शरण रुप केवल अरिहंत, सिद्ध, साधु और अरिहंत प्ररूपित धर्म ही है । ये चार शरण ही जीव को संसार सागर से तारने में समर्थ है । जीव ने शुद्ध धर्म, शुद्ध मार्ग को प्राप्त किये बिना अनंतकाल तक संसार में परिभ्रमण किया है। अनन्त बार प्राणों के वियोग का भयंकर दुःख सहना पडा है ।

## पांचवें योनि द्वार का कथन

## एकेन्द्रिय जीवों की योनि संख्या

### गाथा

**तह-चउरासी लक्खा, संखा जोणीण होइ जीवाणं ।**
**पुढवाइणं चउण्हं पत्तेयं सत्त सत्तेव ।।४५।।**

### अन्वय

तह जीवाणं जोणीण संखा चउरासी लक्खा होइ पुढवाइणं चउण्हं पत्तेयं सत्त सत्तेव ।।४५।।

### संस्कृत छाया

तथा चतुरशीतिर्लक्षाः संख्या योनीनां भवति जीवानाम्।
पृथिव्यादीनां -चतुर्णाम् प्रत्येक सप्त सप्तैव ।।४५।।

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| तह - तथा | चउरासी - चौरासी |
| लक्खा - लाख, लक्ष | संखा - संख्या |

| | |
|---|---|
| जोणीण – योनियों की | होइ – होती हैं |
| जीवाणं – जीवों की | पुढवाइणो – पृथ्वी आदि |
| चउण्हं – चारों की | पत्तेयं – प्रत्येक की |
| सत्त – सात | सतेव – सात ही |

## भावार्थ

जीवों की योनियों की संख्या चौरासी लाख हैं। पृथ्वीकाय आदि चारों (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय) की प्रत्येक की सात-सात लाख योनियाँ होती हैं ।।४५।।

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में पृथ्वीकायादि चार की योनि-संख्या का कथन किया गया है ।

**योनि से तात्पर्य**- जीव के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते है । जीव अनन्त है अतः उत्पत्ति स्थान भी अनन्त है परन्तु जिन उत्पत्ति स्थानों के वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान में एकरुपता हैं उन्हें एक ही श्रेणी में रखा जाये तो समस्त जीव राशि की कुल योनियाँ चौरासी लाख होती हैं।

वर्ण आदि में तरतमता होने पर वह दूसरा उत्पत्ति स्थान कहलाता है । पृथ्वीकायिक जीवों की वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान की तरतमता के आधार पर सात लाख योनियाँ होती हैं । अप्काय, तेउकाय और वायुकाय की भी सात-सात योनियाँ लाख इसी प्रकार समझनी चाहिये।

## वनस्पतिकायिक, विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच की योनियाँ

### गाथा

**दस पत्तेय-तरुणं चउदस लक्खा हवंति इयरेसु ।**
**विगलिंदिएसु दो दो, चउरो पंचिंदि तिरियाणं ।।४६।।**

### अन्वय

पत्तेय तरुणं दस इयरेसु चउदस लक्खा विगलिंदिएसु दो दो पंचिंदि तिरियाणं

चउरो हवंति ॥४६॥

### संस्कृत छाया

दश प्रत्येकतरूणां चतुर्दश लक्षा भवन्तीतरेषु ।
विकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे चत्वारः पंचेन्द्रिय तिरिश्चाम् ॥४६॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| दस - दस | पत्तेय -प्रत्येक |
| तरुणं - वनस्पतिकाय की | चउदस - चौदह |
| लक्खा - लाख | हवंति - होती हैं |
| इयरेसु - विपरीत की (साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की) | विगलिंदिएसु - विकलेन्द्रियकी |
| दो - दो | दो - दो |
| पंचिंदि - पंचेन्द्रिय | चउरो - चार |
| | तिरियाणं - तिर्यंचों की |

### भावार्थ

प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की एवं साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की क्रमशः दस लाख एवं चौदह लाख योनियाँ होती हैं। विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय) जीवों की दो-दो लाख तथा पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की चार लाख योनियाँ होती हैं ।॥४६॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में वनस्पतिकायिक विकलेन्द्रिय एवं पंचेन्दिय तिर्यंच की योनि संख्या का निरुपण है ।

प्रत्येक वनस्प्रतिकायिक जीवों की दस लाख एवं साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की चौदह लाख योनियाँ होती हैं। विकलेन्द्रिय जीवों की दो-दो लाख योनियाँ होती हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणियों की योनियाँ चार लाख होती हैं।

## नारकी, देवों एवं मनुष्यों की योनियाँ

### गाथा

**चउरो-चउरो नारय-सुरेसु मणुआण चउदस हवंति ।**
**संपिंडिया य सव्वे, चुलसी लक्खाउ जोणीणं ॥४७॥**

### अन्वय

नारय-सुरेसु चउरो चउरो य मणुआण चउदस सव्वे संपिंडिया जोणीणं चुलसी लक्खाउ हवंति ॥४७॥

### संस्कृत छाया

चतस्रश्चतस्रो नारकसुरेषु मनुष्याणाम् चतुर्दश भवन्ति ।
संपिंडिताश्च सर्वे चतुरशीतिर्लक्षास्तु योनीनाम् ॥४७॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| चउरो - चार | चउरो - चार |
| नारक - नारकी की | सुरेसु - देवताओं की |
| मणुआण - मनुष्यों की | चउदस - चौदह (लाख) |
| हवंति - होती हैं | संपिंडिया - मिलाने से (जोडने से) |
| य - और | सव्वे - समस्त |
| चुलसी - चौरासी | लक्खाउ - लाख |
| जोणीणं - योनियाँ | |

### भावार्थ

नारकी एवं देवताओं की चार-चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख योनियाँ होती हैं। इन सब को मिलाने से चौरासी लाख योनियाँ होती हैं ॥४७॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में नारकी, देवता एवं मनुष्यों की योनियाँ बताने के साथ कुल जीव योनियों का भी वर्णन है ।

नारकी एवं देवताओं की चार-चार लाख योनियाँ होती हैं जबकि मनुष्यों की चौदह लाख योनियाँ होती हैं।

चौरासी लाख योनियाँ इस प्रकार है -

| | |
|---|---|
| पृथ्वीकायिक जीवों की | ७ लाख |
| अप्कायिक जीवों की | ७ लाख |
| तेउकायिक जीवों की | ७ लाख |
| वायुकायिक जीवों की | ७ लाख |
| प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की | १० लाख |
| साधारण वनस्पतिकायिक जीवों की | १४ लाख |
| द्वीन्द्रिय जीवों की | २ लाख |
| त्रीन्द्रिय जीवों की | २ लाख |
| चतुरिन्द्रिय जीवों की | २ लाख |
| पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की | ४ लाख |
| नारकी की | ४ लाख |
| देवताओं की | ४ लाख |
| मनुष्यों की | १४ लाख |
| कुल | ८४ लाख |

## सिद्धों का स्वरुप

### गाथा

**सिद्धाणं नत्थि देहो, न आउ-कम्मं न पाण-जोणीयो ।**
**साइ-अणंता तेसिं ठिई जिणिंदागमे भणिया ॥४८॥**

### अन्वय

सिद्धाणं देहो नत्थि आउ-कम्मं न पाण जोणीयो न तेसिं ठिई जिणिंदागमे साइ-अणंता भणिया ॥४८॥

### संस्कृत छाया

सिद्धानां नास्ति देहो नायुः कर्म न प्राणयोनयः ।
साद्यनन्ता तेषा स्थितिर्जिनेन्द्रागमे भणिता ॥४८॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| सिद्धाणं - सिद्धों को | नत्थि - नहीं है |
| देहो - शरीर, काया | न - नहीं |
| आयु - आयुष्य | कम्मं - कर्म |
| न - नहीं | पाण - प्राण |
| जोणीयो - योनियाँ | साइ - सादि |
| अणंता - अनन्त | तेसिं - उनकी |
| ठिई - स्थिति, काल | जिणिंदागमे - अरिहंत प्ररुपित आगमों में |
| भणिया - कही गयी है । | |

## भावार्थ

सिद्धों के शरीर नहीं है, आयुष्य एवं कर्म नहीं है, प्राण एवं योनियाँ नहीं है । श्री जिनेन्द्र (तीर्थंकर) प्ररुपित आगमों में उनकी स्थिति सादि अनन्त कही गयी है ॥४८॥

### विशेष विवेचन

प्रस्तुत गाथा में सिद्धात्माओं के संदर्भ में पांच द्वारों का कथन है ।

**अवगाहना** - सिद्ध भगवंत जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होकर सिद्धालय में बिराजमान हो गये हैं। संसार में संसरण करने वाले जीवों के ही शरीर होता है ।

नाम कर्म के कारण जीव विभिन्न शरीर प्राप्त करता हैं, चारों गतियों मे भटकता हैं पर सिद्ध भगवंत के नाम कर्म का संपूर्ण क्षय होने से देह से वे मुक्त होकर मोक्ष में स्थित हो गये है। इसलिये उनके देह नहीं है और जब देह नहीं है तो अवगाहना कैसी !

**आयुष्य** - काल हमेशा शरीर का होता है, बाह्य पदार्थों का होता है । आयुष्य कर्म के आधार पर जीव आता है और आयुष्य पूर्ण होने पर चला जाता है । सिद्ध भगवंतों के

आयुष्य कर्म का आत्यंतिक क्षय हो गया है अत: वे आत्मा के अनाम-अरुपी स्वरुप में स्थित होकर अक्षय स्थिति को प्राप्त कर चुके हैं, अत: उनके आयुष्य द्वार भी घटित नहीं होता हैं।

**स्वकाय स्थिति** - संसार का सारे संयोग वियोग में बदलते हैं। हर जन्म में नया शरीर, नयी व्यवस्था प्राप्त होती है पर जिसने एक बार मुक्तालय प्राप्त कर लिया, वह सदा के लिए उसका स्वामी बन जाता है, फिर संसार में आने-जाने की कोई जरुरत नहीं होती है । सिद्धात्मा एक बार अमर-अक्षय स्थिति को प्राप्त करने बाद अनन्तकाल उसी में रमण करता है अत: तीर्थंकर परमात्मा ने सिद्धों की स्थिति सादि अनंत बताई है । एक बार पा लिया तो पा लिया, फिर बिछुडने की कोई गुंजाईश नहीं ।

**प्राण** - सिद्ध भगवंतों के नामकर्म एवं आयुष्य का सर्वथा हो जाने के कारण शरीर नहीं है । शरीर नहीं होने के फलस्वरुप प्राण भी नहीं है ।

**योनि** - जन्म-मरण से रहित होने के कारण वे योनि धारण नहीं करते हैं।

## योनियों की भयंकरता

### गाथा

**काले अणाई-निहणे जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ ।**
**भमिया भमिहिंति चिरं जीवा जिण-वयण मलहंता ।।४९।।**

### अन्वय

अणाई-निहणे काले जोणि गहणम्मि भीसणे इत्थ जिण वयण मलहंता जीवा चिरं भमिया भमिहिंति ।।४९।।

### संस्कृत छाया

काले अनादि निधने योनि गहने भीषणोऽत्र ।
भ्रान्ता भ्रमिष्यन्ति चिरं जीवा जिनवचनमलभमाना: ।।४९।।

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| काले - काल में | अणाई - अनादि |
| निहणे - अनन्त | जोणि - योनियों में |

| | |
|---|---|
| गहणम्मि - गहन, पीडा युक्त | भीसणे - भयंकर |
| इत्थ - इस (संसार) में | भमिया - भ्रमण किया हैं |
| भमिहिंति - भ्रमण करेंगे | चिरं - लम्बे काल तक |
| जीवा - जीव | जिण - जिनेश्वर, जिन |
| वयणं - वचन को | अलहंता - न पाये हुए |

## भावार्थ

श्री जिनेश्वर देव के वचन (धर्म) को न पाये हुए जीव अनादि - अनन्त काल से दुःख युक्त योनियों के द्वारा इस भयंकर संसार में भ्रमण कर रहे हैं और बहुत काल तक भ्रमण करते रहेंगे ॥४९॥

## विशेष विवेचन

संसार में व्यक्ति अनादिकाल से भटक रहा है और भटकाव को रोकने का धर्म ही एक मात्र उपाय है । जो धर्म पर श्रद्धा रखता है और सम्यक्ज्ञान को सम्यक् चारित्र में परिवर्तित करता है, वह मोक्ष में पहुँच जाता है ।

जो परमात्मा के वचनों पर न तो आस्था रखते हैं, न आचरण मे उतारते हैं, वे जीव अनन्त काल तक संसार में भटकते रहते हैं।

## उपदेश का कथन

## गाथा

**ता संपइ संपत्ते मणुअत्ते दुल्लहे वि सम्मत्ते ।**
**सिरि-संति-सूरि-सिट्ठे, करेह भो उज्जमं धम्मे ॥५०॥**

## अन्वय

ता संपइ दुल्लहे वि मणुअत्ते सम्मत्ते संपत्ते भो सिरि-संति सूरि-सिट्ठे धम्मे उज्जमं करेह ॥५०॥

## संस्कृत छाया

ततः संप्रति संप्रासे मनुष्यत्वे दुर्लभेऽपि सम्यक्त्वे ॥
श्री शांतिसूरि शिष्टे कुरूत भो उद्यमं धर्मे ॥५०॥

**शब्दार्थ**

| | |
|---|---|
| ता - इसलिये | संपइ - इस समय |
| संपत्ते - प्राप्त हुआ है | मणुअत्ते - मनुष्य भव |
| दुल्लहे - दुर्लभ होते हुए | वि - भी |
| सम्मत्ते - सम्यक्त्व | सिरि - संति-सूरि-श्री शांतिसूरि |
| सिरि - ज्ञान आदि लक्ष्मी | संति - शांति |
| सूरि - पूज्यजनों द्वारा | सिट्ठे - उपदिष्ट |
| करेह - करो | भो - हे |
| उज्जमं - उद्यम, पुरुषार्थ | धम्मे - धर्म में |

## भावार्थ

इसलिये इस समय दुर्लभ होते हुए भी मनुष्य जन्म एवं समकित प्राप्त हुआ है तो हे मनुष्यों ! ज्ञानादि लक्ष्मी और शांति संपन्न पूज्यजनों (श्री शांतिसूरि) द्वारा उपदिष्ट धर्म में पुरुषार्थ करो ॥५०॥

### विशेष विवेचन

सत्ता, संपत्ति, पैसा, परिवार जीव को हर जन्म में मिला है पर परमात्मा का शुद्ध धर्म एवं जीवन का सच्चा मार्ग तो इसी भव में प्राप्त हुआ है ।

जीव को मनुष्य भव की दुर्लभता बताते हुए ग्रंथकार पू. शांतिसूरीश्वरजी म. सा. कहते हैं- संसार में न साधनों का मिलना बडी बात है, न समृद्धि का ।

सबसे कठिन है, समकित का मिलना, सही दृष्टि का उपलब्ध होना । अज्ञानी-मिथ्यात्वी करोडों भव में जितने कर्म काटते हैं, सम्यक्त्वी को उतने कर्मों का क्षय अन्तर्मुहूर्त्त में ही कर देता है ।

हे भवि जीव । यह मनुष्य भव चिंतामणि रत्न के तुल्य है । जो इसकी सुरक्षा करना जानता है, वह मुक्तिरमणी को पा लेता है ।

यह शुद्ध मोक्ष मार्ग इस पंचम आरे में दुर्लभ होते हुए सुलभ हो गया है अत: धर्म में पुरुषार्थ करो । जिन प्ररुपित धर्म में श्रद्धा धरो ।

## उपसंहार

### गाथा

एसो जीव वियारो संखेवरुईण जाणणा हेऊ ।
संखित्तो उद्धरियो रुद्दाओ सुय - समुद्दाओ ॥५१॥

### अन्वय

एसो जीव वियारो संखेवरुईण जाणणा हेऊ रुद्दाओ सुय समुद्दाओ उद्धरियो संखित्तो ॥५१॥

### संस्कृत छाया

एष जीव विचारः संक्षेपरुचीनां ज्ञान हेतोः ।
संक्षिप्त उद्धृतो रुन्द्रात् श्रुतसमुद्रात् ॥५१॥

### शब्दार्थ

| | |
|---|---|
| एसो - यह | जीव - जीव |
| वियारो - विचार | संखेव - संक्षेप |
| रुईण - रुचि वालों के | जाणणा - जानने के |
| हेऊ - लिये | संखित्तो - संक्षेप में |
| उद्धरियो - उद्धृत किया है | रुद्दाओ - अतिविशाल |
| सुय - श्रुत | समुद्दाओ - समुद्र में से |

## भावार्थ

यह जीव विचार संक्षेप रुचि वाले के जानने के लिये अतिविशाल श्रुत समुद्र में से संक्षेप में उद्धृत किया गया है ॥५१॥

### विशेष विवेचन

परमात्मा महावीर के आगम जितने विशाल हैं, उतने ही गहन भी हैं। श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र, प्रज्ञापना सूत्र, भगवती सूत्र आदि अनेक ग्रन्थों में जीव तत्त्व का विशद वर्णन उपलब्ध है पर ये आगम इतने गहन एवं विशाल है कि उनका अध्ययन कर पाना हर किसी

के लिये सरल/सहज नहीं है ।

जीव तत्त्व का संक्षेप-सार जानने की रुचि रखने वाले अल्पमति वाले जीवों के लिए वादिवेताल श्री शांतिसूरीश्वरजी म. सा. ने श्रुत-समुद्र में से कुछ ज्ञान-बूंदों का प्रस्तुतीकरण प्रस्तुत पुस्तक में किया है।

# जीव विचार प्रश्नोत्तरी

**१) चार प्रकरणों में से जीव विचार प्रकरण प्रथम स्थान पर क्यों रखा गया ?**

उ. नव तत्त्वों में जीव तत्त्व सबसे महत्त्वपूर्ण है। जीव तत्त्व के अलावा समस्त जगत चेतना रहित है। संसार में विविध प्रकार के जीव हैं, उनको जाने बिना अहिंसा का परिपूर्ण पालन नहीं हो सकता। अतः समस्त जीव सृष्टि को जानकर और उनके प्रति करुणा, समता का भाव रखकर ही व्यक्ति साधुता की साधना कर सकता है। अतः जीव तत्त्व के भेद-प्रभेद एव सार समझाने के लिए प्रस्तुत प्रकरण को प्रथम स्थान पर रखा गया।

**२) जीव विचार प्रकरण के रचयिता कौन है ?**

उ. वादिवेताल आचार्य प्रवर श्री शान्तिसूरीश्वरजी म.सा.।

**३) प्रकरणकार का परिचय प्रस्तुत कीजिये ?**

उ. श्री शान्तिसूरीश्वरजी म.सा. का जन्म गुजरात प्रांत में राधनपुर के निकट स्थित उण गाँव (जिला-बनासकांठा) में हुआ था। आपके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम धनश्री था। पाटन में थारापद्रियगच्छीय विजयसिंहसूरि के पास संयम ग्रहण किया और शांतिभद्र मुनि के नाम से जाने-जाने लगे। बाद में शांतिसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। धारा नगरी में वादियों पर विजय प्राप्त करने कारण राजा भोज ने 'वादिवेताल' बिरुद् प्रदान किया था।

**४) जीव विचार प्रकरण पर किसने टीका रची ?**

उ. खरतरगच्छीय वाचक मेघनंदनजी के शिष्य पाठक रत्नाकरजी ने सुखबोधिका नामक पहली टीका लिखी। दूसरी टीका महोपाध्याय समयसुंदरजी म.ने संवत् १६९८ में अहमदाबाद में रची। तीसरी टीका १८५० में बीकानेर में खरतरगच्छीय श्री क्षमाकल्याणजी म. ने रची।

**५) ग्रंथकार ने भगवान महावीर को किससे उपमित किया है ?**

उ. दीपक से।

**६) सूर्य-चन्द की उपमा न देते हुए प्रभु महावीर को दीपक की उपमा क्यों दी गयी ?**

उ. १) सूर्य दिन में ही उजाला करता है और सूर्यास्त के पश्चात् अंधकार छा जाता है। चंद्रमा शुक्ल पक्ष में चाँदनी बिखेरता है परन्तु कृष्ण पक्ष में तो अमावस का घना अंधेरा होता है जब कि दीपक सदैव-सर्वत्र प्रकाश करता है। उसी प्रकार परमात्मा महावीर दीपक के रूप में केवलज्ञान का आलोक सदा-सर्वदा फैलाते हैं।

२) एक सूर्य या चन्द्र से अन्य पदार्थ प्रकाशित होते हैं पर वे स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी एवं चन्द्रमा के समान शीतल नहीं हो सकते जबकि एक दीपक से हजारों दीपक प्रज्ज्वलित होते हैं। उसी प्रकार परमात्मा देशना के द्वारा भव्य जीवों का उद्धार करते हैं, उन्हें भी परमात्म पद पर प्रतिष्ठित कर देते हैं।

३) सूर्य की रोशनी अंधेरी-गहरी गुफा में प्रवेश नहीं कर सकती है जब कि दीपक अंधेरी गुफा में भी प्रकाश करता है। घट-पट सबको दीपक प्रकाशित करता है। उसी प्रकार परमात्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ को भी प्रकाशित करते हैं, अर्थात् अपने ज्ञान से जानते हैं।

४) सूर्य-चन्द्र सीमित क्षेत्र में ही उजाला प्रदान करते हैं जब कि दहलीज पर रखा हुआ दीपक स्वस्थान के साथ भीतरी एवं बाहरी क्षेत्र को भी प्रकाशित करता है। तीर्थंकर प्रभु भी अपने अनन्तज्ञान-दर्शन से त्रिभुवन में प्रकाश करते हैं। वे स्वयं भी आलोक से परिपूर्ण है और दूसरों को भी आलोकित करते हैं।

**७) मंगलाचरण कैसे किया गया है ?**

उ. परमात्मा महावीर को नमन करके मंगलाचरण किया गया है।

**८) मंगलाचरण करने का क्या प्रयोजन है ?**

उ. १) मंगलाचरण करने से ग्रंथकार के, पठन-पाठन करने वालों के विघ्न दूर होते हैं। ग्रन्थ निर्माण में आने वाली समस्याएँ दूर होती हैं एवं ग्रंथ परिपूर्ण बनता है। पढने वालों में विनय की जागृति होती है जिससे वे सुगमता से ग्रंथ का अभ्यास कर लेते हैं। पढाने वालों में प्रज्ञा का विकास होता हैं जिससे सुंदर-सरल पद्धति से समझाने में

उन्हें सफलता मिलती है।

२) पूज्य पुरूषों ने हमेशा से ग्रंथ के प्रारंभ में मंगलाचरण किया है, उस शिष्ट प्रवृत्ति का अनुकरण करते हुए मंगलाचरण किया गया है।

**९) प्रस्तुत प्रकरण किस विषय से अभिप्रेरित है ?**

उ. जीव विचार प्रकरण में जीव तत्त्व के भेदों-उपभेदों का वर्णन किया गया है।

**१०) प्रकरण का संबंध किससे है ?**

उ. ग्रंथकार कहते हैं कि यह प्रकरण मैं अपनी कल्पना के आधार पर नहीं लिख रहा हूँ। जैसा सुधर्मा स्वामी ने परमात्मा महावीर से सुना, जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से सुना। वहीं तत्त्व श्रुति-लेखन परंपरा के द्वारा क्रमशः आचार्य परम्परा में आया। उसी आधार पर मैं जीव तत्त्व का विवरण लिख रहा हूँ। इस प्रकार ग्रन्थ की मौलिक आत्मा परमात्मा महावीर में ही समायी हुई है।

**११) प्रकरण की रचना का उद्देश्य क्या है ?**

उ. जो जीव तत्त्व को जानने की रूचि रखते हैं, उन्हें ज्ञान कराने के लिये इस प्रकरण की रचना गयी है।

**१२) जीव तत्त्व को जानने से क्या लाभ है ?**

उ. जीव तत्त्व को जाने बिना जीव-अजीव का ज्ञान नहीं हो सकता और ज्ञान के बिना संयम-अहिंसा का परिपालन नहीं हो सकता। अहिंसा पालन के बिना आत्मा का मोक्ष नहीं हो सकता। जब जीव जीव तत्त्व को जान लेता है, वह उनके प्रति स्नेह-करूणा भरा व्यवहार करता है और अहिंसा का पालन कर अजर-अमर एवं सिद्धावस्था को उपलब्ध हो जाता है।

**१३) जीव विचार प्रकरण को पढने के अधिकारी कौन हैं ?**

उ. वे जीव, जो जीव तत्त्व से अनजान हैं पर जीव तत्त्व को जानना चाहते हैं, उसके प्रति श्रद्धा का भाव है, वे जीव विचार प्रकरण को पढने के अधिकारी हैं।

**१४) जीव किसे कहते हैं ?**

उ. जिसमें चेतना विद्यमान है, जो प्राणों को धारण करता है, जिसमें ज्ञान-दर्शन-वीर्य

आदि शक्तियाँ समायी हुई हैं, उसे जीव कहते है।

**१५) समस्त जीवों को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है ?**

उ. समस्त जीवों के दो भेद हैं– १) संसारी जीव २) मुक्त जीव।

**१६) संसारी जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो कषाय और राग–द्वेष से युक्त हैं और उसके परिणाम स्वरूप बार–बार जन्म–मरण को प्राप्त होते हैं और घोर दुःख पाते हैं, वे संसारी जीव कहलाते हैं।

**१७) मुक्त जीव किसे कहते है ?**

उ. वे जीव, जिनका राग–द्वेष समाप्त हो चुका हैं। कर्मबंधन और जन्म–मरण के चक्रव्यूह से मुक्त होकर सिद्धशिला पर बिराजमान हो चुके हैं, वे मुक्त जीव कहलाते हैं।

**१८) संसारी जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. संसारी जीवों के प्रमुख दो भेद हैं – १) स्थावर जीव २) त्रस जीव।

**१९) स्थावर जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो सुख–दुःख एवं अनुकूल–प्रतिकूल संयोगों में इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते हैं, वे स्थावर जीव कहलाते हैं।

**२०) स्थावर जीवों के कितने भेद होते है ?**

उ. स्थावर जीवों के पांच भेद होते हैं –

१) पृथ्वीकाय २) अप्काय ३) तेउकाय ४) वायुकाय ५) वनस्पतिकाय।

**२१) स्थावर जीवों का अपर नाम क्या है ?**

उ. एकेन्द्रिय।

**२२) पृथ्वीकायादि पंचक की व्याख्या स्पष्ट करो?**

उ. १) जिस जीव की काया पृथ्वी रूप हो, वह पृथ्वीकायिक जीव कहलाता है।

२) जिस जीव की काया जल रूप हो, वह अप्कायिक जीव कहलाता है।

३) जिस जीव की काया अग्नि रूप हो, वह तेउकायिक जीव कहलाता है।

४) जिस जीव की काया वायु रूप हो, वह वायुकायिक जीव कहलाता है।

५) जिस जीव की काया वनस्पति रूप हो, वह वनस्पतिकायिक जीव कहलाता है।

**२३) त्रस जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो सुख-दुःख के प्रसंगों इच्छानुसार में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा सकते हैं, वे त्रस जीव कहलाते हैं।

**२४) त्रस जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. त्रस जीवों के चार भेद होते हैं – १) द्वीन्द्रिय २) त्रीन्द्रिय ३) चतुरिन्द्रिय ४) पंचेन्द्रिय।

**२५) इन्द्रिय किसे कहते है ?**

उ. जिससे जीव ज्ञान प्राप्त करता है, उसे इन्द्रिय कहते है।

**२६) इन्द्रियाँ कितनी हैं ?**

उ. १) स्पर्शनेन्द्रिय २) रसनेन्द्रिय ३) घ्राणेन्द्रिय ४) चक्षुरिन्द्रिय ५) श्रोतेन्द्रिय

**२७) एकेन्द्रिय जीव किसे कहते है ?**

उ. वे जीव, जिनके स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) रुप एक ही इन्द्रिय होती है, वे एकेन्द्रिय जीव कहलाते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति रुप इसके पांच भेद होते हैं।

**२८) द्वीन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जिनके स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) एवं रसनेन्द्रिय (जीभ) रूप दो इन्द्रियाँ होती हैं, वे द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं।

**२९) त्रीन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जिनके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय एव घ्राणेन्द्रिय (नाक) रूप तीन इन्द्रियाँ होती हैं, वे त्रीन्द्रिय जीव कहलाते हैं।

**३०) चतुरिन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जिनके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय (आँख) रूप चार इन्द्रियाँ होती हैं, वे चतुरिन्द्रिय जीव कहलाते हैं।

**३१) पंचेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जिनके स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय एवं श्रोतेन्द्रिय (कान) रूप पांच इन्द्रियाँ होती हैं, वे पंचेन्द्रिय जीव कहलाते हैं।

**३२) स्पर्शनेन्द्रिय किसे कहते हैं ?**

उ. जिस इन्द्रिय से जीव उष्ण, शीत आदि स्पर्शों का अनुभव करता हैं, उसे स्पर्शनेन्द्रिय कहते है।

**३३) रसनेन्द्रिय किसे कहते हैं ?**

उ. जिस इन्द्रिय से जीव मधुर, आम्ल आदि रसों का अनुभव करता है, उसे रसनेन्द्रिय कहते है।

**३४) घ्राणेन्द्रिय किसे कहते हैं ?**

उ. जिस इन्द्रिय से जीव गंध का अनुभव करता है, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते है।

**३५) चक्षुरिन्द्रिय किसे कहते हैं ?**

उ. जिस इन्द्रिय से जीव देखता है, उसे चक्षुरिन्द्रिय कहते है।

**३६) श्रोतेन्द्रिय किसे कहते हैं ?**

उ. जिस इन्द्रिय से जीव सुनता है, उसे श्रोतेन्द्रिय कहते है।

**३७) स्पर्शनेन्द्रिय के कितने विषय होते हैं ?**

उ. स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय होते हैं – १) मृदु २) कर्कश ३) गुरू ४) लघु ५) स्निग्ध ६) रूक्ष ७) शीत ८) उष्ण।

**३८) रसनेन्द्रिय के कितने विषय होते हैं ?**

उ. रसनेन्द्रिय के पांच विषय होते हैं – १) मधुर २) आम्ल ३) कषाय ४) कटु ५) तिक्त।

**३९) घ्राणेन्द्रिय के कितने विषय होते हैं ?**

उ. घ्राणेन्द्रिय के दो विषय होते हैं – १) सुरभि २) दुरभि

**४०) चक्षुरिन्द्रिय के कितने विषय होते हैं ?**

उ. चक्षुरिन्द्रिय के पांच विषय होते हैं– १) सफेद २) पीला ३) लाल ४) नीला ५) काला।

**४१) श्रोतेन्द्रिय के कितने विषय होते हैं ?**

उ. श्रोतेन्द्रिय के तीन विषय होते हैं – १) जीव शब्द २) अजीव शब्द ३) मिश्र शब्द।

**४२) एक, दो, तीन आदि संख्या की अपेक्षा से जीवों का वर्गीकरण कीजिये?**

उ. **एक अपेक्षा से**–चैतन्य (आत्मा) की अपेक्षा से सभी जीव समान है।

**दो की अपेक्षा से** – १) त्रस २) स्थावर।
१) सांव्यावहारिक २) असांव्यावहारिक।
१) संज्ञी २) असंज्ञी।
१) सिद्ध २) संसारी।

**तीन की अपेक्षा से** – १) पुरूष वेदी २) स्त्री वेदी ३) नपुंसक वेदी।
१) भव्य २) अभव्य ३) जातिभव्य।

**चार की अपेक्षा से** – १) नारकी २) तिर्यंच ३) मनुष्य ४) देव।

**पांच की अपेक्षा से**– १) एकेन्द्रिय २) द्वीन्द्रिय ३) त्रीन्द्रिय ४) चतुरिन्द्रिय ५) पंचेन्द्रिय।

**छह की अपेक्षा से**– १) पृथ्वीकायिक २) अप्कायिक ३) तेउकायिक ४) वायुकायिक ५) वनस्पतिकायिक ६) त्रसकायिक।

**आठ की अपेक्षा से**– १) अण्डज २) पोतज ३) जरायुज ४) रसज ५) संस्वेदज ६) संमूर्च्छिमज ७) उद्भिदज ८) उपपातज।

**नौ की अपेक्षा से** – १) पृथ्वीकायिक २) अप्कायिक ३) तेउकायिक ४) वायुकालिक ५) वनस्पतिकायिक ६) द्वीन्द्रिय ७) त्रीन्द्रिय ८) चतुरिन्द्रिय ९) पंचेन्द्रिय।

**चौदह की अपेक्षा से**– 
१) अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय २) पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय
३) अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय ४) पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय
५) अपर्याप्त द्वीन्द्रिय ६) पर्याप्त द्वीन्द्रिय
७) अपर्याप्त त्रीन्द्रिय ८) पर्याप्त त्रीन्द्रिय
९) अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय १०) पर्याप्त चतुरिन्द्रिय
११) पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय १२) अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय
१३) पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय १४) पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय।

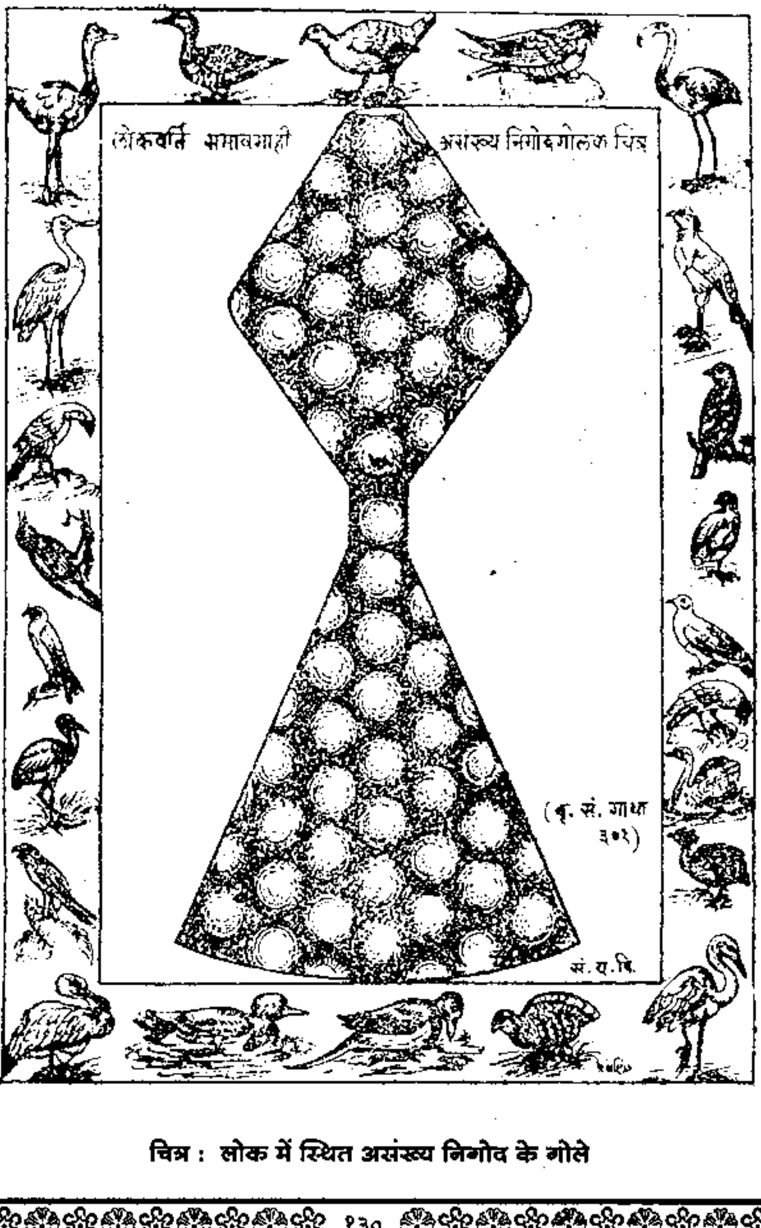


चित्र : लोक में स्थित असंख्य निगोद के गोले

**४३) निगोद के जीवों के कितने प्रकार होते हैं ?**

उ. निगोद के जीवों दो भेद हैं– १) व्यवहार राशि वाले २) अव्यवहार राशि वाले।

**४४) व्यवहार राशि के जीव किसे कहते हैं ?**

उ. जिन जीवात्माओं ने निगोद को छोडकर एक बार भी त्रस पर्याय प्राप्त की हो, वे व्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं।

**४५) अव्यवहार राशि के जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो अनन्तकाल–अनादिकाल से निगोद में ही स्थित है, एक बार भी त्रसकायिक स्थिति को प्राप्त नहीं किया है, वे अव्यवहार राशि के जीव कहलाते हैं।

**४६) किसके प्रभाव से अव्यवहार राशि का जीव व्यवहार राशि में आता हैं ?**

उ. जब एक जीवात्मा सकल कर्मों का क्षय करके सिद्ध पद को प्राप्त करता है तब एक जीवात्मा अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में आता है।

**४७) निगोद के जीवों की काय स्थिति कितने प्रकार की होती हैं ?**

उ. निगोद की काय स्थिति तीन्न प्रकार की होती हैं–

**१) अनादि अनन्त** – वे जीव, जो अनादिकाल से निगोद में ही हैं और निगोद से बाहर कभी निकलेंगे भी नहीं। जातिभव्य जीवों की स्थिति अनादि अनन्तकाल की होती है।

**२) अनादि सांत** – वे जीव, जो अनादिकाल से निगोद में ही हैं, निगोद से बाहर निकले नही हैं परन्तु भवितव्यता के अनुसार कभी न कभी जरूर बाहर निकलेंगे। इसमें भव्य और अभव्य दोनों प्रकार के जीव होते हैं।

**३) सादि सांत** – वे जीव, जो एक बार त्रस पर्याय को प्राप्त हो चुके हैं परन्तु कर्म बंधन करके पुनः निगोद में चले गये हैं। एक बार त्रस पर्याय प्राप्त कर चुके हैं अतः उनकी सादि स्थिति है और वे कभी न कभी मोक्ष में जायेंगे अतः सान्त स्थिति है। भव्य जीव ही इस स्थिति को प्राप्त करते हैं।

**४८) सूक्ष्म निगोद के जीव कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. दो प्रकार के– १) सांव्यवहारिक निगोद २) असांव्यवहारिक निगोद।

**४९) सांव्यवहारिक सूक्ष्म निगोद किसे कहते हैं ?**

उ. एक जीव जब समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त करता है तब एक जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आता है। वह जीव मृत्यु पाकर पुनः सूक्ष्म निगोद में उत्पन्न हो जाये तो वह सांव्यवहारिक जीव कहलाता है।

**५०) असांव्यवहारिक सूक्ष्म निगोद किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में नहीं आयें हैं, अनादिकाल से सूक्ष्म निगोद में ही हैं, उन्हें असांव्यवहारिक जीव कहते हैं।

**५१) निगोद के जीवों के भव बताईये।**

उ. निगोद के जीव–

१) एक श्वासोच्छ्वास में साढे सत्रह भव करते हैं।

२) एक मुहूर्त्त में ६५,५३६ भव करते हैं।

३) एक दिन में १९,६६,०८० भव करते हैं।

४) एक मास में ५,८९,८२,४०० भव करते हैं।

५) एक वर्ष में ७०,७७,८८,७०० भव करते हैं।

**५२) बादर जीव से क्या अभिप्राय है ?**

उ. जिस एक जीव का एक शरीर हो अथवा अनेक जीवों के अनेक शरीर एकत्र हो, उन्हें चर्मचक्षुओं से अथवा किसी यंत्र के द्वारा देखा जा सके, वे बादर जीव कहलाते हैं। ये जीव शस्त्र काटने से कट जाते हैं। इनका छेदन–भेदन होता है। अग्नि जला सकती है एवं पानी बहा सकता हैं। इनकी गति में रूकावट होती है और दूसरों की गति में रूकावट का कारण भी बनते हैं।

**५३) सूक्ष्म जीव से क्या अभिप्राय है ?**

उ. जिन जीवों का एक शरीर अथवा अनेक शरीर इकट्ठे होने भी चर्मचक्षु अथवा यंत्र के द्वारा दिखाई नहीं देते हैं, वे सूक्ष्म जीव कहलाते हैं। ये जीव संपूर्ण चौदह राजलोक में व्याप्त है। ये मनुष्य, तिर्यंच के हलन–चलन से, शस्त्र, अग्नि, जलादि से मृत्यु को प्राप्त नहीं होते हैं।

**५४) सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व कहाँ तक हैं ?**

उ. जिस प्रकार अंजन की डिब्बी में अंजन भरा हुआ होता है, उसी प्रकार संपूर्ण चौदह राजलोक में सूक्ष्म जीव ठुंस-ठुंस कर भरे हुए हैं। सुई की नोंक जितना भाग भी खाली नहीं हैं। सुई की नोंक जितने स्थान में असंख्य श्रेणियाँ होती हैं। एक-एक श्रेणी में असंख्य प्रतर होते हैं। एक-एक प्रतर में असंख्य गोलक होते हैं। एक-एक गोलक में असंख्य औदारिक शरीर होते हैं और एक-एक शरीर में अनन्त-अनन्त जीव होते हैं।

**५५) किन-किन प्रसंगों में त्रसनाडी के बाहर भी त्रसकायिक जीवों का अस्तित्व विद्यमान होता हैं ?**

उ. १) जब कोई तीर्थंकर भगवंत या केवली भगवंत समुद्घात (शैलेषीकरण) करते हैं तब उनके आत्म प्रदेश सम्पूर्ण चौदह राजलोक में व्याप्त हो जाते हैं। उस वक्त त्रस नाडी के बाहर भी त्रस जीव की विद्यमानता होती हैं।

२) जिस त्रस जीव ने त्रस नाडी के बाहर स्थावर नाम कर्म का बंध कर लिया है, वह जीव जब मारणान्तिक समुद्घात करता है तब उसके आत्मप्रदेश त्रस नाडी के बाहर भी व्याप्त होने से त्रस नाडी के बाहर उसका अस्तित्व होता है।

**५६) पर्याप्ता जीव किसे कहते है ?**

उ. जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर चुका है, वह पर्याप्ता जीव कहलाता है। जैसे एकेन्द्रिय जीव चार पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के पश्चात् जीव पर्याप्ता कहलाता है।

चित्र : छह पर्याप्ति

**५७) अपर्याप्ता जीव किसे कहते है ?**

उ. स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व जीव अपर्याप्ता कहलाता है। जैसे एकेन्द्रिय जीव चार पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व अपर्याप्ता कहलाता है।

**५८) पर्याप्ता जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद – १) करण पर्याप्ता २) लब्धि पर्याप्ता

**५९) अपर्याप्ता जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद – १) करण अपर्याप्ता २) लब्धि अपर्याप्ता

**६०) करण पर्याप्ता किसे कहते हैं ?**

उ. जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है, वह करण पर्याप्ता कहलाता है।

**६१) लब्धि पर्याप्ता किसे कहते हैं ?**

उ. जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली है या भविष्य में स्वयोग्य पर्याप्तियाँ अवश्यमेव पूर्ण करेगा, वह लब्धि पर्याप्ता कहलाता है।

**६२) करण अपर्याप्ता किसे कहते हैं ?**

उ. जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं की है, वह करण अपर्याप्ता कहलाता है।

**६३) लब्धि अपर्याप्ता किसे कहते हैं ?**

उ. जिस जीव ने स्वयोग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण नहीं की है और पूर्ण करने से पूर्व ही मर जायेगा, उसे लब्धि अपर्याप्ता कहते है।

**६४) लब्धि पर्याप्ता-अपर्याप्ता एवं करण पर्याप्ता-अपर्याप्ता में पारस्परिक संबंध प्रस्तुत कीजिये ?**

उ. १) लब्धि पर्याप्ता जीव स्वपर्याय योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण करने से पूर्व करण अपर्याप्ता कहलाता है और पूर्ण करने के पश्चात् करण पर्याप्ता कहलाता है अतः लब्धि पर्याप्ता जीव में करण पर्याप्ता–करण अपर्याप्ता रूप दोनों भेद घटित होते हैं।

२) लब्धि पर्याप्ता और करण पर्याप्ता भेद एक ही जीव में एक समय में एक साथ घटित होते हैं क्योंकि पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के बाद भी जीव लब्धि पर्याप्ता कहलाता है और पर्याप्तियाँ पूर्ण करने के पश्चात् करण पर्याप्ता कहलाता है।

३) लब्धि अपर्याप्ता करण अपर्याप्ता ही होता है, वह कभी भी करण पर्याप्ता नहीं बनता है।

४) करण अपर्याप्ता यदि लब्धि पर्याप्ता है तो करण पर्याप्ता बनता है और यदि लब्धि अपर्याप्ता है तो करण अपर्याप्ता ही रहता है अर्थात् स्वपर्याय योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण किये बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

५) करण पर्याप्ता जीव में अवश्यमेव लब्धि पर्याप्ता ही होता है।

**६५) पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति के द्वारा जीव आहार ग्रहण करके उसे रस में परिणमित करता है। रस को शरीर एवं इन्द्रियों में रूपान्तरित करता है। एवं श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण कर श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन रूप बनाता है, जीव की उस शक्ति को पर्याप्ति कहते है।

**६६) पर्याप्तियाँ कितनी होती हैं ?**

उ. पर्याप्तियाँ छह होती हैं– १) आहार पर्याप्ति २) शरीर पर्याप्ति ३) इन्द्रिय पर्याप्ति ४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति ५) भाषा पर्याप्ति ६) मन पर्याप्ति।

**६७) एकेन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?**

उ. चार पर्याप्तियाँ – आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति।

**६८) द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?**

उ. पांच पर्याप्तियाँ – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा पर्याप्ति।

**६९) संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य, देवता, नारकी और तिर्यंच जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?**

उ. छह पर्याप्तियाँ – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन।

**७०) असंज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं तिर्यंच के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?**

उ. मन पर्याप्ति के अतिरिक्त पांच पर्याप्तियाँ होती हैं।

**७१) कौन-कौन से जीव पर्याप्ता और अपर्याप्ता होते हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देव, नारकी, गर्भज-संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय

तिर्यंच एवं गर्भज मनुष्य पर्याप्ता और अपर्याप्ता दोनों होते हैं परन्तु संमूर्च्छिम मनुष्य नियमतः अपर्याप्ता ही होते हैं।

**७२) प्राण और पर्याप्ति में क्या अन्तर है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव जीता है, उसे प्राण कहते हैं। जिस शक्ति से जीव आहार ग्रहण कर क्रमशः रस, शरीर और इन्द्रिय रुप में परिणत करता है एवं श्वासोच्छवास, भाषा, मन योग्य पुद्‌गल ग्रहण कर उन्हें उस रूप में परिवर्तित करता है, उसे पर्याप्ति कहते है।

**७३) संज्ञी और असंज्ञी में क्या अन्तर है ?**

उ. मन वाले जीव को संज्ञी कहते है। मन रहित जीव को असंज्ञी कहते हैं।

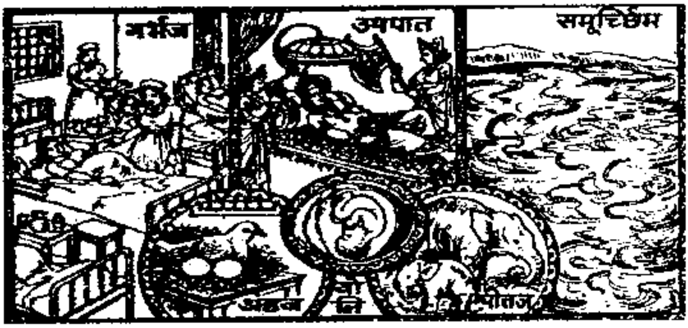


चित्र : जीवोत्पत्ति के प्रकार

**७४) जीव की उत्पत्ति के प्रमुख कितने भेद हैं ?**

उ. तीन भेद – १) गर्भज २) संमूर्च्छिम ३) औपपातिक

**७५) गर्भज जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो माता–पिता (नर एवं नारी) के संयोग से उत्पन्न होते हैं, वे गर्भज कहलाते हैं।

**७६) संमूर्च्छिम जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो माता–पिता के संयोग के बिना अन्य बाह्य संयोग प्राप्त होने पर उत्पति स्थान में स्थित औदारिक पुद्‌गलों को शरीर में परिणत करके उत्पन्न होते हैं, उनका संमूर्च्छिम जीव कहलाता है।

**७७) गर्भज जीवों के कितने प्रकार होते हैं ?**

उ. तीन प्रकार – १) जरायुज २) अण्डज ३) पोतज।

**७८) जरायुज गर्भज किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो रक्त और मांस से युक्त जाल के आवरण में लिपटे हुए पैदा होते हैं, वे जरायुज गर्भज कहलाते हैं। जैसे मनुष्य, गाय, भैंस, बकरी आदि।

**७९) अण्डज गर्भज किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो अण्डों से पैदा होते हैं, वे अण्डज गर्भज कहलाते हैं। जैसे सांप, तोता, कबतूर, मूर्गी आदि।

**८०) पोतज गर्भज जीव किसे कहते है ?**

उ. वे जीव, जो बिना किसी आवरण के पैदा होते हैं, वे पोतज गर्भज कहलाते हैं। जैसे हाथी, शशक, नेवला, चूहा आदि।

**८१) औपपातिक जन्म किसे कहते है ?**

उ. देवशय्या पर दिव्य वस्त्रों से आच्छादित स्थान उपपात कहलाता है। उस उपपात स्थान पर स्थित वैक्रिय पुद्‌गलों को ग्रहण करके शरीर में परिवर्तित करना औपपातिक जन्म कहलाता है। इस प्रकार का जन्म देवताओं का होता है।

नारकी जीव चौडे मुँह वाली कुंभी में स्थित वैक्रिय पुद्‌गलों को शरीर रूप परिणत करके जन्म लेते हैं।

**८२) किन-किन जीवों का गर्भज जन्म होता हैं ?**

उ. १) पंचेन्द्रिय तिर्यंच २) पंचेन्द्रिय मनुष्य।

**८३) किन-किन जीवों का संमूर्च्छिम जन्म होता हैं ?**

उ. १) एकेन्द्रिय (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय) २) द्वीन्द्रिय ३) त्रीन्द्रिय ४) चतुरिन्द्रिय ५) अगर्भज पचेन्द्रिय तिर्यंच ६) अपर्याप्ता असंज्ञी मनुष्य

**८४) किन-किन जीवों का औपपातिक जन्म होता हैं ?**

उ. १) देवता २) नारकी।

**८५) एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति किस प्रकार होती हैं ?**

√उ. एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीव उत्पत्ति के योग्य संयोग मिलने पर स्वजातीय जीवों के आस-पास उत्पन्न हो जाते हैं। त्रीन्द्रिय जीव स्वजातीय जीवों के मल आदि में एवं चतुरिन्द्रिय जीव स्वजातीय जीवों के मल, लार आदि संयोगानुसार उत्पन्न हो जाते हैं। वहाँ स्थित औदारिक शरीर के पुद्‌गलों को शरीर रूप में परिणत करके उत्पन्न होते हैं।

**√८६) संमूर्च्छिम मनुष्य एवं तिर्यंचों की उत्पत्ति के चौदह अशुचि स्थान कौनसे हैं?**

उ. १) मल २) पेशाब ३) कफ ४) नाक का मल ५) वमन ६) पित्त ७) पीब-मवाद ८) रूधिर ९) वीर्य १०) त्याग किये गये वीर्य के पुद्‌गल ११) मुर्दा शरीर १२) पुरूष-स्त्री का परस्पर संयोग १३) मेल १४) पसीना।

**८६) पांच द्वार कौन-कौनसे हैं ?**

उ. १) अवगाहना द्वार २) आयुष्य द्वार ३) स्वकाय स्थिति द्वार ५) प्राण द्वार ६) योनि द्वार

**८७) अवगाहना द्वार किसे कहते हैं ?**

उ. जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना बताने वाले द्वार को अवगाहना द्वार कहते है।

**८८) आयुष्य द्वार किसे कहते हैं ?**

उ. जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु बताने वाले द्वार को आयुष्य द्वार कहते है।

**८९) स्वकाय स्थिति द्वार किसे कहते हैं ?**

उ. कोई भी जीव मरकर पुनः स्वकाय (स्वपर्याय) में कितनी स्थिति-काल तक उत्पन्न होता है, यह बताने वाले द्वार को स्वकाय स्थिति द्वार कहते है।

**९०) प्राण द्वार किसे कहते हैं ?**

उ. जीवों में प्राण बताने वाले द्वार को प्राण द्वार कहते हैं।

**९१) योनि द्वार किसे कहते हैं ?**

उ. जीवों की योनियों की संख्या बताने वाले द्वार को योनि द्वार कहते है।

**९२) अवगाहना किसे कहते हैं ?**

उ. जीव के शरीर की ऊँचाई को अवगाहना कहते हैं।

**९३) आयुष्य किसे कहते हैं ?**

उ. अमुक/नियत काल तक एक शरीर में जीव को रोकने वाला आयुष्य कहलाता है।

**९४) स्वकाय स्थिति किसे कहते हैं ?**

उ. एक ही पर्याय में जीव जितनी बार जन्म लेता है एवं मरता है, उसे स्वकाय स्थिति कहते है।

**९५) प्राण किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति से जीव जीता है, उसे प्राण कहते है।

**९६) प्राण कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. दस प्रकार के – १) स्पर्शनेन्द्रिय प्राण २) रसनेन्द्रिय प्राण ३) घ्राणेन्द्रिय प्राण ४) चक्षुरिन्द्रिय प्राण ५) श्रोतेन्द्रिय प्राण ६) मन बल प्राण ७) वचन बल प्राण ८) काय बल प्राण ९) श्वासोच्छ्वास प्राण १०) आयुष्य प्राण।

**९७) योनि किसे कहते हैं ?**

उ. जीव के जन्म लेने के स्थान को योनि कहते है। स्थूल शरीर बनाने के लिये उसके योग्य पुद्गलों को प्रथम बार ग्रहण करना योनि कहलाता है।

**९८) योनियाँ कितनी है ?**

उ. चौरासी लाख।

**९९) जीव अनन्त होने से उनके उत्पत्ति स्थान भी अनन्त हैं, फिर चौरासी लाख ही योनियाँ क्यों कही गयी ?**

उ. जिन–जिन योनि स्थानों का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और संस्थान समान होते हैं, वह एक योनि ही कही जाती है। इन वर्णादि पांचों की तरतमता के आधार पर जीव की कुल ८४ लाख योनियाँ कही गयी हैं।

## एकेन्द्रिय विवेचन खण्ड

**१००) पृथ्वीकायिक जीवों के भेद बताओ ?**

उ. स्फटिक, मणि, रत्न, परवाल, हिंगुल, हरताल, पारा, सोना–चांदी आदि धातुएँ, हरमची, पलेवक, अभ्रक, तेजंतूरी, क्षार, मिट्टी और पत्थर की अनेक जातियाँ,

सुरमा, नमक आदि अनेक पृथ्वीकायिक जीवों के भेद हैं।

**१०१) स्फटिक क्या है एवं इसका क्या उपयोग है ?**

उ. स्फटिक एक पारदर्शी (जिसके आर-पार दिखाई देता है) पत्थर है। इसकी मूल्यवान् प्रतिमाएँ, चश्में आदि अनेक वस्तुएँ निर्मित होती हैं।

**१०२) परवाल क्या है ?**

उ. परवाल (मूंगा) लाल रंग का होता है। यह समुद्र से प्राप्त होता है। इसकी मूर्तियाँ, मालाएँ आदि चीजें बनती हैं।

**१०३) हरताल का मानव जीवन में क्या उपयोग है ?**

उ. यह खान में से निकलने वाली पीले रंग की विषैली मिट्टी है। औषधि बनाने में एवं अक्षर मिटाने में इसका उपयोग होता है।

**१०४) पारा का क्या उपयोग है ?**

उ. पारा सफेद रंग का एक तरल पदार्थ है। अनाज के भण्डारों में डालने से उनमें जीवोत्पत्ति नही होती हैं। इससे अनेक प्रकार की दवाईयाँ भी बनती हैं।

**१०५) अभ्रक क्या हैं ?**

उ. अभ्रक एक चमकदार पदार्थ है। खान में से निकलता है। यह पांच रंगों में पाया जाता है। विद्युत् का कुचालक होने से अनेक इलेक्ट्रिक सामग्रियों में इसका उपयोग होता है।

**१०६) जिसे लोहे के रस में डालने से लोहा सोना बन जाता है, उसे क्या कहते हैं?**

उ. तेजंतूरी या फटकडी।

**१०७) किस आगम में बादर पृथ्वीकाय के दो भेद बताये गये हैं ?**

उ. आचारांग सूत्र में।

**१०८) बादर पृथ्वीकाय के वे दो भेद कौनसे हैं ?**

उ. १) श्लक्षण पृथ्वी २) खर पृथ्वी।

**१०९) श्लक्षण पृथ्वी और खर पृथ्वी में क्या भेद हैं ?**

उ. श्लक्षण पृथ्वी कोमल-मुलायम होती है जबकि खर पृथ्वी कठोर होती है।

**११०) श्लक्षण पृथ्वी कितने प्रकार की होती हैं ?**

उ. पांच प्रकार की – १) काली २) नीली ३) पीली ४) लाल ५) सफेद।

**१११) खर पृथ्वी कितने प्रकार की होती हैं ?**

उ. छत्तीस प्रकार की – १) मिट्टी २) कंकर ३) रेती ४) पत्थर ५) शिला ६) नमक ७) क्षार ८) लोहा ९) तांबा १०) रांगा ११) सीसा १२) चांदी १३) सोना १४) हीरा १५) हरताल १६) हिंगुल १७) मनसिल १८) पारा १९) सुरमा २०) मूंगा २१) अभ्रक २२) अभ्रबालुका २३) गोमेदक २४) रूचक २५) अंक २६) स्फटिक २७) लोहिताक्ष २८) मरकत २९) मसारगल्ल ३०) भुजमोदक ३१) इन्द्रनील ३२) सौगंधिक ३३) चन्द्रकान्त ३४) वैडूर्य ३५) जलकान्त ३६) सूर्यकान्त। इसमें प्रारंभ के २२ भेद सामान्य पृथ्वी के हैं एवं शेष चौदह भेद रत्नों के हैं।

**११२) जलकायिक जीवों के भेद बताओ ?**

उ. नदी, सागर, तालाब, कुएँ एवं बरसात का पानी, ओस, बर्फ, ओले, कोहरा, हरी वनस्पतियों के उपर फूटकर निकला हुआ पानी, घनोदधि आदि जलकायिक (अप्कायिक) जीवों के भेद हैं।

**११३) घनोदधि से क्या तात्पर्य है ?**

उ. चौदह राजलोक में स्थित देव विमानों एवं नरक पृथिवियों के नीचे घी के समान जमा-ठसा हुआ पानी घनोदधि कहलाता है।

**११४) अग्निकायिक जीवों के उदाहरण दीजिये ?**

उ. अंगार, ज्वाला, मुर्मर, उल्कापात, अशनि, आकाश से गिरने वाले अग्निकण, बिजली इत्यादि अग्निकायिक जीवों के भेद हैं।

**११५) समुद्र में लगने वाली आग को क्या कहते हैं ?**

उ. दावानल।

**११६) वडवानल किसे कहते हैं ?**

उ. बांस आदि के आपस में टकराने-घिसने से उत्पन्न होने वाली आग वडवानल

कहलाती है।

**११७) वायुकायिक जीवों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कीजिये ?**

उ. उद्भ्रामक, उत्कलिका, मंडलाकार, आंधी, शुद्ध, गूंजवायु, घणवात, तनवात इत्यादि वायुकायिक जीवों के भेद हैं।

**११८) उद्भ्रामक और उत्कलिका वायु में क्या भेद है ?**

उ. ऊँचाई की तरफ बहने वाली वायु उद्भ्रामक कहलाती है जबकि नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली वायु उत्कलिका कहलाती है।

**११९) मंडलाकार वायु एवं गूंजवायु को स्पष्ट करो ?**

उ. वह वायु, जो गोल-गोल घूमती हुई बहती है, मंडलाकार (गोलाकार) वायु कहलाती हैं। वह वायु, जो गूंजती हुई बहती है, गूंजवायु कहलाती हैं।

**१२०) उद्भ्रामक वायु का दूसरा क्या नाम है ?**

उ. संवर्तक वायु।

**१२१) घनवात-तनवात से क्या आशय है ?**

उ. घनवात का अर्थ गाढी वायु है और तनवात का अर्थ पतली वायु है। चौदह राजलोक में देवविमानों एवं नरक पृथिवियों के नीचे जो घनोदधि स्थित है, उसके नीचे घनवात एवं तनवात स्थित हैं।

**१२२) वनस्पतिकायिक जीवों के कितने भेद हैं ?**

उ. दो भेद- १) साधारण वनस्पतिकाय २) प्रत्येक वनस्पतिकाय।

**१२३) साधारण वनस्पतिकाय किसे कहते हैं ?**

उ. जिन अनन्त जीवों का अलग-अलग शरीर नहीं होता है। एक ही शरीर में अनन्त जीव निवास करते हैं, उसे साधारण वनस्पतिकाय कहते हैं।

**१२४) प्रत्येक वनस्पतिकाय किसे कहते हैं ?**

उ. वनस्पतिकाय के एक शरीर में एक ही जीवात्मा निवास करता है, प्रत्येक जीवात्मा का पृथक्-पृथक् शरीर होता हैं, उसे प्रत्येक वनस्पतिकाय कहते है।

**१२५) साधारण वनस्पतिकाय को अन्य किस नाम से पुकारा जाता है ?**

उ. अनन्तकाय एवं निगोद।

**१२६) साधारण वनस्पतिकाय के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कीजिये ?**

उ. जमीकंद (आलू, प्याज, लहसून, मूली, गाजर, शकरकंद आदि), अंकुरित धान, नये कोमल पत्ते, पांच रंग की फुल्ली, सिवार, भूमिस्फोटक, अर्द्रक, हल्दी, कर्चूरक, नागरमोत्था, वथुआ, थेग, पालक, थोहर, गलोय गुग्गल, आदि साधारण वनस्पतिकाय के भेद हैं।

**१२७) शास्त्रों में कितने प्रकार की अनन्तकाय का वर्णन विशेष रूप से किया गया है ?**

उ. बत्तीस प्रकार की अनंतकाय का विशेष-वर्णन शास्त्रों में उपलब्ध होता है, वह निम्नलिखित हैं-

| | | | |
|---|---|---|---|
| १) सर्व कंद की जाति | २) भोयकालु | ३) लीला आदु | ४) लहसुन |
| ५) गाजर | ६) किसलय | ७) थेंग की भाजी | ८) खिल्लडो |
| ९) विलाडी का टोप | १०) मसूर की बल्ली | ११) आलू | १२) वज्रकंद |
| १३) थोर की जाति | १४) सीतावरी | १५) गलोय | १६) लुणी वृक्ष |
| १७) गिरिकीर्णिका | १८) लीली मोढ | १९) अमृतवेल | २०) द्विदल के अंकुर |
| २१) पालक | २२) प्याज | २३) हरी हल्दी | २४) लीला कचूरा |
| २५) खरसेया | २६) विष करैली | २७) लोढक कंद | २८) खरस झंबो |
| २९) लुणी की छाल | ३०) मूली | ३१) ढक्कवत्थूल की भाजी | ३२) कुणी आंबली |

**१२८) साधारण वनस्पतिकाय के विशेष लक्षण क्या-क्या हैं ?**

उ. १) साधारण वनस्पतिकाय की नसें, गाठें और संधि स्थल गुप्त होते हैं। उनकी नसें आदि गन्ने की भाँति स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होती हैं।

२) साधारण वनस्पतिकाय को तोडने समान टुकडे होते हैं। झार वृक्ष के पत्ते को तोडने पर उसके एरंड के पत्ते के समान टेढे टुकडे न होकर समान/सीधे दो टुकडे होते हैं।

३) साधारण वनस्पतिकाय के तंतु नहीं होते हैं।

४) साधारण वनस्पतिकाय काटकर बोने पर भी उगती है। गिलोय आदि को काटकर अधर लटका दिया जाये तो भी वह वृद्धि को प्राप्त करती है।

५) साधारण वनस्पतिकाय तोडने से तुरन्त कडक हो जाती है।

**१२९) साधारण वनस्पतिकाय की शारीरिक संरचना कैसी होती है ?**

उ. साधारण वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर प्रत्येक वनस्पतिकाय की अपेक्षा अधिक नाजुक, जड होता है। अनन्त जीवों के कारण जल्दी जन्म लेने वाला व देरी से मृत्यु को प्राप्त होने वाला होता हैं।

**१३०) कोई भी वनस्पति अंकुरित होते समय कैसी होती है ?**

उ. कोई भी वनस्पति अंकुरित–प्रस्फुटित होते समय साधारण वनस्पतिकाय होती हैं। यदि प्रत्येक वनस्पतिकाय की जाति की हो तो बाद में प्रत्येक बन जाती है। साधारण वनस्पतिकाय की जाति की हो तो साधारण ही रहती हैं।

**१३१) प्रत्येक वनस्पतिकाय के कितने भेद होते हैं ?**

उ. प्रत्येक वनस्पतिकाय के फल, फूल, छाल, काष्ठ, मूल, पत्ता और बीज रूप सात भेद होते हैं। इसके अलावा शास्त्रों में दस भेद भी उपलब्ध होते हैं, वे इस प्रकार हैं – मूल, स्कन्द, थड, छाल, शाखा, काष्ठ, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

**१३२) तृण वनस्पतिकाय कितनी प्रकार से उगती हैं ?**

उ. १) अग्रबीज : जिनका उग्र भाग बोने से उगता है जैसे कोरंट, नागरवेल आदि।

२) मूलबीज : जिनका मूल बोने से उगता है जैसे उत्पल, कंद आदि।

३) स्कंध बीज : जिनकी शाखा बोने से उगती है, जैसे गिलोय आदि।

४) पर्व बीजः जिनकी गांठें बोने से उगती है, जैसे ईख, बाँस आदि।

५) बीजरूह : जिनके बीज बोने से उगते हैं, जैसे डांगर आदि।

**१३३) प्रत्येक वनस्पतिकाय के बारह भेदों की व्याख्या कीजिये ?**

उ. १) वृक्ष : जिनके आश्रित फल, फूल, मूल, शाखा, प्रशाखा, त्वचा, स्कन्ध आदि अनेक हो, जैसे आम, नीम आदि वृक्ष।

२) गुच्छ : पौधे को गुच्छ कहा जाता है, जैसे तुलसी आदि।

३) गुल्म : विशेषतः फूलों के पौधों को गुल्म कहते है, जैसे चम्पा, जूही आदि।

४) लताः ऐसी बेलें जो वृक्षों पर चढ जाती हैं, लताएँ कहलाती हैं, जैसे नागलता, चम्पकलता आदि।

५) वल्लीः ऐसी बेलें, जो जमीन पर ही फैलती हैं, वल्ली कहलाती है, जैसे तरबूज, ककडी आदि की बेलें।

६) पर्वक : जिन वनस्पतियों के बीच में गांठें हो, वे पर्वक वनस्पतियाँ कहलाती हैं, जैसे बेंत, इक्षु आदि।

७) तृण : हरी घास को तृण कहते है, जैसे कुश, अर्जुन आदि।

८) वलय : गोल-गोल पत्तों वाली वनस्पतियाँ वलय कहलाती हैं, जैसे ताड, केले आदि।

९) औषधि : जो वनस्पति पक जाने पर अन्न एवं फसल दोनों रूप में होती है, औषधि कहलाती है, जैसे मसूर, तिल, गेहुं आदि।

१०) हरितः हरी साग-भाजी को हरित कहते है, जैसे चंदलिया, वथुआ आदि।

११) जलरूह : जल में उत्पन्न होने वाली वनस्पति जलरूह कहलाती है, जैसे पनक, शैवाल आदि।

१२) कुहण : भूमि को तोडकर निकलने वाली वनस्पतियाँ कुहण कहलाती है, जैसे छत्राभ (कुकुरमुत्ता) आदि।

**१३४) वनस्पतिकायिक जीवों के संदर्भ में विस्तार से बताइये ?**

उ. वनस्पतिकाय में अनेक विशेषताएँ होती हैं।

१) शब्द ग्रहण शक्ति- कंदल, कुंडल आदि वनस्पतियाँ मेघ गर्जना से पल्लवित होती हैं।

२) आश्रय ग्रहण शक्ति- बेलें, लताएँ दीवार, वृक्ष आदि का सहारा लेकर वृद्धि को प्राप्त करती हैं।

३) सुगन्ध ग्रहण शक्ति- कुछ वनस्पतियाँ सुगन्ध पाकर जल्दी पल्लवित होती हैं।

४) रस ग्रहण शक्ति - ऊख आदि वनस्पतियाँ भूमि से रस ग्रहण करती हैं।

५) स्पर्श ग्रहण शक्ति- कुछ वनस्पतियाँ स्पर्श पाकर फैलती है और कुछ संकुचित होती

जाती हैं।

६) निद्रा एवं जागृति– चन्द्रमुखी फूल चन्द्र खिलने के साथ खिलते हैं। उसके अभाव में संकुचित हो जाते हैं। सूर्यमुखी फूल सूर्योदय के साथ खिलते हैं, सूर्यास्त के बाद सिमट जाते हैं। पुंआड आदि वृक्ष और अंभारी आदि के फूल कुछ समय के लिये खिलते हैं और बाद में मुरझा जाते हैं।

७) राग– पायल की रुनझुन की मधुर आवाज के सुनकर रागात्मक दशा में अशोक, बकुल, कटहल आदि वृक्षों के फूल खिल उठते हैं।

८) संगीत – मधुर धुन सुनकर कई वृक्षों के फूल जल्दी पल्लवित, पुष्पित और सुरभित होते हैं।

९) लोभ – सफेद आक, पलाश, बिलीवृक्ष आदि की जड़ें भूमि में दबे हुए धन पर फैल कर रहती हैं।

१०) लाज/भय– छुईमुई आदि कई वनस्पतियाँ स्पर्श पाकर लाज/भय से संकुचित हो जाती हैं।

११) मैथुन– अनेक वनस्पतियाँ आलिंगन, चुम्बन, कामुक हाव–भाव एवं कटाक्ष से जल्दी फलीभूत होती हैं। पपीते आदि के वृक्ष नर और मादा साथ–साथ हो तो ही पल्लवित होते हैं।

१२) क्रोध– कोकनद का वृक्ष क्रोध में हुंकार की आवाज करता हैं।

१३) मान – अनेक वृक्षों में अभिमान का भाव भी पाया जाता है।

१४) आहार संज्ञा – वृक्षों, पौधो को जब तक आहार–पानी मिलता हैं तब तक जीवित रहते हैं। आहार–पानी के अभाव में सूखकर मर जाते हैं।

१५) शाकाहारी/मांसाहारी–वनस्पतिकायिक जीवों में कुछ वनस्पतियाँ पानी, खाद आदि का आहार करती हैं और कुछ वनस्पतियाँ मनुष्य, जलचर, द्वन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय के मांस–रूधिर का भक्षण करती हैं। सनड्यू और वीनस फ्लाइट्रेप आदि वनस्पतियाँ संपातिम (उडने वाले) जीवों का भक्षण करती हैं।

१६) आकर्षण– कई वनस्पतियाँ फैलकर पास से गुजरते हुए मनुष्य, तिर्यंच आदि को

अपने कसे हुए शिंकजे में फंसा देती हैं।

१७) माया – कई लताएँ अपने फलों को पत्तों के नीचे दबाकर रखती हैं और फल रहित होने का दिखावा करती हैं।

१८) जन्म–वनस्पतिकाय बोने पर जन्म को प्राप्त करती है। वर्षाकाल में चारों तरफ वनस्पतियाँ उग आती हैं।

१९) मृत्यु– वनस्पतियाँ हिमपात, शीत एवं उष्ण की अधिकता, आहार–पानी की कमी, रोग, भय अन्य जीवों के प्रहार, आयुष्य समाप्ति पर मृत्यु को प्राप्त करती हैं।

२०) वृद्धि–वनस्पतियाँ वृद्धि को भी प्राप्त करती है। बीज धीरे–२ वृद्धि को प्राप्त होता है। वटवृक्ष का रूप धारण करने में कई वर्ष व्यतीत हो जाते हैं।

२१) रोग – अन्य जीवों की भाँति वनस्पति भी रोगग्रस्त होती है। पानी, हवा, धूप, आहार आदि की अल्पता–अधिकता कारण रोग होते हैं और पुनः स्वयं औषधोपचार प्राप्त कर स्वास्थ लाभ प्राप्त कर लेती हैं।

**१३५) पृथ्वीकायिक जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चार भेद – पर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर, अपर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर।

**१३६) अप्कायिक जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चार भेद – पर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर, अपर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर।

**१३७) तेउकायिक जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चार भेद – पर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर, अपर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर।

**१३८) वायुकायिक जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चार भेद – पर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर, अपर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर।

**१३९) वनस्पतिकायिक जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. वनस्पतिकाय के छह भेद होते हैं जिनमें से चार भेद साधारण वनस्पतिकाय के होते हैं– पर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर, अपर्याप्ता सूक्ष्म एवं बादर और दो भेद प्रत्येक वनस्पतिकाय के होते हैं– पर्याप्ता बादर और अपर्याप्ता बादर।

**१४०) एकेन्द्रिय जीवों के कुल कितने भेद होते हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय के चार–चार भेद होते हैं। साधारण वनस्पतिकाय एवं प्रत्येक वनस्पतिकाय के क्रमशः चार एवं दो भेद होते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों के कुल बावीस भेद होते हैं।

**१४१) किस वैज्ञानिक ने पानी की एक बूंद में ३६४५० त्रस जीव यंत्र के द्वारा प्रमाणित किये ?**

उ. केप्टन स्कोर्सबी ने।

**१४२) वनस्पतिकाय में सर्वप्रथम किसने यंत्र की सहायता से जीव सिद्धि की ?**

उ. डॉ. जगदीशचन्द्र बसु ने।

**१४३) एकेन्द्रिय जीवों के कितने शरीर होते हैं ?**

उ. पृथ्वीकायादि पांचों में औदारिक, तैजस, कार्मण रूप तीन शरीर पाये जाते हैं और वायुकाय में चौथा वैक्रिय शरीर भी पाया जाता है।

**१४४) वायुकाय के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. वायुकाय के उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग होती है।

**१४५) वायुकाय के उत्तर वैक्रिय शरीर का काल कितना होता हैं ?**

उ. जघन्य और उत्कृष्ट रूप से अन्तर्मुहूर्त्त का होता है।

**१४६) एकेन्द्रिय जीवों के कौनसा संघयण होता हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय जीव संघयण रहित होते हैं।

**१४७) एकेन्द्रिय जीवों के कौनसा संस्थान होता हैं ?**

उ. हुंडक संस्थान।

**१४८) एकेन्द्रिय जीव कितने कषायों से युक्त होते हैं ?**

उ. चार कषायों से युक्त होते हैं।

**१४९) एकेन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्याएँ होती हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में कृष्ण, नील, कापोत और तेजो रूप चार

लेश्याएँ होती हैं एवं तेउकाय तथा वायुकाय में कृष्ण, नील, कापोत रूप तीन लेश्याएँ होती हैं।

**१५०) एकेन्द्रिय जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?**

उ. तीन उपयोग– १) मति अज्ञान २) श्रुत अज्ञान ३) अचक्षु दर्शन

**१५१) एकेन्द्रिय जीवों में कौनसा वेद पाया जाता है ?**

उ. नपुंसक वेद।

**१५२) एकेन्द्रिय जीवो में कितने समुद्घात होते हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय एवं वनस्पतिकाय में वेदना, कषाय एवं मरण रूप तीन समुद्घात पाये जाते हैं। वायुकाय में इन तीनों के अलावा चौथा वैक्रिय समुद्घात भी होता है।

**१५३) एकेन्द्रिय जीवों में कितने दर्शन होते हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय जीवों में मात्र मिथ्यादर्शन ही होता है।

**१५४) एकेन्द्रिय जीवों में कितनी दृष्टियाँ होती हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय जीव दृष्टि रहित होते हैं।

**१५५) एकेन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति कितनी होती हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीवों की स्वकाय स्थिति असंख्य उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी होती हैं जब कि साधारण वनस्पतिकाय के जीवों की स्वकायस्थिति अनन्त उत्सर्पिणी–अवसर्पिणी होती हैं।

**१५६) एकेन्द्रिय जीव कितने प्रकार का आहार ग्रहण करते हैं ?**

उ. दो प्रकार –१) ओजाहार २) लोमाहार।

**१५७) एक समय में कितने एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं ?**

उ. वनस्पतिकाय के अतिरिक्त पृथ्वीकायादि चारों स्थावर जीव असंख्यात और वनस्पतिकाय के अनन्त जीव प्रति समय उत्पन्न होते हैं।

**१५८) एक समय में कितने एकेन्द्रिय जीव मरते हैं ?**

उ. वनस्पतिकाय के अतिरिक्त चारों स्थावर जीव असंख्यात एवं वनस्पतिकाय के

अनन्त जीव प्रति समय मरते हैं।

**१५९) एकेन्द्रिय जाति में जन्म-मरण का विरह काल कितना होता हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय जाति में प्रति समय जीव जन्म–मृत्यु को प्राप्त करते ही रहते हैं अतः उनमें जन्म–मरण (उपपात–च्यवन) विरहकाल होता ही नहीं हैं।

**१६०) एकेन्द्रिय जीवों की अवगाहना कितनी होती हैं ?**

| उ. | एकेन्द्रिय प्राणी | | जघन्य अवगाहना | उत्कृष्ट अवगाहना |
|---|---|---|---|---|
| १ | पृथ्वीकाय | सूक्ष्म–बादर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | अंगुल का असंख्यातवां भाग |
| २ | अप्काय | सूक्ष्म–बादर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | अंगुल का असंख्यातवां भाग |
| ३ | तेउकाय | सूक्ष्म–बादर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | अंगुल का असंख्यातवां भाग |
| ४ | वायुकाय | सूक्ष्म–बादर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | अंगुल का असंख्यातवां भाग |
| ५ | साधारण वनस्पतिकाय | सूक्ष्म–बादर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | अंगुल का असंख्यातवां भाग |
| ६ | प्रत्येक वनस्पतिकाय | बादर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | एक हजार योजन से कुछ अधिक |

**१६१) एकेन्द्रिय जीवों में कितने सम्यक्त्व होते हैं ?**

उ. बादर अपर्याप्ता पृथ्वीकाय, अप्काय और प्रत्येक वनस्पतिकाय में एक मात्र सास्वादन सम्यक्त्व पाया जाता है। अन्यों में एक भी सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है।

**१६२) एकेन्द्रिय जीवों का जघन्य-उत्कृष्ट आयुष्य बताईए ?**

| उ. | एकेन्द्रिय | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|---|
| १ | पर्याप्ता–अपर्याप्ता सूक्ष्म पृथ्वीकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| २ | पर्याप्ता–अपर्याप्ता सूक्ष्म अप्काय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ३ | पर्याप्ता–अपर्याप्ता सूक्ष्म तेउकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ४ | पर्याप्ता–अपर्याप्ता सूक्ष्म वायुकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ५ | पर्याप्ता–अपर्याप्ता सूक्ष्म साधारण वनस्पतिकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ६ | अपर्याप्ता बादर पृथ्वीकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ७ | अपर्याप्ता बादर अप्काय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ८ | अपर्याप्ता बादर तेउकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ९ | अपर्याप्ता बादर वायुकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| १० | अपर्याप्ता बादर साधारण वनस्पतिकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| ११ | अपर्याप्ता बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| १२ | पर्याप्ता बादर साधारण वनस्पतिकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | अन्तर्मुहूर्त्त |
| १३ | पर्याप्ता बादर पृथ्वीकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | २२००० वर्ष |
| १४ | पर्याप्ता बादर अप्काय | अन्तर्मुहूर्त्त | ७००० वर्ष |
| १५ | पर्याप्ता बादर तेउकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | ३ दिवस |
| १६ | पर्याप्ता बादर वायुकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | ३००० वर्ष |
| १७ | पर्याप्ता बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय | अन्तर्मुहूर्त्त | १०००० वर्ष |

**१६३) पृथ्वीकायिक जीवों के विभिन्न भेदों की आयु बताओ ?**

उ. पृथ्वीकायिक जीवों के विभिन्न भेदों की उत्कृष्ट आयु निम्नलिखित हैं –

| | | |
|---|---|---|
| १ | पीली मिट्टी की | ६०० वर्ष |
| २ | सफेद मिट्टी की | ७०० वर्ष |
| ३ | लाल मिट्टी की | ९०० वर्ष |
| ४ | काली मिट्टी की | १००० वर्ष |
| ५ | हरी मिट्टी की | १००० वर्ष |
| ६ | कोमल पृथ्वी की | १००० वर्ष |
| ७ | खारी मिट्टी की | ११००० वर्ष |
| ८ | नमक की | १२००० वर्ष |
| ९ | ताम्बे की | १३००० वर्ष |
| १० | लोहे की | १४००० वर्ष |
| ११ | शीशे की | १४००० वर्ष |
| १२ | रूपा की | १५००० वर्ष |

| | | |
|---|---|---|
| १३ | सोने की | १६००० वर्ष |
| १४ | हरताल की | १६००० वर्ष |
| १५ | मणसील की | १६००० वर्ष |
| १६ | हिंगुल की | १७००० वर्ष |
| १७ | कंकर की | १८००० वर्ष |
| १८ | भूखरां पत्थरों की | १९००० वर्ष |
| १९ | कालमीढ पत्थरों की | २०००० वर्ष |
| २० | आरसपहाण पत्थरों की | २१००० वर्ष |
| २१ | हीरा, माणिक, मोती की | २२००० वर्ष |

**१६४) स्थावर (एकेन्द्रिय) जीवों के शरीर का आकार कैसा होता हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाउ, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों के शरीर क आकार क्रमशः मसूर, बुलबुले, सुईओं का समूह, ध्वजा एवं विविध प्रकार का होत हैं।

**१६५) एकेन्द्रिय जीवों में कितने प्राण होते हैं ?**

उ. चार प्राण – १) स्पर्शनेन्द्रिय २) काय बल प्राण ३) श्वासोच्छ्वास ४) आयुष्य

**१६६) एकेन्द्रिय जीव किस-किस गुणठाणे में होते हैं ?**

उ. अपर्याप्ता पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय के जीवों में पहला एवं दूसरा गुणठाणा पाया जाता हैं। तेउकाय एवं वायुकाय के जीवों में मात्र पहला गुणठाणा ही पाया जाता है।

**१६७) एकेन्द्रिय जीव संज्ञी होते हैं या असंज्ञी ?**

उ. एकेन्द्रिय जीव असंज्ञी ही होते हैं।

**१६८) एकेन्द्रिय जीवों में कितनी संज्ञाएँ पायी जाती हैं ?**

उ. चार संज्ञाएँ (विवक्षा से दस एवं सोलह)।

**१६९) एकेन्द्रिय जीवों में तीन योगों में से कितने योग पाये जाते हैं ?**

उ. एक मात्र काय योग ही होता हैं।

**१७०) एकेन्द्रिय जाति के २२ भेदों में से कितने भेद पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता एकेन्द्रिय के होते हैं ?**

उ. ११ भेद पर्याप्ता के एवं ११ भेद अपर्याप्ता के होते हैं।

**१७१) एकेन्द्रिय जाति के २२ भेदों में से कितने भेद सूक्ष्म-बादर के होते हैं ?**

उ. १० भेद सूक्ष्म के एवं १२ भेद बादर के होते हैं।

**१७२) एकेन्द्रिय जाति के २२ भेदों में से संमूर्च्छिम के कितने भेद होते हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय जीवों का मात्र संमूर्च्छिम जन्म ही होता हैं। उनका गर्भज जन्म नहीं होने से समस्त २२ भेद संमूर्च्छिम ही होते हैं।

**१७३) एकेन्द्रिय जाति के जीव किसमें उत्पन्न होते हैं ? (गति)**

उ. पृथ्वीकायिक, अप्कायिक एवं वनस्पतिकायिक जीव, जीव के ५६३ भेदों में से १७९ भेदों में उत्पन्न होते हैं। वे १०१ संमूर्च्छिम मनुष्यों, ३० कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता-अपर्याप्ता मनुष्यों, ४८ तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं। तेउकायिक एवं वायुकायिक जीव मात्र तिर्यंच के ४८ भेदों ही उत्पन्न होते हैं।

**१७४) एकेन्द्रिय जाति में कौनसे जीव उत्पन्न होते हैं ? (आगति)**

उ. बादर पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में ५६३ भेदों में से २४३ भेद उत्पन्न होते हैं। २४३ भेद-१०१ संमूर्च्छिम मनुष्य, १५ कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य और १५ कर्मभूमिज गर्भज अपर्याप्ता मनुष्य, ४८ तिर्यंचों के भेद, १० भवनपतिदेव, १५ परमाधामी देव, १६ वाणव्यंतर देव, १० तिर्यग्जृंभक देव, १० ज्योतिष्क, पहले-दूसरे देवलोक के देव, पहला किल्बिषिक (६४ देव-पर्याप्ता) उत्पन्न हो सकते हैं। सूक्ष्म एवं बादर तेउकाय और वायुकाय में उपरोक्त २५३ भेदों में देवों के उपरोक्त ६४ भेद छोडकर शेष १७९ भेद उत्पन्न हो सकते हैं। सूक्ष्म पृथ्वी, अप् और वनस्पति की आगति भी तेउकाय-वायुकाय की भाँति जाननी चाहिये।

**१७५) एकेन्द्रिय जीवों की कितनी योनियाँ होती हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय की सात-२ लाख योनियाँ होती हैं। प्रत्येक वनस्पतिकाय एवं साधारण वनस्पतिकाय की क्रमशः दस लाख एवं चौदह

लाख योनियाँ होती हैं। कुल मिलाकर बावन लाख योनियाँ एकेन्द्रिय जीवों की होती हैं।

**१७६) पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकायिक जीवों के सात-सात लाख योनि स्थान किस प्रकार होते हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय आदि चारों के ३५०-३५० प्रकार प्रतिपादित किये गये हैं। उन्हें दो हजार उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने पर सात लाख योनियाँ होती हैं। दो हजार उत्पत्ति स्थान निम्नांकित हैं -

पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, पांच संस्थान=

३५० X ५ X २ X ५ X ८ X ५= ७ लाख

**१७७) प्रत्येक वनस्पतिकाय और साधारण वनस्पतिकाय की योनियाँ क्रमशः दस लाख और चौदह लाख किस प्रकार होती है?**

उ. प्रत्येक वनस्पतिकाय के ५०० प्रकार कहे गये हैं। उन्हें उपरोक्त २००० उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने पर दस लाख योनियाँ होती हैं।

साधारण वनस्पतिकाय के ७०० प्रकार कहे गये हैं। उन्हें उपरोक्त २००० उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने पर चौदह लाख योनियाँ होती हैं।

**१७८) पृथ्वीकायादि के जीव एक मुहूर्त में कितने भव करते हैं ?**

उ. पृथ्वीकाय के जीव - १२८२४।

अप्काय के जीव - १२८२४।

तेउकाय के जीव - १२८२४।

वायुकाय के जीव - १२८२४।

प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव - ३२०००।

साधारण वनस्पतिकाय के जीव - ६५५३६।

## विकलेन्द्रिय विवेचन खण्ड

**१७९) पेट में उत्पन्न होने वाले जीव क्या कहलाते हैं ?**

उ. गंडुल/गंडोल/मल्हप।

**१८०) लालयक किसे कहते हैं ?**

उ. बासी रोटी, अन्न आदि में पैदा होने वाले जीव लालयक कहलाते हैं।

**१८१) द्विदल जीव किसे कहते है ?**

उ. जिस अन्न (धान) के दो बराबर भाग होते हैं, उनके साथ कच्चा दूध, दही, छाछ लेने से जिन द्वीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होती है, वे द्विदल के जीव कहलाते हैं।

**१८२) शंख किस जाति का जीव है ?**

उ. द्वीन्द्रिय।

**१८३) द्वीन्द्रिय जीवों के कुछ उदाहरण दीजिये ?**

उ. शंख, कौडी, गंडोल, जौंक, अक्ष, भूनाग, केंचुएँ, लालयक, मेहरि, कृमि पूरा, मातृवाहिका, सीप, नाहरू, द्विदल आदि द्वीन्द्रिय जाति के जीव हैं।

**१८४) द्वीन्द्रिय जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद–पर्याप्ता द्वीन्द्रिय और अपर्याप्ता द्वीन्द्रिय।

**१८५) किन त्रीन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति परमात्मा महावीर निर्वाण के पश्चात् हुई?**

उ. कुंथु।

**१८६) चर्मचूका क्या है ?**

उ. यह त्रीन्द्रिय जाति का एक जीव है। यह बालों के मूल भाग में उत्पन्न होती है और भावी संकट की सूचना देती है।

**१८७) घी में उत्पन्न होने वाले जीव क्या कहलाते हैं ?**

उ. घृतेलिका।

**१८८) त्रीन्द्रिय जीवों के कुछ उदाहरण प्रस्तुत कीजिये ?**

उ. कानखजूरा, खटमल, जूं, लीख, चींटी, दीमक, चींटा, इल्ली, घृतेलिका, चर्मयूका, गोकीट, गर्दमल, विष्टा के कीडे, कुन्थु, अनाज में पैदा होने वाले कीडे, गोपालिका, सुरसली, इन्द्रगोप इत्यादि त्रीन्द्रिय जाति के जीव हैं।

**१८९) त्रीन्द्रिय जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद– पर्याप्त त्रीन्द्रिय और अपर्याप्त त्रीन्द्रिय।

**१९०) चतुरिन्द्रिय जीवों के कुछ भेद बताईये ?**

उ. बिच्छू, ढिंकूण, भ्रमर, भ्रमरिका, टिड्डी, मक्खी–मधुमक्खी, डांस, मच्छर, कंसारिका, मकडी, डोलक, आदि चतुरिन्द्रिय जाति के जीव है।

**१९१) चतुरिन्द्रिय जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद – १) पर्याप्त चतुरिन्द्रिय २) अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय।

**१९२) द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जीवों को एक साथ पारिभाषित करने वाला शब्द कौनसा है ?**

उ. विकलेन्द्रिय।

**१९३) विकलेन्द्रिय से क्या आशय है ?**

उ. विकल–कम(न्यून), इन्द्रिय–इन्द्रियाँ। जिनके एक से अधिक और पांच से कम इन्द्रियाँ होती हैं, वे विकलेन्द्रिय कहलाते हैं।

**१९४) विकलेन्द्रिय जीवों के कितने पाँव होते हैं ?**

उ. द्वीन्द्रिय जीवों के पाँव नहीं होते हैं। त्रीन्द्रिय जीवों के चार या छह अथवा इससे आधिक भी पाँव होते हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों के छह से आठ या इससे भी अधिक पाँव होते हैं।

**१९५) विकलेन्द्रिय जाति में कितने शरीर पाये जाते हैं ?**

उ. तीन शरीर– १) औदारिक २) तैजस ३) कार्मण।

**१९६) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?**

उ. सेवार्त (छेवट्ठु) नामक एक ही संघयण पाया जाता है।

**१९७) विकलेन्द्रिय जीवों में कौनसा संस्थान पाया जाता हैं ?**

उ. हुंडक नामक एक ही संस्थान पाया जाता हैं।

**१९८) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने कषाय होते हैं ?**

उ. क्रोधादि चारों कषाय होते हैं।

**१९९) विकलेन्द्रिय जीवों में कितनी लेश्याएँ पायी जाती हैं ?**

उ. तीन लेश्या- १) कृष्ण २) नील ३) कापोत।

**२००) विकलेन्द्रिय जीवों में तीन योगों में से कितने योग होते हैं ?**

उ. दो योग – १) काय योग २) वचन योग।

**२०१) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?**

उ. छह उपयोग – १) मति अज्ञान २) श्रुत अज्ञान ३) मति ज्ञान ४) श्रुत ज्ञान ५) अचक्षु दर्शन ६) चक्षु दर्शन। द्वीन्द्रिय एवं त्रीन्द्रिय जीवों में प्रथम पांच उपयोग होते हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों में उपरोक्त छहों उपयोग पाये जाते हैं।

**२०२) विकलेन्द्रिय जीवों में कौनसा वेद होता हैं ?**

उ. नपुंसक वेद।

**२०३) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने समुद्घात होते हैं ?**

उ. तीन समुद्घात – १) वेदना २) कषाय ३) मरण।

**२०४) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?**

उ. दो दर्शन – १) सम्यक्दर्शन २) मिथ्यादर्शन।

**२०५) विकलेन्द्रिय जीवों में कितनी दृष्टियाँ होती हैं ?**

उ. हेतुवादोपदेशिकी दृष्टि ही पायी जाती है।

**२०६) एक समय में कितने विकलेन्द्रिय जीव जन्म लेते हैं ?**

उ. संख्यात अथवा असंख्यात।

**२०७) एक समय में कितने विकलेन्द्रिय जीव च्यव (मर) सकते हैं ?**

उ. संख्यात अथवा असंख्यात।

**२०८) विकलेन्द्रिय जीवों में जन्म और मरण का विरह काल कितना होता है?**

उ. जघन्य एक समय एवं उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त का विरहकाल होता है।

**२०९) विकलेन्द्रिय जीव कितने प्रकार से आहार ग्रहण करते हैं ?**

उ. तीन प्रकार से– १) ओज आहार २) लोम आहार ३) कवल आहार।

**२१०) विकलेन्द्रिय जीवों में कितनी संज्ञाएँ होती हैं ?**

उ. चार और विवक्षा से दस अथवा सोलह संज्ञाएं होती हैं।

**२११) विकलेन्द्रिय जीवों की अवगाहना कितनी होती हैं ?**

| उ. विकलेन्द्रिय | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| १) द्वीन्द्रिय जीव | अंगुल का असंख्यातवां भाग | १२ योजन |
| २) त्रीन्द्रिय जीव | अंगुल का असंख्यातवां भाग | ३ गाऊ |
| ३) चतुरिन्द्रिय जीव | अंगुल का असंख्यातवां भाग | १ योजन |

**२१२) विकलेन्द्रिय जीवों का आयुष्य द्वार समझाइये ?**

| उ. विकलेन्द्रिय | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| १) द्वीन्द्रिय | अन्तर्मुहूर्त्त | १२ वर्ष |
| २) त्रीन्द्रिय | अन्तर्मुहूर्त्त | ४९ दिवस |
| ३) चतुरिन्द्रिय | अन्तर्मुहूर्त्त | ६ मास |

**२१३) विकलेन्द्रिय जीवों की स्वकाय स्थिति बताओ ?**

उ. संख्यात वर्ष।

**२१४) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने प्राण पाये जाते हैं ?**

उ. द्वीन्द्रिय जीवों में छह प्राण–१) स्पर्शनेन्द्रिय २) रसनेन्द्रिय ३) काय बल ४) वचन बल ५) श्वासोच्छ्वास ६) आयुष्य।

त्रीन्द्रिय जीवों में उपरोक्त छह प्राणों के अतिरिक्त घ्राणेन्द्रिय प्राण सहित सात प्राण होते हैं।

चतुरिन्द्रिय जीवों में उपरोक्त सात प्राणों के अतिरिक्त चक्षुरिन्द्रिय प्राण सहित आठ प्राण होते हैं।

**२१५) विकलेन्द्रिय जीवों के कितनी योनियाँ होती हैं ?**

उ. १) द्वीन्द्रिय की – दो लाख

२) त्रीन्द्रिय की – दो लाख

३) चतुरिन्द्रिय की – दो लाख

कुल – छह लाख

**२१६) विकलेन्द्रिय जीवों के छह भेदो में से पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता के कितने- २ भेद होते हैं ?**

उ. पर्याप्ता के तीन और अपर्याप्ता के तीन भेद होते हैं।

**२१७) विकलेन्द्रिय जीवों के छह भेदों में से सूक्ष्म-बादर के कितने-कितने भेद होते हैं?**

उ. विकलेन्द्रिय सूक्ष्म नहीं होने से छहों भेद बादर ही होते हैं।

**२१८) विकलेन्द्रिय के छह भेदों में से कितने भेद गर्भज-संमूर्च्छिम और संज्ञी-असंज्ञी होते हैं ?**

उ. विकलेन्द्रिय के छहों भेद संमूर्च्छिम होने से असंज्ञी ही होते हैं। वे गर्भज और संज्ञी नहीं होते हैं।

**२१९) विकलेन्द्रिय जीवों में कौनसे गुणस्थान होते हैं ?**

उ. दो गुणस्थानक–१) मिथ्यादृष्टि २) सास्वादन।

**२२०) विकलेन्द्रिय जीव मरकर किस- २ में उत्पन्न हो सकते हैं एवं उनमें कौन-२ से जीव उत्पन्न हो सकते हैं ? (गति-आगति)**

उ. विकलेन्द्रिय १०१ संमूर्च्छिम मनुष्य, ४८ तिर्यंच, ३० कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता, इन १७९ भेदों में विकलेन्द्रिय उत्पन्न हो सकते हैं और विकलेन्द्रिय में ये जीव उत्पन्न हो सकते हैं।

**२२१) विकलेन्द्रिय जीवों को दो-दो लाख योनियाँ किस प्रकार होती हैं ?**

उ. विश्व में द्वीन्द्रिय जीवों के सौ, त्रीन्द्रिय जीवों के सौ, चतुरिन्द्रिय जीवों के सौ प्रकार हैं। उन्हें दो हजार उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने से कुल ६ लाख योनियाँ होती हैं। दो

हजार उत्पत्ति स्थान इस प्रकार हैं –

५ (वर्ण) X २ (गंध) X ५ (रस) X ८ (स्पर्श) X ५ (संस्थान) = २०००

**२२२) विकलेन्द्रिय जीव एक मुहूर्त में अधिकतम कितने भव करते हैं ?**

उ. एक मुहूर्त में द्वीन्द्रिय जीव ८० भव, त्रीन्द्रिय जीव ६० भव, चतुरिन्द्रिय जीव ४० भव अधिकतम करते हैं।

**२२३) विकलेन्द्रिय जीवों में कितने सम्यक्त्व पाये जाते हैं ?**

उ. एक मात्र सास्वादन सम्यक्त्व ही पाया जाता है।

**२२४) पंचेन्द्रिय जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चार भेद – १) मनुष्य २) देवता ३) तिर्यंच ४) नारकी।

## नरक विवेचन खण्ड

**२२५) नारकी किसे कहते हैं ?**

उ. नरकवासी जीवों को नारकी कहते हैं।

**२२६) नरक किसे कहते हैं ?**

उ. जीव के द्वारा किये गये बुरे–पापकारी कार्य, हिंसा, महारंभ आदि के कारण जो कर्मबंधन होता है, उनके परिणाम स्वरूप अतिशय दुःख भोगने के स्थान को नरक कहते हैं।

**२२७) नरक किस लोक में स्थित है ?**

उ. अधोलोक (मर्त्यलोक) में।

**२२८) नरक कितने हैं ?**

उ. सात।

**२२९) सात नरक पृथिवियों के क्या नाम हैं ?**

उ. १) रत्नप्रभा २) शर्कराप्रभा ३) वालुकाप्रभा ४) पंकप्रभा ५) धूमप्रभा ६) तमः प्रभा ७) तमस्तमःप्रभा

**२३०) सातों नरक पृथिवियों के नामकरण की विशेषता बताओ ?**

उ. प्रथम रत्नप्रभा नरक में रत्नों की, दूसरी शर्कराप्रभा नरक में कंकर की, तीसरी वालुकाप्रभा नरक में रेती/मिट्टी की, चौथी पंकप्रभा नरक में पंक/कीचड की, पांचवीं धूमप्रभा नरक में धुएं की, छट्ठी तम:प्रभा नरक में अंधकार की, सातवीं तमस्तम: प्रभा नरक में गाढे/घने अंधकार की प्रधानता/बहुलता होती है। अत: इस प्रकार नरकों का नामकरण किया गया।

**२३१) नरक के गोत्रों के नाम बताईए ?**

उ. क्रमश: सातों नरक पृथिवियों के गोत्रों के नाम १) धम्मा २) वंशा ३) शेला ४) अंजना ५) रिष्ठा ६) मघा ७) माघवती।

**२३२) सातों नरकों की लम्बाई एवं चौडाई बताईए ?**

उ. पहली नरक पृथ्वी एक राज, दूसरी नरक पृथ्वी दो राज, तीसरी नरक पृथ्वी तीन राज, चौथी नरक पृथ्वी चार राज, पांचवीं नरक पृथ्वी पांच राज, छट्ठी नरक पृथ्वी छह राज और सातवीं नरक पृथ्वी सात राज प्रमाण चौडी हैं। सातों नरकों की लम्बाई एक-एक राज प्रमाण है।

**२३३) सातों नरकों की मोटाई का प्रमाण क्या हैं ?**

| | | |
|---|---|---|
| उ. १) | प्रथम नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,८०,००० योजन |
| २) | द्वितीय नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,३२,००० योजन |
| ३) | तृतीय नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,२८,००० योजन |
| ४) | चतुर्थ नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,२०,००० योजन |
| ५) | पंचम् नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,१८,००० योजन |
| ६) | षष्ठम् नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,१६,००० योजन |
| ७) | सप्तम् नरक पृथ्वी की मोटाई – | १,०८,००० योजन |

**२३४) नारकी जीवों के रहने के स्थान को क्या कहते हैं ?**

उ. नरकावास।

**२३५) प्रत्येक नरक में कितने-२ नरकावास हैं ?**

उ. पहली नरक में तीस लाख, दूसरी नरक में पच्चीस लाख, तीसरी नरक में पन्द्रह लाख, चौथी नरक में दस लाख, पांचवीं नरक में तीन लाख, छट्ठी नरक में निन्यानवें हजार नौ सौ पिच्यानवें, सातवीं नरक में पांच नरकावास हैं। इस प्रकार सातों नरकों में कुल चौरासी लाख नरकावास हैं।

**२३६) प्रथम नरक में कौनसा नरकावास हैं ? वह कितने योजन प्रमाण का है ?**

उ. प्रथम नरक में सीमन्तक नामक नरकावास है जो पैंतालीस लाख योजन प्रमाण का है।

**२३७) सबसे बडा नरकावास कौनसा है ?**

उ. पहली नरक में स्थित सीमन्तक नामक नरकावास है।

**२३८) अप्रतिष्ठान नामक नरकावास कितने योजन प्रमाण का हैं ?**

उ. एक लाख योजन प्रमाण का।

**२३९) सातवीं में स्थित पांच नरकावासों के नाम बताओ ?**

उ. १) पूर्व दिशा में काल
२) पश्चिम दिशा में महाकाल
३) दक्षिण दिशा में रौरव (रोसक)
४) उत्तर दिशा में महारौरव (महारोसक)
५) चारों के मध्य में अप्रतिष्ठान।

**२४०) नरक और नारकी में क्या अन्तर हैं ?**

उ. कठोर पाप कर्म करने वाले जीव जिन स्थानों पर उन कर्मों का अशुभ फल भोगने के लिए पैदा होते हैं, उसे नरक कहते हैं। नरक स्थान है और उस स्थान विशेष में रहने वाले जीवों को नारकी कहा जाता है।

**२४१) पाथडा किसे कहते है ?**

उ. नरक के एक परदे (दीवार) के पश्चात् जो स्थान होता हैं, उसे प्रतर या पाथडा कहते है।

**२४२) आन्तरा किसे कहते है ?**

उ. एक प्रतर से दूसरे प्रतर के बीच जो स्थान होता है, उसे आन्तरा (अन्तर) कहते है।

छत्रातिछत्र आकारे सात नारकी नुं चित्र

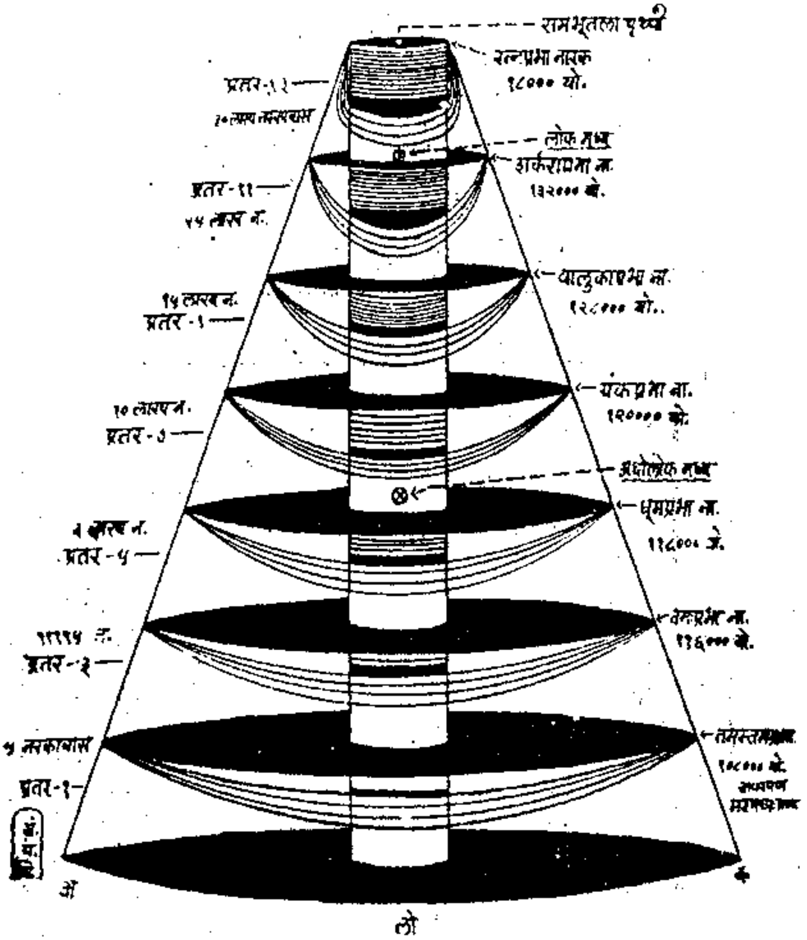


चित्र : नरक में प्रतर एवं नरकावास

**२४३) किस नरक में कितने प्रतर एव अन्तर हैं ?**

| उ. सात नरक | प्रतर | अन्तर |
|---|---|---|
| प्रथम नरक | १३ | १२ |
| दूसरी नरक | ११ | १० |
| तीसरी नरक | ९ | ८ |
| चौथी नरक | ७ | ६ |
| पांचवीं नरक | ५ | ४ |
| छट्ठी नरक | ३ | २ |
| सातवीं नरक | १ | नहीं |

**२४४) सातों नरकों के बीच-२ में क्या हैं ?**

उ. प्रथम रत्नप्रभा नरक भूमि के नीचे बीस हजार योजन तक घनोदधि है। उसके नीचे असंख्यात योजन तक घनवात है। घनवात के नीचे असंख्यात योजन तक तनवात है। तनवात के नीचे असंख्यात योजन तक आकाश है। उसके नीचे दूसरा नरक है। प्रत्येक दो नरक भूमि के बीच इसी तरह घनोदधि, घनवात, तनवात, आकाश है।

**२४५) सातवीं नरक के नीचे क्या हैं ?**

उ. सातवीं नरक के नीचे बीस हजार योजन प्रमाण तक घनोदधि है। घनोदधि के नीचे असंख्यात योजन तक घनवात है। धनवात के नीचे असंख्यात योजन तक तनवात है। तनवात के नीचे असंख्यात योजन तक लोकाकाश है और उसके नीचे अनन्त अलोकाकाश है।

**२४६) नारकी जीव कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. लम्बाई, चौडाई, आयुष्य के आधार पर नारकी जीव अनेक प्रकार के होते हैं पर दृष्टि के आधार पर नारकी जीव दो प्रकार के होते हैं – १) सम्यक्दृष्टि नारकी २) मिथ्यादृष्टि नारकी।

**२४७) सम्यक्त्वी और मिथ्यात्वी नारकी जीवों में क्या अन्तर होता हैं ?**

उ. १) सम्यक्त्वी नारकी सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धायुक्त होते हैं जबकि मिथ्यात्वी

नारकी सुदेव-सुगुरू-सुधर्म पर श्रद्धा रखने की बजाय कुदेव-कुगुरू और कुधर्म पर आस्था रखते हैं।

२) सम्यक्त्वी नारकी विवेकी एवं सम्यक्-सही दृष्टि वाले होते हैं जबकि मिथ्यात्वी नारकी अविवेकी एवं मिथ्या-गलत दृष्टि वाले होते हैं।

३) सम्यक्त्वी नारकी कर्म निर्जरा एवं पुण्योपार्जन करते हैं जब कि मिथ्यात्वी नारकी पाप कर्म का बंधन करते है।

४) सम्यक्त्वी नारकी वर्तमान में मिल रहे दुःख के लिये स्वयं को उत्तरदायी मानते हैं, स्वयं के कुकृत्यों-कुविचारों का परिणाम मानकर समता-क्षमा से दुःखों को सहन करते हैं जबकि मिथ्यात्वी नारकी क्रोध और कषायपूर्वक दुःखों को सहन करते हैं और उनके लिए सामने वाले को दोषी मानते हैं।

५) मिथ्यात्वी नारकी की श्वान जैसी वृति होती है। जिस प्रकार श्वान/कुत्ता पत्थर मारने वाले की दिशा में दौडने की बजाय पत्थर की दिशा में दौडता है। उसी प्रकार मिथ्यात्वी जीव परिस्थिति/व्यक्ति को ही दोषी ठहराते हैं। स्वयं के कर्म-प्रवृत्ति को न सुधारकर दूसरों पर क्रोध करते हैं जबकि सम्यक्त्वी नारकी की सिंह जैसी वृत्ति होती है। जिस प्रकार सिंह तीर की दिशा में न भागकर तीर चलाने वाले की दिशा में दौडता है, उसी प्रकार सम्यक्त्वी नारकी स्वयं के दुःखों के लिये स्वयं को ही दोषी मानकर पूर्व में किये गये पाप कार्यों की निंदा करते हैं।

**२४८) नरकावासों का विस्तार कैसा है ?**

उ. कोई ऋद्धिसंपन्न महान् देव तीन चुटकी बजाने जितने समय में एक लाख योजन लम्बे और एक लाख योजन चौडे जम्बूद्वीप की इक्कीस बार प्रदक्षिणा दे सकता है। इतनी महान् शक्ति वाले देव को भी एक नरकावास को पूर्ण वेग से पार करने में एक मास से यावत् छह मास का वक्त लग जाता है। सातवीं नरक के अप्रतिष्ठान नरकावास का अन्त छह माह में प्राप्त होता है। अन्य सीमन्तक आदि नरकावासों को पार करने में इससे भी ज्यादा समय लगता है।

**२४९) नरक में कितने प्रकार की वेदनाएँ होती है ?**

उ. तीन प्रकार की - १) क्षेत्र-स्वभावजन्य वेदना २) परस्परजन्य वेदना ३) परमाधामीदेव जन्य वेदना।

**२५०) क्षेत्र-स्वभावजन्य वेदना के स्वरूप को स्पष्ट कीजिये ?**

उ. १) नारकी जीव प्रतिपल खतरनाक सर्दी का अनुभव करते हैं। वहाँ इतनी ज्यादा शीतलता होती है कि उन नारकी जीवों को भयंकर शीत ऋतु में यदि हिमालय पर्वत की चोटी पर निर्वस्त्र लेटाया जाये तो भी वे आनंदपूर्वक सो जाये।

२) नरक में असह्य उष्णता होती हैं। उन नारकी जीवों को यदि मनुष्य लोक में आग के धधकते अंगारों के मध्य रखा जाये तो भी वे आनंद और सुख का अनुभव करें और निद्राधीन हो जाये।

३) नारकी जीवों को प्रतिपल इतनी ज्यादा भूख सताती हैं कि संसार के सारा भोज्य पदार्थ उन्हें दिये जाये तो भी तृप्ति का अहसास न हो पर उनको खाने के लिए नरक में अन्न का एक दाना भी प्राप्त नहीं होता हैं।

४) नारकी जीवों को इतनी ज्यादा प्यास लगती है कि संसार का सारा जल अगर उन्हें पिलाया जाये तो भी शांति की अनुभूति न हो। वे हर वक्त प्यास के कारण तडफते हैं पर पीने के लिये पानी की एक बूंद भी नसीब नहीं होती हैं।

५) नारकी जीव हर समय शोक, संताप और दुःख का अनुभव करते हैं।

६) वे परमाधामी देवों की यातनाओं से प्रतिपल भयभीत रहते हैं। वहाँ उन्हें अभय देने वाला कोई नहीं होता है।

७) वे परमाधामी देवों के वश में ही रहते हैं। कभी वे भागकर छिप जाते हैं तो परमाधामी देव तुरन्त खोजकर उन्हें मरणान्तिक उपसर्ग देते हैं।

८) उन्हें इतनी तेज खुजली आती है कि छुरे की तीक्ष्ण धार से भी शांत नहीं हो। वहाँ खुजली मिटाने का कोई उपाय नहीं होता है। खुजलाने से खुजली उत्तरोत्तर बढती जाती है।

९) हर समय वे बुखार से पीडित रहते हैं। उनका शरीर अंगारे की भाँति दहकता रहता है।

१०) नारकी जीवों के शरीर की दुर्गन्ध मृत गाय आदि के कलेवर से भी कई गुणा अधिक

होती है। उनका स्पर्श बिच्छू के डंक, अंगारा, ज्वाला से भी अधिक कष्ट देने वाला होता है।

११) नारकी जीवों की शारीरिक, संरचना अत्यन्त भयावह होती है। उनकी आकृति दिखने में बडी डरावनी होती है। उस रौद्र, खूंखार रूप को कोई देख ले तो डर के मारे थर-थर कांपने लगे। शरीर अत्यन्त कठोर होने से अस्पर्शनीय होता है।

१२) उनके रहने का स्थान भी अत्यन्त भयानक होता है। वे मल-मूत्र से भरे हुए दुर्गन्धित स्थान पर रहते हैं। चारों तरफ मांस/हड्डियों का ढेर लगा हुआ होता है। उनकी स्थिति बडी दयनीय होती है। परवश होने से वे हर वक्त डरावनी आवाज निकालते रहते हैं।

**२५१) नारकी जीव कितने स्थानों का अनुभव करते हैं ?**

उ. दस स्थानों का- १) अनिष्ट शब्द २) अनिष्ट रूप ३) अनिष्ट गंध ४) अनिष्ट रस ५) अनिष्ट स्पर्श ६) अनिष्ट गति ७) अनिष्ट स्थिति ८) अनिष्ट लावण्य ९) अनिष्ट यश १०) अनिष्ट कर्म-पराक्रम।

**२५२) किस- २ नरक में उष्ण और शीत वेदना होती है ?**

उ. पहली तीन नरकों में उष्ण वेदना, चौथी में उष्ण-शीत वेदना, पांचवीं में शीत-उष्ण वेदना और छट्ठी-सातवीं नरक में शीत वदना होती हैं। ये उत्तरोत्तर तीव्र एवं अधिक होती है।

**२५३) परस्परकृत वेदना किसे कहते हैं ?**

उ. नारकी जीवों का आपस में सिंह-बकरी और सांप-नेवला की भाँति जन्म से वैर एवं द्वेष भाव होता है। वे एक दूसरे को देखकर कुत्तों की तरह आपस में लडते हैं, काटते हैं। परमाधामी देव मल्लों की तरह उन्हें आपस में लडाते है।

**२५४) नारकी जीवों को यातना-दुःख कौनसे देव देते हैं ?**

उ. परमाधामी देव।

**२५५) परमाधामी देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. पन्द्रह भेद- १) अम्ब २) अम्बरीश ३) श्याम ४) शबल ५) रूद्र ६) उपरूद्र ७)

काल ८) महाकाल ९) असिपत्र १०) वण ११) कुंभी १२) वालुका १३) वैतरणी १४) खरस्वर १५) महाघोष

**२५६) परमाधामी देव कौनसे कार्य करते हैं ?**

उ. १) अम्ब– ये देव नारकी जीवों को पांच सौ योजन ऊपर तक आकाश में उछालते हैं और नीचे गिराते हैं।

२) अम्बरीश– तीक्ष्ण शस्त्रों से नारकी जीवों के शरीर के छोटे–२ टुकडे करते हैं।

३) श्याम– नारकी जीवों को रस्सी, लातों, घूंसों से पीटते हैं। महाकष्टकारी स्थानों में पटकते हैं।

४) शबल– नारकी जीवों के शरीर की आंतें, नसें, कलेजे आदि को बाहर निकालते हैं।

५) रौद्र– नारकी जीवों को भाले आदि में पिरोते हैं।

६) महारौद्र– नारकी जीवों के अंगोपांगों को क्षत–विक्षत करते हैं।

७) काल– नारकी जीवों को कढाई में पकाते हैं।

८) महाकाल– नारकी जीवों के मांस के टुकडे–टुकडे करते हैं। उन्हें जबरदस्ती मांस के टुकडे खिलाते हैं।

९) असिपत्र– नारकी जीवों पर असि–तलवार के समान तेज धार वाले पत्ते गिराते हैं। तिल के आकार में शरीर के छोटे–२ टुकडे करते हैं।

१०) धनुष (वण)– विक्रिया से निर्मित धनुष से बाण चलाकर नारकी जीवों के कान, नाक आदि शारीरिक अंग काट डालते हैं।

११) कुंभी– असि पत्रों के द्वारा काटे हुए नारकी जीवों को कुम्भियों में पकाते हैं।

१२) वालुका– वज्र के समान आकार वाली उष्ण रेत में नारकी जीवों को चनों की भांति भुंजते हैं।

१३) वैतरणी– रूधिर, ताम्बे, सीसे इत्यादि गर्म पदार्थों से उबलती हुई वैतरणी नदी में नारकी जीवों को फैंककर तैरने के लिये मजबूर करते हैं।

१४) खरस्वर– नारकी जीवों को शाल्मली वृक्षों के उपर चढाकर कठोर स्वर करते हुए उन्हें खींचते हैं।

१५) महाघोष– भागते हुए नारकी जीवों को पशुओं की भाँति चार दीवारी में बंद कर देते हैं।

**२५७) किस-२ नरक में कौनसी वेदना होती हैं ?**

उ. प्रथम तीन नरकों में परमाधामी देव जन्य वेदना, सातों नरकों में परस्परजन्य वेदना एवं क्षेत्रजन्य वेदना होती है।

**२५८) नारकी जीवों का जन्म किसमें होता हैं ?**

उ. नारकी जीवों का जन्म कुंभी में होता है जिसका मुँह संकडा एवं पेट चौडा होता है।

**२५९) नारकी जीव कब-कब सुख का अनुभव करते हैं ?**

उ. १) तीर्थंकर परमात्मा के पांचों कल्याणकों के शुभ अवसर पर नारकी जीव कुछ समय के लिये सुख का अनुभव करते हैं।

२) अल्पकाल के लिये शाता वेदनीय कर्म के उदय से भी नारकी जीव शांति का अहसास करते हैं।

३) किसी मित्र देव की सहायता से भी कुछ पलों के लिए सुख प्राप्त करता है पर वह भी तीसरी नरक तक ही हो सकता है।

४) तीर्थंकर आदि महापुरुषों के स्मरण, वंदन के समय शुभ अध्यवसाय होने से अल्पकालीन सुखानुभूति होती है।

**२६०) तीर्थंकर परमात्मा के पांचों कल्याणकों के अवसर पर नरक में कैसा प्रकाश होता हैं ?**

उ. पहली नरक के सूर्य जैसा, दूसरी नरक में मेघाच्छादित सूर्य जैसा, तीसरी नरक में चन्द्र जैसा, चौथी नरक में मेघाच्छादित चन्द्र जैसा, पांचवीं नरक में ग्रह जैसा, छट्ठी नरक में नक्षत्र जैसा, सातवीं नरक में तारे जैसा अल्पकालीन प्रकाश होता हैं।

**२६१) नारकी जीवों के कितने शरीर होते हैं ?**

उ. तीन प्रकार – १) वैक्रिय शरीर २) तैजस शरीर ३) कार्मण शरीर।

**२६२) नारकी जीवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का अधिकतम काल कितना होता है?**

उ. एक अन्तर्मुहूर्त ।

**२६३) नारकी के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट रूप से एक हजार धनुष प्रमाण में उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना होती है । प्रत्येक नारकी की जितनी अवगाहना है, उससे दुगुनी उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना जाननी चाहिये ।

**२६४) नारकी जीवों के कौनसा संघयण होता है ?**

उ. नारकी जीव संघयण रहित होते हैं ।

**२६५) नारकी जीवों के कौनसा संस्थान होता है ?**

उ. हुंडक संस्थान ।

**२६६) नारकी जीव कितने कषायों से युक्त होते हैं ?**

उ. क्रोध, मान, माया, लोभ रूपी चारों कषायों से युक्त होते हैं ।

**२६७) नरक में कितनी लेश्याएँ होती हैं?**

उ. १) प्रथम दोनों नरकों में कापोत लेश्या होती हैं । प्रथम नरक की अपेक्षा दूसरी नरक में ज्यादा मलिन होती हैं ।

२) तीसरी नरक में कापोत एवं नील दोनों लेश्याएँ होती हैं ।

३) चौथी नरक में मात्र नील लेश्या ही होती है जो कि तीसरी नरक की अपेक्षा अधिक अशुद्ध होती हैं ।

४) पांचवीं नरक में नील एवं कृष्ण लेश्याएँ होती हैं । नील लेश्या चौथी नरक की अपेक्षा ज्यादा मलिन होती है ।

५) छट्ठी एवं सातवीं नरक में कृष्ण लेश्या होती है । पाचवीं नरक की अपेक्षा छट्ठी में ज्यादा विकृत और छट्ठी नरक की अपेक्षा सातवीं नरक में ज्यादा विकृत होती है।

**२६८) तीसरी नरक में दो लेश्याएँ क्यों कही गयी ?**

उ. तीसरी नरक के जिन नारकी जीवों का आयुष्य तीन सागरोपम और पल्योपम असंख्यातवां भाग जितना अधिक होता है । उनके कापोत लेश्या होती है । उससे अधिक आयुष्य वाले तीसरी नरक के नारकी के नील लेश्या होती है ।

**६९) पांचवीं नरक में दो लेश्याएँ क्यों कही गयी ?**

. जिन नारकी जीवों का आयुष्य दस सागरोपम एवं पल्योपम का असंख्यातवां भाग जितना अधिक होता है, उनके नील लेश्या होती है एवं उससे अधिक आयुष्य वाले पांचवीं नरक के नारकी के कृष्ण लेश्या होती है।

**७०) नरक में कितने उपयोग होते हैं ?**

. नरक में नव उपयोग होते हैं। सम्यक्त्वी नारकी जीवों में मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधि दर्शन रूप छह उपयोग होते हैं। मिथ्यात्वी नारकी जीवों में मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन एवं विभंगदर्शन रूप छह उपयोग होते हैं।

**७१) नारकी जीवों के कौनसा अवधिज्ञान होता है ?**

. भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान।

**७२) नारकी जीवों के कितना अवधिज्ञान होता है ?**

| नरक में | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| पहली नरक में | ३.५ कोस | ४ कोस |
| दूसरी नरक में | ३ कोस | ३.५ कोस |
| तीसरी नरक में | २.५ कोस | ३ कोस |
| चौथी नरक में | २ कोस | २.५ कोस |
| पांचवीं नरक में | १.५ कोस | २ कोस |
| छट्ठी नरक में | १ कोस | १.५ कोस |
| सातवीं नरक में | ०.५ कोस | १ कोस |

**७३) नरक में कितने वेद होते हैं ?**

. मात्र नपुंसक वेद ही होता है।

**७४) नरक में कितने समुद्घात होते हैं ?**

. चार समुद्घात– १) वेदना २) कषाय ३) मरण ४) वैक्रिय।

**२७५) नरक में कितने दर्शन होते हैं ?**

उ. तीन दर्शन– १) सम्यक्दर्शन २) मिश्र दर्शन ३) मिथ्या दर्शन।

**२७६) नरक में कितनी दृष्टियाँ होती हैं ?**

उ. दो दृष्टियाँ होती हैं– १) दीर्घकालिकी दृष्टि २) दृष्टिवादोपदेशिकी दृष्टि।

**२७७) नारकी जीवों के कितनी पर्याप्तियाँ होती हैं ?**

उ. छह पर्याप्तियाँ– १) आहार २) शरीर ३) इन्द्रिय ४) श्वासोच्छ्वास ५) भाषा ६) मन।

**२७८) एक समय में जघन्य एवं उत्कृष्ट से कितने नारकी जीव उत्पन्न होते हैं?**

उ. जघन्य से एक, दो, तीन एवं उत्कृष्ट से संख्य–असंख्य नारकी जीव जन्म लेते हैं।

**२७९) एक समय में जघन्य एवं उत्कृष्ट कितने नारकी जीव च्यव (मर) सकते हैं ?**

उ. जघन्य से एक, दो, तीन एवं उत्कृष्ट से संख्य–असंख्य नारकी जीव च्यव सकते हैं।

**२८०) नारकी जीवों के कौनसा जन्म होता हैं ?**

उ. औपपातिक जन्म।

**२८१) नरक में जघन्य एवं उत्कृष्ट रूप से जन्म एवं मृत्यु में कितने काल का विरह होता है ?**

उ. सातों नरकों में उपपात (जन्म) एवं च्यवन (मृत्यु) में विरह काल –

| नरक | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| प्रहली नरक | १ समय | २४ मुहूर्त्त |
| दूसरी नरक | १ समय | ७ दिन |
| तीसरी नरक | १ समय | १५ दिन |
| चौथी नरक | १ समय | १ मास |
| पांचवीं नरक | १ समय | २ मास |
| छट्ठी नरक | १ समय | ४ मास |
| सातवीं नरक | १ समय | ६ मास |

**२८२) नारकी जीवों में कितनी संज्ञाएँ होती हैं ?**

उ. चार संज्ञाएँ होती हैं। विवक्षा से दस एवं सोलह संज्ञाएँ भी होती हैं।

**२८३) नारकी जीवों में कितने गुणठाणें पाये जाते हैं ?**

उ. प्रथम चार गुणठाणें – १) मिथ्यादृष्टि २) सास्वादन ३) मिश्रदृष्टि ४) अविरत सम्यक्दृष्टि।

**२८४) नारकी जीवों में कितने सम्यक्त्व पाये जाते हैं ?**

उ. तीन सम्यक्त्व– १) औपशमिक २) क्षायोपशमिक ३) क्षायिक।

**२८५) नरक में भव्य जीव जाता हैं ?**

उ. नरक में भव्य एवं अभव्य दोनों जीव जाते हैं।

**२८६) नारकी जीव असंज्ञी अवस्था में मृत्यु को प्राप्त कर सकते हैं ?**

उ. लब्धि पर्याप्त नारकी जीव असंज्ञी अवस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वे हमेशा संज्ञी अवस्था में ही मरते हैं।

**२८७) नारकी जीव कितने प्रकार से आहार ग्रहण करते हैं ?**

उ. दो प्रकार– १) ओज आहार २) लोम आहार।

**२८८) नारकी जीवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती हैं ?**

उ.

| | | |
|---|---|---|
| प्रथम नरक | ७ धनुष | ७८ अंगुल |
| द्वितीय नरक | १५ धनुष | ६० अंगुल |
| तृतीय नरक | ३१ धनुष | २४ अंगुल |
| चतुर्थ नरक | ६२ धनुष | ४८ अंगुल |
| पंचम नरक | १२५ धनुष | – |
| षष्ठम नरक | २५० धनुष | – |
| सप्तम नरक | ५०० धनुष | – |

उपरोक्त पर्याप्त नारकी जीवों की अवगाहना है। अपर्याप्त नारकी जीवों की जघन्य एवं उत्कृष्ट रूप से अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी ऊँचाई होती है।

**२८९) नारकी जीवों का आयुष्य कितना होता हैं ?**

| उ. पर्याप्ता नारकी | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| पहली नरक | १०,००० वर्ष | १ सागरोपम |
| दूसरी नरक | १ सागरोपम | ३ सागरोपम |
| तीसरी नरक | ३ सागरोपम | ७ सागरोपम |
| चौथी नरक | ७ सागरोपम | १० सागरोपम |
| पांचवीं नरक | १० सागरोपम | १७ सागरोपम |
| छट्ठी नरक | १७ सागरोपम | २२ सागरोपम |
| सातवीं नरक | २२ सागरोपम | ३३ सागरोपम |

अपर्याप्ता नारकी का जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का होता हैं।

**२९०) क्या नारकी जीव मरकर पुनः नरक में उत्पन्न हो सकता है ?**

उ. नारकी जीव मरकर पुनः नरक में नहीं जा सकता हैं। बीच में मनुष्य या तिर्यंच का भव करके ही नरक में जा सकता है।

**२९१) नारकी जीवों में कितने प्राण होते हैं ?**

उ. दसों ही प्राण होते हैं।

**२९२) नारकी जीवों की कितनी योनियाँ होती हैं ?**

उ. चार लाख योनियाँ।

**२९३) नरक में चार लाख योनियाँ किस प्रकार होती हैं ?**

उ. २०० प्रकार के नारकी जीव होते हैं। उन्हें २००० उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने पर कुल चार लाख योनियाँ होती हैं।

**२९४) नरक आयुष्य बंध के कारण बताईए ?**

उ. प्रमुख चार कारण १) महारंभ करना २) महापरिग्रह रखना ३) परस्त्री/वेश्या गमन एवं शील का हरण करना ४) पंचेन्द्रिय प्राणी का वध एवं मांसाहार का सेवन करना। अन्य कारण– १) रात्रि भोजन २) अनन्तकाय भक्षण ३) मद्य पान, शहद का सेवन ४) तीव्र क्रोध आदि कषाय करना ५) रौद्र ध्यान ६) पाप कार्य में रूचि आदि।

**२९५) नरक में कौन-२ जाते हैं ?**

उ. संख्याता वर्ष आयुष्य वाले पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं तिर्यंच ही मरकर नरक में जाते हैं।

**२९६) प्रथम नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. जघन्य दस हजार वर्ष तथा उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की आयुष्य वाले संमूर्च्छिम तिर्यंच प्राणी।

**२९७) दूसरी नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. गर्भज भुजपरिसर्प।

**२९८) तीसरी नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. गर्भज खेचर।

**२९९) चौथी नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. गर्भज चतुष्पद।

**३००) पांचवीं नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. गर्भज उरपरिसर्प।

**३०१) छट्ठी नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. स्त्री।

**३०२) सातवीं नरक तक कौन-२ जाते हैं ?**

उ. गर्भज मनुष्य एवं गर्भज जलचर।

**३०३) कौन-२ मरकर नियमतः नरक में ही जाते हैं ?**

उ. वासुदेव एवं प्रतिवासुदेव मरकर नरक में ही जाते हैं। चक्रवर्ती दीक्षा न ले तो ७ वीं नरक में ही जाता है।

**३०४) सातवीं नरक का जीव नियमतः किस गति में जाता हैं ?**

उ. तिर्यंच गति में।

**३०५) नरक से आने वाले जीव क्या-क्या हो सकते हैं ?**

उ. १) प्रथम नरक से आने वाला जीव ही चक्रवर्ती हो सकता हैं, शेष नरकों से नहीं।

२) प्रथम दो नरकों से आने वाला जीव ही वासुदेव या बलदेव हो सकता है, शेष नरकों

से नहीं।

३) प्रथम तीन नरकों से आने वाला जीव ही तीर्थंकर हो सकता है, शेष नरकों से नहीं।

४) प्रथम चार नरकों से आने वाला जीव ही केवली हो सकता है, शेष नरकों से नहीं।

५) प्रथम पांच नरकों से आने वाला जीव ही साधु हो सकता है, शेष नरकों से नहीं।

६) प्रथम छह नरकों से आने वाला जीव ही श्रावक हो सकता है, शेष नरक से नहीं।

७) सातों ही नरकों से आने वाला जीव सम्यक्त्वी हो सकता है।

**३०६) नारकी जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. सातों नरक के नारकी जीव पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता दोनों होते हैं, अत: नारकी जीवों के से कुल चौदह भेद होते हैं।

**३०७) नारकी जीवों की कैसी आयु होती है ?**

उ. निरूपक्रमी।

**३०८) नारकी असंज्ञी होते हैं अथवा नहीं ?**

उ. नारकी अपर्याप्त अवस्था में ही असंज्ञी होते हैं। पर्याप्तियाँ पूर्ण कर लेने के बाद नियमत: संज्ञी ही होते हैं।

**३०९) नारकी अपर्याप्त अवस्था में मरते हैं या नहीं ?**

उ. नारकी जीवों की मृत्यु हमेशा पर्याप्त अवस्था में ही होती हैं।

**३१०) प्रथम छह नरक के नारकी कहाँ-कहाँ उत्पन्न हो सकते हैं ?**

उ. प्रथम छह नरक के नारकी पंचेन्द्रिय जाति में ही उत्पन्न होते हैं। पंचेन्द्रिय में भी मनुष्य एवं तिर्यंच गति में ही उत्पन्न होते हैं। अर्थात् एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देवलोक एवं नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं।

**३११) प्रथम नरक से सातवीं नरक तक की गति एवं आगति बताओ ?**

| उ. नरक | गति | आगति |
|---|---|---|
| प्रथम नरक | ४० भेद–१५ कर्मभूमिज मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच (पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता) | २५ भेद–१५ कर्मभूमिज मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच प. पर्याप्ता एवं ५ असंज्ञी तिर्यंच प. अपर्याप्ता |

| | | |
|---|---|---|
| दूसरी नरक | ४० भेद–१५ कर्मभूमिज मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच (पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता) | २० भेद–१५ कर्मभूमिज मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच पर्याप्ता |
| तीसरी नरक | ४० भेद–१५ कर्मभूमिज मनुष्य ५ संज्ञी तिर्यंच (पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता) | संज्ञी भुजपरिसर्प के अलावा १९ भेद पूर्ववत् |
| चौथी नरक | ४० भेद (प्रथम नरक के समान) | संज्ञी खेचर एवं संज्ञी भुज–परिसर्प के अलावा १८ भेद पूर्ववत् |
| पांचवीं नरक | ४० भेद (प्रथम नरक के समान) | चौथी नरक के १८ भेदों में से संज्ञी चतुष्पद स्लथचर कम = १७ भेद |
| छट्ठी नरक | ४० भेद (प्रथम नरक के समान) | पांचवीं नरक के १७ भेदों में से संज्ञी उरपरिसर्प कम =१६ भेद |
| सातवीं नरक | १० भेद– पांच संज्ञी तिर्यंच पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता | १५ कर्मभूमिज मनुष्य और संज्ञी जलचर = १६ भेद |

**३१२) किन कारणों से नारकी मनुष्य लोक में नहीं आ सकते हैं ?**

उ. चार कारणों से – १) अत्यधिक दु:ख होने से २) नरकपाल के रोकने से ३) नरकायु के समाप्त नहीं होने से ४) नरक–कर्मों का क्षय नहीं होने से।

**३१३) समकित युक्त जीव कितनी नरक में जा सकता हैं ?**

उ. प्रथम छह नरकों में जीव समकित सहित जा सकता है। सातवीं नरक में समकित का वमन करके अर्थात् मिथ्या दर्शन सहित ही जाता है।

**३१४) पहले वज्रऋषभनाराच संघयण वाला किस नरक तक जा सकता हैं ?**

उ. सातवीं नरक तक।

**३१५) दूसरे ऋषभनाराच संघयण वाला किस नरक तक जा सकता है ?**

उ. छट्ठी नरक तक।

**३१६) तीसरे नाराच संघयण वाला किस नरक तक जा सकता हैं ?**

उ. पांचवीं नरक तक।

**३१७) चौथे अर्द्धनाराच संघयण वाला किस नरक तक जा सकता हैं ?**

उ. चौथी नरक तक।

**३१८) पांचवें कीलिका संघयण वाला किस नरक तक जा सकता हैं ?**

उ. तीसरी नरक तक।

**३१९) छट्ठे छेवट्ठु संघयण वाला किस नरक तक जा सकता हैं ?**

उ. दूसरी नरक तक।

**३२०) वर्तमान में जीव किस नरक तक जा सकता है ?**

उ. वर्तमान में जीव छेवट्ठु संघयण होने से दूसरी नरक तक जा सकता है।

**३२१) प्रथम नरक के कितने (काण्ड) हिस्से हैं ?**

उ. तीन काण्ड– १) सबसे उपर खरकाण्ड नामक प्रचुर रत्नों से युक्त है जिसकी मोटाई सोलह हजार योजन हैं।

२) पहले काण्ड के नीचे दूसरा पंकबहुल नामक काण्ड है जो चौरासी हजार योजन मोटाई वाला है।

३) तीसरा काण्ड जलबहुल है जिसकी मोटाई अस्सी हजार योजन है। अन्य छह नरकों में इस प्रकार के काण्ड नहीं है।

## पंचेन्द्रिय तिर्यंच विवेचन खण्ड

**३२२) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. तीन भेद – १) जलचर २) स्थलचर ३) खेचर।

**३२३) जलचर किसे कहते हैं ?**

उ. जल में रहने वाले जीवों को जलचर कहते हैं।

**३२४) स्थलचर किसे कहते हैं ?**

उ. जमीन/भूमि पर रहने वाले जीवों को स्थलचर कहते हैं।

**३२५) खेचर किसे कहते हैं ?**

उ. आकाश में उडने वाले जीवों को खेचर कहते हैं।

**३२६) जलचर जीवों के कुछ उदाहरण दीजिये ?**

उ. सूंस, कछुआ, घडीयाल, मछली, मगरमच्छ आदि जल में रहने वाले जीव हैं।

**३२७) शास्त्रों में कितने आकार के जलचर प्राणी बताये गये हैं ?**

उ. चूडी एवं नलिया के अतिरिक्त समस्त आकारों में जलचर प्राणी होते हैं।

**३२८) स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. तीन भेद– १) उरपरिसर्प २) भुजपरिसर्प ३) चतुष्पद।

**३२९) उरपरिसर्प किसे कहते हैं ?**

उ. पेट/उदर के बल पर चलने वाले प्राणियों को उरपरिसर्प कहते हैं।

**३३०) भुजपरिसर्प किसे कहते हैं ?**

उ. भुजाओं/हाथों के बल पर चलने वाले प्राणियों को भुजपरिसर्प कहते हैं।

**३३१) चतुष्पद किसे कहते हैं ?**

उ. चार पाँव वाले प्राणियों को चतुष्पद कहते हैं।

**३३२) उरपरिसर्प प्राणियों के कुछ उदाहरण दीजिये ?**

उ. सांप, अजगर आदि।

**३३३) भुजपरिसर्प प्राणियों के कुछ उदाहरण दीजिये ?**

उ. चूहा, बंदर, लंगूर, छिपकली, चन्दनगोह आदि।

**३३४) चतुष्पद प्राणियों के कुछ उदाहरण दीयिये ?**

उ. हाथी, घोडा, गधा, बैल, गाय, कुत्ता, बकरी, बिल्ली, जिराफ आदि।

**३३५) खेचर प्राणियों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चार भेद– १) रोमज पक्षी २) चर्मज पक्षी ३) समुद्ग पक्षी ४) वितत पक्षी।

**३३६) रोमज पक्षी किसे कहते हैं ?**

उ. रोम से बने हुए पंखों वाले खेचर प्राणियों को रोमज पक्षी कहते हैं। जैसे कबूतर, तोता, सारस, हंस, चिडिया, कौआ, गरूड, मोर आदि।

**३३७) चर्मज पक्षी किसे कहते हैं ?**

उ. चमडे से बने हुए कठोर पंखों वाले खेचर प्राणियों को चर्मज पक्षी कहते हैं। जैसे चमगादड, बादुर आदि।

**३३८) समुद्ग पक्षी किसे कहते हैं ?**

उ. वे पक्षी, जिनके पंख उडते समय भी बंद/सिकुडे हुए ही रहते हैं, खुलते नहीं हैं, वे समुद्ग पक्षी कहलाते हैं। जैसे हंस, कलहंस आदि।

**३३९) वितत पक्षी किसे कहते हैं ?**

उ. वे पक्षी, जिनके पंख बैठते समय भी खुले ही रहते हैं, बंद नहीं होते हैं, वे वितत पक्षी कहलाते हैं।

**३४०) ढाई द्वीप में कौन-२ से पक्षी पाये जाते हैं ?**

उ. रोमज पक्षी एवं चर्मज पक्षी।

**३४१) ढाई द्वीप के बाहर कौन-२ से पक्षी पाये जाते हैं ?**

उ. समुद्ग पक्षी एवं वितत पक्षी।

**३४२) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?**

उ. चार शरीर– १) औदारिक २) वैक्रिय ३) तैजस ४) कार्मण।

**३४३) पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उत्तर वैक्रिय शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. ९०० योजन।

**३४४) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के उतर वैक्रिय शरीर (विकुर्वणा) का काल कितना होता हैं ?**

उ. उत्कृष्ट चार मुहूर्त्त और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त।

**३४५) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने संघयण पाये जाते हैं ?**

उ. छह संघयण– १) वज्रऋषभनाराच २) ऋषभनाराच ३) नाराच ४) अर्द्धनाराच ५) कीलिका ६) सेवार्त्त।

**३४६) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने संस्थान पाये जाते हैं ?**

उ. छह संस्थान – १) समचतुरस्र २) न्यग्रोध परिमंडल ३) सादि ४) वामन ५) कुब्ज ६) हुंडक।

**३४७) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने कषाय पाये जाते हैं ?**

उ. क्रोधादि चारों कषाय पाय जाते हैं।

**३४८) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितनी लेश्याएँ पाई जाती हैं ?**

उ. छह लेश्या– १) कृष्ण २) नील ३) कापोत ४) तेजो ५) पद्म ६) शुक्ल।

**३४९) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने योग पाये जाते हैं ?**

उ. तीन योग– १) मन २) वचन ३) काय।

**३५०) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?**

उ. नौ उपयोग– १) मतिज्ञान २) श्रुतज्ञान ३) अवधिज्ञान ४) मति अज्ञान ५) श्रुत अज्ञान ६) अवधि अज्ञान (विभंगज्ञान) ७) चक्षुदर्शन ८) अचक्षुदर्शन ९) अवधि-दर्शन (विभंगदर्शन)।

**३५१) पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवधिज्ञान के द्वारा कितना देखता है ?**

उ. जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग एवं उत्कृष्ट रूप से असंख्यात द्वीप समुद्र।

**३५२) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने वेद पाये जाते हैं ?**

उ. तीन वेद – १) पुरूषवेद २) स्त्री वेद ३) नपुंसक वेद। ये तीनों वेद मात्र गर्भज तिर्यंच जीवों में ही होते हैं। संमूर्च्छिम तिर्यंच नपुंसक वेद वाले होते हैं।

**३५३) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?**

उ. पांच समुद्घात– १) वेदना २) कषाय ३) मरण ४) वैक्रिय ५) तैजस।

**३५४) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?**

उ. तीन दर्शन– १) मिथ्या २) मिश्र ३) सम्यक्।

**३५५) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितने सम्यक्त्व पाये जाते हैं ?**

उ. तीन सम्यक्त्व– १) सास्वादन २) औपशामिक ३) क्षायोपशमिक।

**३५६) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कौनसा संयम पाया जाता है ?**

उ. देशविरति।

**३५७) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?**

उ. दो दृष्टियाँ– १) दीर्घकालिकी २) दृष्टिवादोपदेशिकी।

**३५८) एक समय में कितने पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव च्यव (मर) सकते हैं ?**

उ. संख्यात अथवा असंख्यात।

**३५९) एक समय में कितने पंचेन्द्रिय जीव उत्पन्न हो सकते हैं ?**

उ. संख्यात अथवा असंख्यात।

**३६०) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में जन्म और च्यवन विरह काल कितना होता हैं?**

उ. असंज्ञी संमूर्च्छिम तिर्यंचों का उत्कृष्ट विरहकाल अन्तर्मुहूर्त्त एवं संज्ञी गर्भज तिर्यंचों का उत्कृष्ट विरह काल बारह मुहूर्त्त का होता है। दोनों का जघन्य विरह काल एक समय का होता है।

**३६१) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की अवगाहना कितनी होती हैं ?**

| उ. | पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|---|
| १) | संमूर्च्छिम जलचर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | एक हजार योजन |
| २) | गर्भज जलचर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | एक हजार योजन |
| ३) | संमूर्च्छिम चतुष्पद | अंगुल का असंख्यातवां भाग | दो से नौ कोस |
| ४) | गर्भज चतुष्पद | अंगुल का असंख्यातवां भाग | छह कोस |
| ५) | संमूर्च्छिम उरपरिसर्प | अंगुल का असंख्यातवां भाग | दो से नौ योजन |
| ६) | गर्भज उरपरिसर्प | अंगुल का असंख्यातवां भाग | एक हजार योजन |
| ७) | संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प | अंगुल का असंख्यातवां भाग | दो से नौ धनुष्य |
| ८) | गर्भज भुजपरिसर्प | अंगुल का असंख्यातवां भाग | दो से नौ कोस |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ९) | संमूर्च्छिम खेचर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | दो से नौ धनुष्य |
| १०) | गर्भज खेचर | अंगुल का असंख्यातवां भाग | दो से नौ धनुष्य |

पंचेन्द्रिय अपर्याप्ता गर्भज एवं संमूर्च्छिम तिर्यंचों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

**३६२) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों का आयुष्य कितना होता हैं ?**

| उ. | पंचेन्द्रिय तिर्यंच | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|---|
| १) | संमूर्च्छिम जलचर | अन्तर्मुहूर्त्त | करोड पूर्व |
| २) | गर्भज जलचर | अन्तर्मुहूर्त्त | करोड पूर्व |
| ३) | संमूर्च्छिम चतुष्पद | अन्तर्मुहूर्त्त | चौरासी हजार वर्ष |
| ४) | गर्भज चतुष्पद | अन्तर्मुहूर्त्त | तीन पल्योपम |
| ५) | संमूर्च्छिम उरपरिसर्प | अन्तर्मुहूर्त्त | तिरपन हजार वर्ष |
| ६) | गर्भज उरपरिसर्प | अन्तर्मुहूर्त्त | करोड पूर्व |
| ७) | संमूर्च्छिम भुजपरिसर्प | अन्तर्मुहूर्त्त | बयालीस हजार वर्ष |
| ८) | गर्भज भुजपरिसर्प | अन्तर्मुहूर्त्त | करोड पूर्व |
| ९) | संमूर्च्छिम खेचर | अन्तर्मुहूर्त्त | बहत्तर हजार वर्ष |
| १०) | गर्भज खेचर | अन्तर्मुहूर्त्त | पल्योपम का असंख्यातवां भाग |

**३६३) पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की स्वकाय स्थिति कितनी होती हैं ?**

उ. सात या आठ भव।

**३६४) पंचेन्द्रिय तिर्यंच में कितने प्राण पाये जाते हैं ?**

उ. संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों में पांच इन्द्रियाँ (स्पर्श–रसन–घ्राण–चक्षु–श्रोत), दो बल (वचन–काय बल), श्वासोच्छ्वास और आयुष्य रूप नौ प्राण पाये जाते हैं और गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में इन नव प्राणों के अतिरिक्त दसवां मनोबल प्राण भी पाया जाता हैं।

**३६५) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों की कितनी योनियाँ होती हैं ?**

उ. चार लाख योनियाँ।

**३६६) पंचेन्द्रिय तिर्यंच की चार लाख योनियाँ किस प्रकार होती हैं ?**

उ. पंचेन्द्रिय तिर्यंच के २०० मूल भेद होते हैं जिन्हें २००० उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने पर ४ लाख योनियाँ होती हैं।

**३६७) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव कितने गुणठाणों में पाये जाते हैं ?**

उ. पांच गुणठाणों में – १) मिथ्यादृष्टि २) सास्वादन ३) मिश्र दृष्टि ४) अविरत सम्यक् दृष्टि ५) देशविरति।

**३६८) जलचर जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. जलचर जीवों के संमूर्च्छिम एवं गर्भज रूप दो भेद होते हैं। ये दोनों पर्याप्ता–अपर्याप्ता की अपेक्षा से कुल चार भेद होते हैं।

**३६९) स्थलचर तिर्यंच जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. चतुष्पद, उरपरिसर्प एवं भुजपरिसर्प के संमूर्च्छिम एवं गर्भज की अपेक्षा छह भेद होते हैं। ये छह भेद पर्याप्ता और अपर्याप्ता की अपेक्षा से कुल बारह भेद होते हैं।

**३७०) खेचर तिर्यंच जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. संमूर्च्छिम एवं गर्भज दोनों पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता होने से कुल चार भेद होते हैं।

**३७१) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के कुल कितने भेद होते हैं ?**

उ. बीस भेद।

**३७२) असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की गति-आगति बताओ ?**

उ. १७९ आगति–१०१ संमूर्च्छिम मनुष्य, ३० कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता, ४८ तिर्यंच प्राणी।

३९५ गति–उपरोक्त १७९ भेदों के अतिरिक्त ५६ अन्तर्द्वीप के मनुष्य १० भवनपति, १५ परमाधामी, ८ व्यंतर, ८ वाणव्यंतर, १० तिर्यग्जृंभक, प्रथम नरक के नारकी, ये १०८ भेद पर्याप्ता–अपर्याप्ता की अपेक्षा से २१६ हुए। कुल ३९५ भेद हुए।

**३७३) पांच संज्ञी तिर्यंच प्राणियों की आगति बताओ ?**

उ. असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की आगति के १७९ भेदों के अतिरिक्त १० भवनपति, १५ परमाधामी, ८ व्यंतर, ८ वाणव्यंतर, १० तिर्यग्जृंभक, १०ज्योतिष्क, ८ वैमानिक,

९ लोकांतिक, ७ नारकी, ३ किल्बिषिक, इन देवों के पर्याप्ता ८८ भेदों में आगति होने से कुल २६७ में आगति होती हैं।

**३७४) पांच संज्ञी तिर्यंच पचेन्द्रिय की गति बताओ ?**

उ.

| संज्ञी तिर्यंच प्राणी | गति भेद | विवरण |
|---|---|---|
| जलचर | ५२७ | नौवें देवलोक से अनुत्तर तक के १८ देवों के अपर्याप्ता–पर्याप्ता के ३६ भेद कम करने से (५६३–३६=५२७) |
| उरपरिसर्प | ५२३ | ६–७ नरक के नारकी के अपर्याप्ता–पर्याप्ता के चार भेद कम करके शेष पूर्ववत् (५२७–४=५२३) |
| स्थलचर | ५२१ | ५२३ भेदों में से पाचवीं नरक के पर्याप्ता–अपर्याप्ता नारकी के दो भेद कम करने से (५२३–२=५२१) |
| खेचर | ५१९ | ५२१ भेदों में से चौथी नरक के पर्याप्ता–अपर्याप्ता नारकी के दो भेद कम करने से (५२१–२=५१९) |
| भुजपरिसर्प | ५१७ | ५१९ भेदों में से तीसरी नरक के पर्याप्ता–अपर्याप्ता नारकी के दो भेद कम करने से (५१९–२=५१७) |

**३७५) तिर्यंच से तिर्यंचनी कितने गुणा ज्यादा है ?**

उ. ३ गुणा के उपर ३ अधिक है।

**३७६) असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच एक मुहूर्त में उत्कृष्ट कितने भव करता है ?**

उ. २४ भव

**३७७) पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीवों के बीस भेदों में से गर्भज-संमूर्च्छिम के कितने-२ भेद होते हैं ?**

उ. दस भेद संमूर्च्छिम के और दस भेद गर्भज के होते हैं।

**३७८) पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के बीस भेदों में से पर्याप्ता-अपर्याप्ता के कितने भेद होते हैं?**

उ. दस भेद पर्याप्ता के और दस भेद अपर्याप्ता के होते हैं।

# मनुष्य विवेचन खण्ड

**३७९) मनुष्यों के मुख्य कितने भेद होते हैं ?**

उ. तीन भेद – १) कर्मभूमिज २) अकर्मभूमिज ३) अन्तर्द्वीपज।

**३८०) कर्मभूमि किसे कहते है ?**

उ. जिस भूमि में असि–मसि और कृषि का कार्य होता है, उसे कर्मभूमि कहते है।

चित्र : कर्मभूमि एवं अकर्मभूमि

**३८१) असि-मसि और कृषि से क्या तात्पर्य है ?**

उ. १) असि – अस्त्र, शस्त्रादि का कार्य।

२) मसि – पठन, लेखन का कार्य।

३) कृषि – खेती, व्यापार का कार्य।

**३८२) अकर्मभूमि किसे कहते हैं ?**

उ. जिस भूमि में असि–मसि–कृषि का कार्य नहीं होता है, उसे अकर्मभूमि कहते हैं।

**३८३) अन्तर्द्वीप किसे कहते है ?**

उ. जिसके चारों तरफ जल हो, उसे अन्तर्द्वीप कहते है।

**३८४) कर्मभूमियों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. पन्द्रह भेद– १) पांच भरत २) पांच महाविदेह ३) पांच ऐरावत।

**३८५) अकर्मभूमियों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. तीस भेद– १) पांच हिमवन्त २) पांच हिरण्यवंत ३) पांच हरिवर्ष ४) पांच रम्यक् ५) पांच देवकुरू ६) पांच उत्तरकुरू।

**३८६) अन्तर्द्वीप कितने हैं ?**

उ. छप्पन।

**३८७) छप्पन अन्तर्द्वीपों के नाम बताओ ?**

उ.

| | | | |
|---|---|---|---|
| १) एकोरूक | ८) शष्कुलीकर्ण | १५) हरिमुख | २२) मेघमुख |
| २) अभासिक | ९) आदर्शमुख | १६) व्याघ्रमुख | २३) विद्युन्मुख |
| ३) वैषाणिक | १०) मेण्ढ्रमुख | १७) आसकर्ण | २४) विद्युद्दन्त |
| ४) लांगूलिक | ११) अयोमुख | १८) हरिकर्ण | २५) घणदंत |
| ५) हयकर्ण | १२) गोमुख | १९) हस्तिकर्ण | २६) लष्टदन्त |
| ६) गजकर्ण | १३) हयमुख | २०) कर्णप्रावरण | २७) गुढदंत |
| ७) गोकर्ण | १४) गजमुख | २१) उल्कामुख | २८) सुद्धदन्त |

**३८८) छप्पन अन्तर्द्वीप कहाँ पर स्थित हैं ?**

उ. भरत क्षेत्र की उत्तर दिशा में हिमवन्त नामक पर्वत है और ऐरावत क्षेत्र की उत्तर दिशा में शिखरी नामक पर्वत है। दोनों पर्वत पूर्व एवं पश्चिम दिशा में लवण समुद्र तक फैले हुए हैं। दोनों पूर्व एवं दोनों पश्चिम दिशाओं (प्रत्येक दिशा) में दो-दो दंष्ट्राकार भूमियाँ है। इस प्रकार कुल आठ दंष्ट्राकार भूमियाँ हुई। प्रत्येक दंष्ट्रा में सात-सात अन्तर्द्वीप स्थित हैं। इस प्रकार कुल छप्पन अन्तर्द्वीप हुए। भरत क्षेत्र की उत्तर दिशा में जो अट्ठाबीस अन्तर्द्वीप हैं, उसी नाम के अट्ठावीस अन्तर्द्वीप ऐरावत क्षेत्र की उत्तर दिशा में स्थित हैं।

**३८९) मनुष्य गति में कितने शरीर पाये जाते हैं ?**

उ. पांच शरीर- १) औदारिक २) वैक्रिय ३) आहारक ४) तैजस ५) कार्मण।

**३९०) मनुष्यों के उत्तर वैक्रिय शरीर की जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट साधिक एक लाख योजन।

**३९१) मनुष्य के उत्तर वैक्रिय शरीर का काल कितना होता है ?**

उ. चार मुहूर्त्त।

**३१२) आहारक शरीर कौनसे संस्थान वाला जीव ही बना सकता है ?**

उ. समचतुरस्र संस्थान।

**३१३) आहारक शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. जघन्य एक हाथ से कुछ कम एवं उत्कृष्ट अवगाहना संपूर्ण एक हाथ की होती है।

**३१४) आहार शरीर का निर्माण संसार चक्र में कितनी बार हो सकता है ?**

उ. चार बार।

**३१५) आहारक शरीर का निर्माण एक भव में कितनी बार हो सकता हैं ?**

उ. अधिकतम दो बार हो सकता है।

**३१६) मनुष्य की अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. अ) पांच भरत एवं पांच ऐरावत कर्मभूमियों में अवसर्पिणी काल में उत्कृष्ट अवगाहना

१) पहले आरे में – ३ गाऊ

२) दूसरे आरे में – २ गाऊ

३) तीसरे आरे में – १ गाऊ

४) चौथे आरे में – ५०० धनुष्य

५) पांचवें आरे में – ७ हाथ

६) छट्ठे आरे में – २ हाथ

आ) पांच भरत-ऐरावत कर्मभूमियों के मनुष्यों की उत्सर्पिणी काल में उत्कृष्ट अवगाहना

१) पहले आरे में – २ हाथ

२) दूसरे आरे में – ७ हाथ

३) तीसरे आरे में – ५०० धनुष्य

४) चौथे आरे में – १ गाऊ

५) पांचवें आरे में – २ गाऊ

६) छट्ठे आरे में – ३ गाऊ

इ) पांच महाविदेह क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना ५०० सौ धनुष्य प्रमाण की होती है।

ई) पांच देवकुरु एवं पाच उत्तरकुरू के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना तीन गाऊ की होती है।

उ) पांच हरिवर्ष एवं पांच रम्यक् क्षेत्र के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना दो गाऊ की होती है।

ऊ) पांच हिमवन्त एवं पांच हिरण्यवंत के मनुष्यों की उत्कृष्ट अगवाहना एक गाऊ की होती है।

ए) छप्पन अन्तर्द्वीप के मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना आठ सौ धनुष्य की होती है। ये सारी अवगहाना गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों की कही गयी है।

ऐ) गर्भज अपर्याप्ता मनुष्यों की, संमूर्च्छिम मनुष्यों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

**१९७) गर्भज एवं संमूर्च्छिम मनुष्यों में कितनी लेश्याएँ पायी जाती हैं ?**

:. गर्भज मनुष्यों में छहों लेश्याएँ पायी जाती हैं जबकि संमूर्च्छिम मनुष्यों में कृष्ण, नील, कापोत रूप तीन लेश्याएँ ही पायी जाती हैं।

**१९८) मनुष्य गति में कितने संघयण पाये जाते हैं ?**

. छह संघयण – १) वज्रऋषभनाराच २) ऋषभनाराच ३) नाराच ४) अर्द्धनाराच ५) कीलिका ६) छेवट्ठ। अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में मात्र पहला संघयण ही होता है।

**१९९) मनुष्य गति मे कितने संस्थान पाये जाते हैं ?**

. छह संस्थान– १) समचतुरस्र २) न्यग्रोध परिमंडल ३) सादि ४) वामन ५) कुब्ज ६) हुंडक। अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में मात्र पहला संस्थान ही होता है। संमूर्च्छिम मनुष्यों में हुण्डक संस्थान ही होता है।

**००) मनुष्य गति में कितने कषाय पाये जाते हैं ?**

. क्रोधादि चारों ही कषाय पाये जाते हैं।

**४०१) मनुष्य गति में कितनी लेश्याएँ पायी जाती हैं ?**

उ. मनुष्य गति छहों लेश्याएँ पायी जाती हैं। कर्मभूमिज मनुष्यों में छहों लेश्या पायी जाती है और अकर्मभूमिज–अन्तर्द्वीपज मनुष्यों मे पद्म और शुक्ल के अलावा चार लेश्याएँ पायी जाती हैं।

**४०२) मनुष्य गति में कितने योग पाये जाते हैं ?**

उ. मनुष्य गति में मन, वचन एवं काय रूप तीनों योग पाये जाते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्यों में मात्र काय योग ही होता है। गर्भज अपर्याप्ता में काय और वचन योग पाये जाते हैं। गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों में तीनों योग पाये जाते हैं।

**४०३) मनुष्य गति में कितने वेद पाये जाते हैं ?**

उ. मनुष्य गति में तीनों वेद पाये जाते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्य नपुंसक ही होते हैं। अकर्मभूमि एवं अन्तर्द्वीप के गर्भज मनुष्यों में पुरूष और स्त्री वेद पाये जाते हैं। कर्मभूमि के मनुष्यों में स्त्री, पुरूष और नपुंसक तीनों वेद पाये जाते हैं।

**४०४) मनुष्य गति में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?**

उ. मनुष्य गति में कर्मभूमिज मनुष्यों में सम्यक्, मिश्र और मिथ्या रूप तीनों दर्शन होते हैं। अन्तर्द्वीप के मनुष्यों में मात्र मिथ्यादर्शन ही होता है। अकर्मभूमिज मनुष्यों में सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन पाया जाता है।

**४०५) मनुष्य गति में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?**

उ. अकर्मभूमिज, कर्मभूमिज मनुष्यों में दीर्घकालिकी एवं दृष्टिवादोपदेशिकी दृष्टियाँ होती हैं। अन्तर्द्वीप के मनुष्यों के मात्र दीर्घकालिकी दृष्टि होती हैं।

**४०६) मनुष्य गति में कितने आहार पाये जाते हैं ?**

उ. कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज तीनों मनुष्यों में तीनों आहार पाये जाते हैं।

**४०७) मनुष्य गति में उपपात (जन्म) एवं च्यवन (मृत्यु) द्वार बताईये ?**

उ. एक समय में संख्यात गर्भज मनुष्य जन्म ले सकते हैं एवं मृत्यु को प्राप्त कर सकते हैं। एक समय में असंख्यात संमूर्च्छिम मनुष्य जन्म एवं मृत्यु को प्राप्त कर सकते हैं।

**४०८) मनुष्य गति में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?**

उ. कर्मभूमिज मनुष्यों में सात समुद्‌घात पाये जाते हैं। अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में वेदना, कषाय एवं मरण समुद्‌घात ही पाये जाते हैं।

**४०९) आदमी से औरत कितने गुणा ज्यादा हैं ?**

उ. ३ गुणा और उपर ३ ज्यादा हैं।

**४१०) मनुष्य गति में स्वकाय स्थिति कितनी होती है ?**

उ. मनुष्यों की स्वकायस्थिति सात या आठ भव की होती है।

**४११) मनुष्य गति में स्वकाय स्थिति सात या आठ भव क्यों कही गयी ?**

उ. आठवां भव मात्र युगलिक मनुष्यों का ही होता है। जिस गर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य ने सातवें भव में असंख्यात वर्ष का आयुष्य बांधा है, वह मनुष्य ही आठवां भव पंचेन्द्रिय मनुष्य का कर सकता है। यदि असंख्यात वर्ष का आयुष्य नहीं बांधा है तो वह देव, तिर्यंच और नारकी भव करके ही मनुष्य बन सकता है, अन्यथा नहीं। यही बात पंचेन्द्रिय तिर्यंच के संदर्भ में भी जाननी चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच का आठवां भव असंख्यात वर्षायु वाला ही हो सकता है। संख्यात वर्षायु बंध वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणी बीच में देव, नारकी या मनुष्य का जन्म धारण करके ही पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच बन सकता है।

**४१२) पंचेन्द्रिय मनुष्य या तिर्यंच का आठवां भव युगलिक मनुष्य या तिर्यंच का ही क्यों कहा गया ?**

उ. पंचेन्द्रिय मनुष्य और तिर्यंच की आठवें भव में असंख्यात वर्षायु होनी अनिवार्य है और युगलिक मनुष्यों और तिर्यंचों का ही असंख्यात वर्ष का आयुष्य होता हैं। अन्य किसी का भी नहीं होता है।

**४१३) खेचर एवं चतुष्पद के अतिरिक्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का आठवां भव क्यों नहीं कहा गया ?**

उ. आठवें भव में असंख्यात वर्षायु की अनिवार्य आवश्यकता है जो कि खेचर एवं चतुष्पद युगलिक प्राणियों का ही हो सकता है। खेचर एवं चतुष्पद के अलावा जलचर, उरपरिसर्प एवं भुजपरिसर्प प्राणियों की असंख्यात वर्ष की आयु नहीं होती

है। इस कारण वे ७ वें भव के बाद ८ वां भव देव, तिर्यंच या नारकी का ही करते हैं।

**४१४) मनुष्य गति में कितने प्राण पाये जाते हैं ?**

उ. मनुष्य गति में दसों प्राण पाये जाते हैं। संमूर्च्छिम मनुष्यों में वचन बल एवं मन बल के अतिरिक्त आठ प्राण पाये जाते हैं। गर्भज अपर्याप्ता मनुष्यों में मन बल रहित नव प्राण पाये जाते हैं। गर्भज पर्याप्ता मनुष्य दस प्राण धारक होते हैं।

**४१५) मनुष्य गति में कितनी योनियाँ पायी जाती हैं ?**

उ. चौदह लाख योनियाँ।

**४१६) मनुष्यों में चौदह लाख योनियाँ किस प्रकार होती हैं ?**

उ. मनुष्यों के ७०० प्रकार हैं जिन्हें २००० उत्पत्ति स्थानों से गुणित करने पर चौदह लाख योनियाँ होती हैं।

**४१७) मनुष्यों का आयुष्य कितना होता है ?**

उ. १) संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का होता है।

२) गर्भज अपर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का होता है।

३) पांच हिमवन्त एवं पांच हैरण्यवंत के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट एक पल्योपम का आयुष्य होता है।

४) पांच हरिवर्ष एवं पांच रम्यक् के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट दो पल्योपम का आयुष्य होता है।

५) पांच देवकुरू एवं पांच उत्तरकुरू के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट तीन पल्योपम का आयुष्य होता है।

६) छप्पन्न अन्तर्द्वीप के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त एवं उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितना आयुष्य होता है।

७) पांच महाविदेह के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों का जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त तथा उत्कृष्ट पूर्व करोड वर्ष का आयुष्य होता है।

८) भरत–ऐरावत के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों की अवसर्पिणी काल में आयु

| | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| १) पहले आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | तीन पल्योपम |
| २) दूसरे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | दो पल्योपम |
| ३) तीसरे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | एक पल्योपम |
| ४) चौथे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | संख्याता वर्ष |
| ५) पांचवें आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | साधिक सौ वर्ष |
| ६) छट्ठे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | बीस वर्ष |

२) भरत–ऐरावत क्षेत्र के गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों की उत्सर्पिणी काल में आयु

| | जघन्य | उत्कृष्ट |
|---|---|---|
| १) पहले आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | बीस वर्ष |
| २) दूसरे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | साधिक सौ वर्ष |
| ३) तीसरे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | संख्याता वर्ष |
| ४) चौथे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | एक पल्योपम |
| ५) पांचवें आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | दो पल्योपम |
| ६) छट्ठे आरे में | अन्तर्मुहूर्त्त | तीन पल्योपम |

**३१८) मनुष्य गति में कितनी संज्ञाएँ पायी जाती हैं ?**

उ. चार संज्ञाएँ पायी जाती हैं। विवक्षा भेद से दस एवं सोलह संज्ञाएँ पायी जाती हैं।

**३१९) मनुष्य गति में जन्म एवं मृत्यु विरहकाल कितना होता है ?**

उ. गर्भज मनुष्यों का उत्कृष्ट विरहकाल बारह मुहूर्त्त एवं जघन्य विरहकाल एक समय का होता है। संमूर्च्छिम मनुष्यों का उत्कृष्ट विरहकाल २५ मुहूर्त्त का एवं जघन्य एक समय का होता है।

**३२०) भव्य और अभव्य मनुष्य किस–२ भूमि में पाये जाते हैं ?**

उ. कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज, तीनों में भव्य और अभव्य मनुष्य पाये जाते हैं।

**४२१) मनुष्यों के कुल कितने भेद होते हैं ?**

उ. पन्द्रह कर्मभूमियों, तीस अकर्मभूमियों एवं छपन्न अन्तर्द्वीपों के मनुष्यों का कुल योगफल एक सौ एक हुआ। ये १०१ भेद गर्भज अपर्याप्ता, गर्भज पर्याप्ता और संमूर्च्छिम अपर्याप्ता की अपेक्षा से गिनने पर कुल ३०३ भेद हुए।

**४२२) मनुष्यों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?**

उ. कर्मभूमिज मनुष्यों में पांच ज्ञान, तीन अज्ञान एवं चार दर्शन रूप बारह उपयोग पाये जाते हैं। अन्तर्द्वीपज मनुष्यों में मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन रूप चार उपयोग पाये जाते हैं। अकर्मभूमिज मनुष्यों मे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन रूप छह उपयोग होते हैं।

**४२३) मनुष्य अवधिज्ञान के द्वारा कितना क्षेत्र देखता है ?**

उ. जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट रूप से अलोक में लोक प्रमाण असंख्यात खण्ड देखता है।

**४२४) युगलिकों के शवों को समुद्र में कौन डालता हैं ?**

उ. भारण्ड पक्षी।

**४२५) असंज्ञी मनुष्यों की गति-आगति बताओ ?**

उ. १७९ में गति–१०१ संमूर्च्छिम मनुष्य, कर्मभूमिज ३० गर्भज पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता मनुष्य, ४८ तिर्यंच। इन १७९ भेदों में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न हो सकते हैं।

आगति–उपरोक्त १७९ भेदों में से तेउकाय एवं वायुकाय के आठ भेदों को छोडकर शेष १७१ भेद संमूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न हो सकते हैं।

**४२६) पन्द्रह कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्यों की गति-आगति बताओ ?**

उ. कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्य समस्त ५६३ भेदों में उत्पन्न हो सकते हैं।

२७६ भेदों में आगति–१०१ संमूर्च्छिम मनुष्य, कर्मभूमिज ३० गर्भज पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता मनुष्य, तेउकाय एवं वायुकाय के आठ भेद छोडकर तिर्यंच के ४० भेद, देवों के ९९ पर्याप्ता भेद, प्रथम छह नरक के पर्याप्ता नारकी के छह भेद।

**४२७) ३० अकर्मभूमिज मनुष्यों की गति बताओ ?**

उ. १) उत्तरकुरू और देवकुरू की १२८ में गति– १५ परमाधामी, १० भवनपति, ८ व्यंतर, ८ वाणव्यंतर, १० तिर्यग्जृंभक, १० ज्योतिष्क, पहला–दूसरा देवलोक, पहला किल्बिषिक– ये ६४ भेद पर्याप्ता–अपर्याप्ता की अपेक्षा से १२८ हुए

२) हरिवर्ष एवं रम्यक् क्षेत्र के मनुष्यों की पूर्वोक्त १२८ में गति ।

३) हिमवंत एवं हिरण्यवंत के मनुष्यों की १२६ में गति–पूर्वोक्त १२८ भेदों में से दूसरे देवलोक के दो भेदों को छोडकर।

**४२८) तीस अकर्मभूमिज के संज्ञी मनुष्यों की आगति बताओ ?**

उ. २० भेदों में आगति–१५ कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय ।

**४२९) अंतर्द्वीप के मनुष्यों की गति-आगति बताओ ?**

उ. २५ भेदों में आगति–१५ कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच, ५ असंज्ञी तिर्यंच। १०२ भेदों में गति– १० भवनपति, १५ परमाधामी, ८ व्यंतर, ८ वाणव्यंतर, १० तिर्यग्जृंभक, ये ५१ भेद पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता पर्याप्त की अपेक्षा से १०२ भेद हुए।

## देव विवेचन खण्ड

**४३०) देवताओं के प्रमुख भेद कौन-२ से हैं ?**

उ. चार भेद– १) भवनपति देव २) व्यंतर देव ३) ज्योतिष्क देव ४) वैमानिक देव।

**४३१) भवनपति देवों के दस भेद कौनसे हैं ?**

उ. भवनपति देवों के दस भेद – १) असुरकुमार २) नागकुमार ३) विद्युत्कुमार ४) सुपर्णकुमार ५) अग्निकुमार ६) वातकुमार ७) स्तनितकुमार ८) उदधिकुमार ९) द्वीपकुमार १०) दिक्कुमार

**४३२) दस भवनपति देवों के मुकुट में किस-किसका चिन्ह होता हैं ?**

उ. असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार के मुकुटों मे क्रमशः चूडामणि, नाग, वज्र, गरूड, घट, अश्व, वर्धमान संकोरासंपुट, मकर, सिंह और हस्ति का

चिन्ह होता है। ये चिन्ह उनके आभूषणों में होते हैं।

**४३३) भवनपति से बारह देवलाकों में दस प्रकार के कौनसे देव होते हैं?**

उ. १) इन्द्र– सामानिक आदि समस्त देवों का स्वामी इन्द्र कहलाता है।

२) सामानिक– आयु में समान होने से पिता आदि की तरह पूज्य होते हैं परन्तु इन्द्रत्व नहीं होता।

३) त्रायस्त्रिंश– मंत्री या पुरोहित का काम करने वाले।

४) पारिषाद्य– मित्र का काम करने वाले।

५) आत्मरक्षक– शस्त्र धारण करके रक्षा करने के लिए साथ रहने वाले।

६) लोकपाल– सीमा के रक्षक।

७) अनीक– सेनापति और सैनिक।

८) प्रकीर्णक– नगरवासी या जनता के समान।

९) आभियोग्य– सेवक और दास।

१०) किल्विषिक– अन्त्यज के समान।

**४३४) भवनपति देव किसे कहते हैं?**

उ. प्रथम रत्नप्रभा नरक पृथ्वी की एक लाख अस्सी हजार योजन की जो मोटाई हैं, उसके उपर के हजार योजन और नीचे के हजार योजन छोडकर बीच के एक लाख अट्ठहत्तर हजार (१,७८,०००) योजन में स्थित भवनों एवं आवास स्थलों में रहने वाले देव भवतपति कहलाते हैं। आवास बडे मण्डप जैसे और भवन नगर के समान होते हैं। भवनपति देव दिखने में सुंदर होते हैं, सुकुमार एवं मनोहर होते हैं। मृदु, धीमी, मधुर चाल वाले एवं क्रीडाशील होते हैं, इसलिये इन्हें कुमार कहा जाता है। भवन बाहर से गोलाकार एवं भीतर से समचतुष्कोणिय होते हैं। नीचे से कमल की कर्णिका के आकार के होते हैं। ये शृंगार–प्रसाधनार्थ विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ करते रहते हैं।

**४३५) भवनपति में असुरकुमार आदि दस देवों के मुख्य दो-दो इन्द्र कौन-२ हैं?**

सात राज प्रमाण ऊर्ध्वलोक

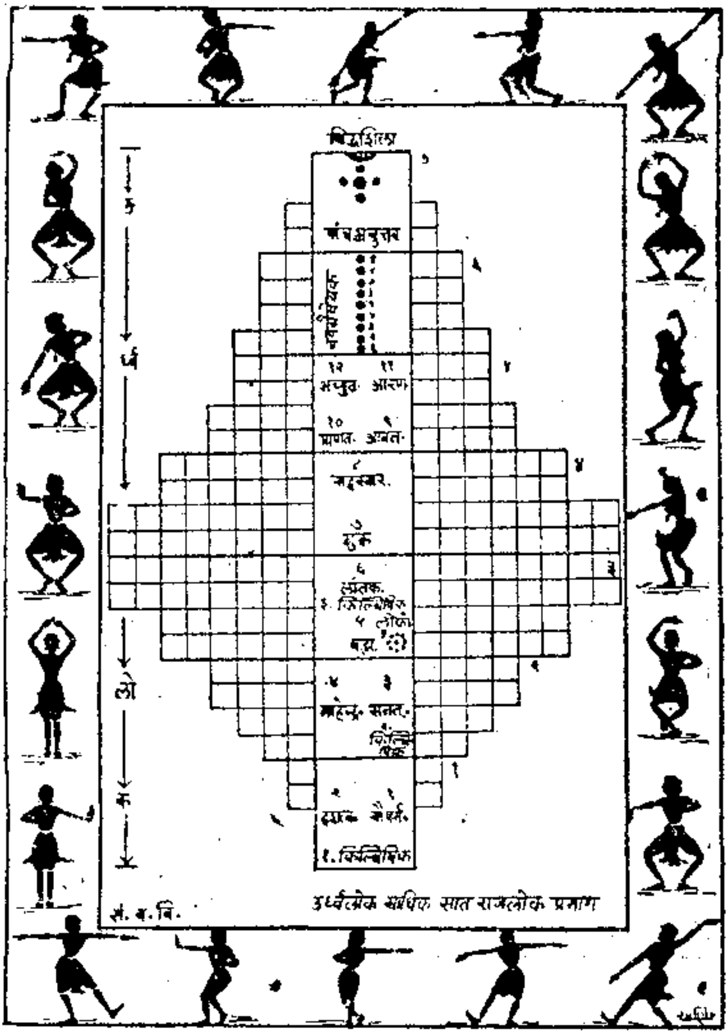


चित्र : उर्ध्वलोक में स्थित देवविमान

उ. असुरकुमार आदि दसों में दो–२ इन्द्र हैं, वे इस प्रकार हैं–

१) असुरकुमार– चमरेन्द्र एवं बलीन्द्र

२) नागकुमार– धरणेन्द्र एवं भूतानंदेन्द्र

३) विद्युत्कुमार – हरिकांतेन्द्र एवं हरिस्सेन्द्र

४) सुपर्णकुमार– वेणुदेवेन्द्र एवं वेणुदालीन्द्र

५) अग्निकुमार– अग्निशिखेन्द्र एवं अग्निमानवेन्द्र

६) वायुकुमार– वेलंबेन्द्र एवं प्रभंजनेन्द्र

७) स्तनितकुमार– घोषेन्द्र एवं महाघोषेन्द्र

८) उदधिकुमार – जलकांतेन्द्र एवं जलप्रभेन्द्र

९) द्वीपकुमार– पूर्णेन्द्र एवं विशिष्टेन्द्र

१०) दिक्कुमार – अमितगतीन्द्र एवं अमितवाहनेन्द्र

**४३६) असुरकुमार आदि देवों के जो दो-२ मुख्य इन्द्र हैं, उनके कितने एवं कौनसे लोकपाल हैं ?**

उ. असुरकुमार आदि दसों भवनपति में स्थित प्रत्येक इन्द्र के चार–चार लोकपाल हैं जो एक–२ दिशा के अधिपति हैं।

| भवनपति | पूर्व दिशा | दक्षिण दिशा | पश्चिम दिशा | उत्तर दिशा |
|---|---|---|---|---|
| १) असुरकुमार | सोम | यम | वरूण | वैश्रमण |
| २) नागकुमार | कालवाल | कोलवाल | शैलपाल | शंखपाल |
| ३) विद्युत्कुमार | हरिसह | प्रभ | सुप्रभ | प्रभाकान्त |
| ४) सुपर्णकुमार | वेणुदालि | चित्र | विचित्र | चित्रपक्ष |
| ५) अग्निकुमार | अग्निभाणव | तेज | तेजसिंह | तेजस्कान्त |
| ६) वायुकुमार | प्रभंजन | काल | महाकाल | अंजन |
| ७) स्तनितकुमार | महाघोष | आवर्त्त | व्यावर्त्त | नंद्यावर्त |
| ८) उदधिकुमार | जलप्रभ | जल | जलरूप | जलकान्त |
| ९) द्वीपकुमार | विशिष्ट | रूप | रूपाश | रूपकान्त |

१०) दिक्कुमार अमितवाहन तूर्यगति क्षिपगति सिंहगति

उपरोक्त असुरकुमार आदि में स्थित उत्तरदिशाधिपति इन्द्र के लोकपाल हैं, इसी नाम के चार-२ लोकपाल दक्षिणदिशाधिपति इन्द्र के संदर्भ में जानने चाहिये।

दो इन्द्राधिपति और उनके चार-चार लोकपाल प्रत्येक भवनपति में होते हैं।

**४३७) व्यंतर देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. आठ भेद- १) किन्नर २) किंपुरूष ३) महोरग ४) गान्धर्व ५) यक्ष ६) राक्षस ७) भूत ८) पिशाच।

**४३८) किन्नर नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दस भेद- १) किन्नर २) किंपुरूष ३) किंपुरूषोत्तम ४) किन्नरोत्तम ५) हृदयंगम ६) रूपाशाली ७) अनिन्दित ८) मनोरम ९) रतिप्रिय १०) रतिश्रेष्ठ।

**४३९) किंपुरूष नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दस भेद- १) पुरूष २) सत्पुरूष ३) महापुरूष ४) पुरूषवृषभ ५) पुरूषोत्तम ६) अतिपुरूष ७) मरूदेव ८) मरूत ९) मेरूप्रभ १०) यशस्वान्।

**४४०) महोरग नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दस भेद- १) भुजंग २) भोगशाली ३) महाकाव्य ४) अतिकाय ५) स्कन्धशाली ६) मनोरम ७) महावेग ८) महेष्वक्ष ९) मरूकान्त १०) भास्वान्।

**४४१) गान्धर्व नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. बारह भेद- १) हाहा २) हूहू ३) तुम्बुरव ४) नारद ५) ऋषिवादिक ६) भूतवादिक ७) कादम्ब ८) महाकादम्ब ९) रैवत १०) विश्वावसु ११) गीतरति १२) गीतयश।

**४४२) यक्ष नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. तेरह भेद- १) पूर्णभद्र २) मणिभद्र ३) श्वेतभद्र ४) हरिभद्र ५) सुमनोभद्र ६) व्यतिपातिकभद्र ७) सुभद्र ८) सर्वतोभद्र ९) मनुष्ययक्ष १०) वनाधिपति ११) वनाहार १२) रूपयक्ष १३) यक्षोत्तम।

**४४३) राक्षस नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. सात भेद- १) भीम २) महाभीम ३) विघ्न ४) विनायक ५) जलराक्षस ६) राक्षस

७) ब्रह्मराक्षस।

**४४४) भूत नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. नौ भेद– १) सुरूप २) प्रतिरूप ३) अतिरूप ४) भूतोत्तम ५) स्कन्दिक ६) महास्कन्दिक ७) महावेग ८) प्रतिच्छन्न ९) आकाशग।

**४४५) पिशाच नामक व्यंतर देव के कितने भेद होते हैं ?**

उ. पन्द्रह भेद– १) कूष्माण्ड २) पटक ३) जोष ४) आह्नक ५) काल ६) महाकाल ७) चौक्ष ८) अचौक्ष ९) तालपिशाच १०) मुखरपिशाच ११) अधस्तारक १२) देह १३) महाविदेह १४) तूष्णीक १५) वनपिशाच।

**४४६) वाणव्यतंर देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. आठ भेद– १) अणपन्नी २) पणपन्नी ३) इसीवादी ४) भूतवादी ५) कंदित ६) महाकंदित ७) कोहंड ८) पतंग।

**४४७) व्यंतर देवों के इन्द्रों के क्या नाम हैं ?**

उ. प्रत्येक व्यंतर देव के दो–दो इन्द्र हैं जो इस प्रकार है:–

| व्यंतर देव | दक्षिण दिशा का इन्द्र | उत्तर दिशा का इन्द्र |
|---|---|---|
| १) किन्नर | किन्नर | किंपुरूष |
| २) किंपुरुष | सत्पुरूष | महापुरूष |
| ३) महोरग | अतिकाय | महाकाय |
| ४) गांधर्व | गीतरति | गीतयश |
| ५) यक्ष | पूर्णभद्र | मणिभद्र |
| ६) राक्षस | भीम | महाभीम |
| ७) भूत | सुरूप | प्रतिरूप |
| ८) पिशाच | काल | महाकाल |

**४४८) वाणव्यंतर देवों के इन्द्र का क्या नाम है ?**

उ. प्रत्येक वाणव्यंतर देव के दो–दो इन्द्र हैं जो इस प्रकार हैं–

| वाणव्यंतर देव | दक्षिण दिशा का इन्द्र | उत्तर दिशा का इन्द्र |
|---|---|---|
| १) अणपन्नी | सन्निहित | सामान्य |
| २) पणपन्नी | धाता | विधाता |
| ३) इसीवादी | ऋषि | ऋषिपाल |
| ४) भूतवादी | ईश्वर | माहेश्वर |
| ५) कंदित | सुवत्स | विशाल |
| ६) महाकंदित | हास्य | रति |
| ७) कोहण्ड | श्वेत | महाश्वेत |
| ८) पतंग | पतंग | पतंगपति |

**४४९) व्यन्तर देव किसे कहते है ?**

उ. भवनपति देवों के भवनों के उपर छोडे गये हजार योजन में से उपर तथा नीचे के सौ-सौ योजन छोडकर शेष आठ सौ योजन में रहने वाले देवों को व्यंतर देव कहते हैं। उपर के छोड गये सौ योजन के उपर-नीचे के दस-दस योजन के अतिरिक्त अस्सी योजन में वाणव्यंतर देव रहते हैं।

पहाडों, गुफाओं एवं वनों के अन्तरों में रहने के कारण इन्हे व्यंतर एवं वाणव्यंतर कहते हैं।

**४५०) व्यंतर देवों के चिन्ह क्या होते हैं ?**

उ. आठ व्यंतर देवों के आभूषण इत्यादि में चिन्ह होते हैं जो क्रमशः अशोक, चम्पक, नाग, तुम्बरु, वट, खट्वांग, सुलस और कटम्बक है। इनमें से खट्वांग के अतिरिक्त सात चित्न्ह वृक्ष जाति हैं। खट्वांग नामक उपकरण तापसों के होता है।

**४५१) वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक किस निकाय के देव हैं ?**

उ. व्यंतर निकाय के।

**४५२) तिर्यग्जृंभक देव किसे कहते हैं एवं उनके क्या-२ कार्य हैं ?**

उ. अपनी इच्छानुसार स्वतन्त्र प्रवृत्ति करने वाले एवं निरन्तर क्रीडा में आसक्त रहने वाले तिर्यग्जृंभक देव कहलाते हैं। ये तिर्च्छा लोक में रहने के कारण तिर्यग्जृंभक देव के

रूप में प्रसिद्ध हैं।

ये देव जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, उसे धन–संपत्ति से परिपूर्ण कर देते हैं और जिस पर कुपित हो जाते हैं, उसे दुःखी करते हैं। घाटा पहुँचाते हैं। इनके दस भेद हैं :–

१) अन्नजृंभक देव– अन्न के परिमाण को घटाना–बढाना एवं सरस–नीरस बनाना।

२) पानजृंभक देव– पानी को घटाना–बढाना।

३) वस्त्रजृंभक देव– वस्त्रों को घटाना–बढाना।

४) लेणजृंभक देव– घर, मकान, महल की रक्षा करना।

५) पुष्पजृंभक देव– फूलों की रक्षा करना।

६) फलजृंभक देव– फलों की रक्षा करना।

७) पुष्पफलजृंभक देव– पुष्पों एवं फलों की रक्षा करना।

८) शयनजृंभक देव– शय्या की रक्षा करना।

९) विद्याजृंभक देव– विद्याओं की रक्षा करना।

१०) अवियतजृंभक देव– समस्त पदार्थों की रक्षा करना।

**४५३) ज्योतिष्क देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. पांच भेद– १) सूर्य २) चन्द्र ३) ग्रह ४) नक्षत्र ५) तारा।

**४५४) चर ज्योतिष्क किसे कहते हैं ?**

उ. जो ज्योतिष्क विमान मेरू पर्वत के चारों तरफ भ्रमण करते हैं, यहाँ–वहाँ घूमते हैं, जिनका पीत वर्ण परिवर्तित होता रहता है, उनको चर ज्योतिष्क कहते हैं। मनुष्य लोक में स्थित ज्योतिष्क विमान चर ज्योतिष्क कहलाते हैं।

**४५५) अचर ज्योतिष्क किसे कहते हैं ?**

उ. मनुष्य लोक से बाहर स्थित वे ज्योतिष्क देव, जिनके विमान सदा एक स्थान पर ही स्थिर रहते हैं, लेश्या, प्रकाश, वर्ण भी एक–सा बना रहता है, वे अचर ज्योतिष्क कहलाते हैं। चर विमानों की अपेक्षा अचर विमानों की लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई आधी होती है।

**४५६) मेरूपर्वत के समतल-भूभाग से कितनी ऊँचाई पर ज्योतिष चक्र (मण्डल)**

समभूतला पृथ्वीथी ज्योतिषचक्र केटले दूर छे?ते दर्शावतुं चित्र

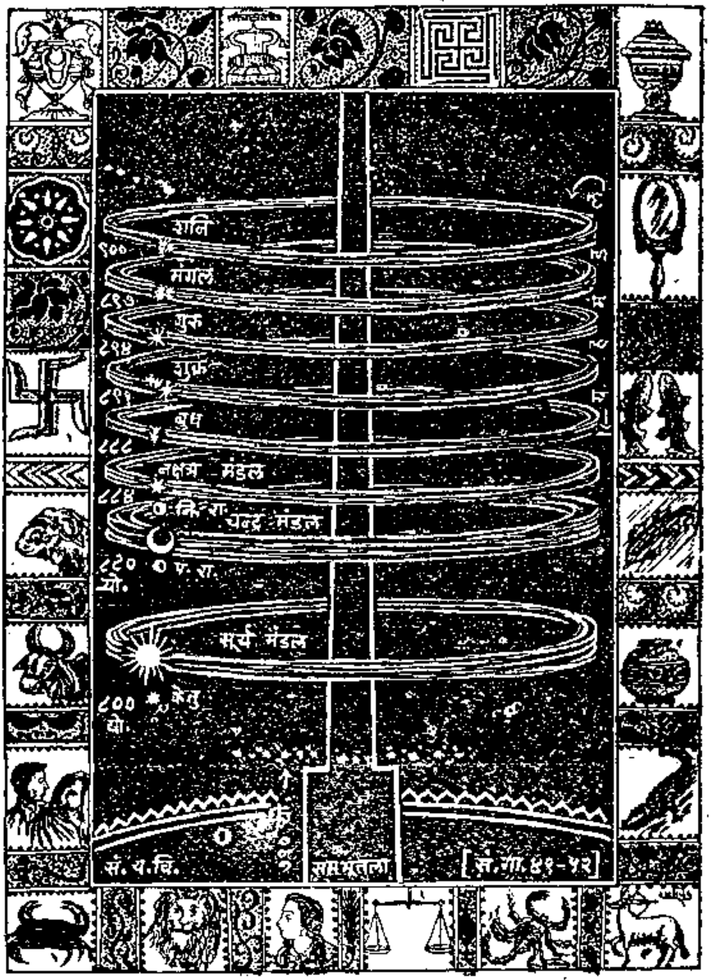


चित्र : ज्योतिष्क चक्र

का प्रारंभ होता हैं ?

उ. सात सौ निब्बे योजन।

४५७) ज्योतिष्क मण्डल का क्षेत्र कितने योजन का है ?

उ. एक सौ दस योजन।

४५८) समभूतला भू-भाग से कितने योजन की ऊँचाई पर तारों के विमान स्थित है ?

उ. सात सौ निब्बे योजन।

४५९) तारों के विमान से दस योजन की ऊँचाई पर किसके विमान स्थित हैं?

उ. सूर्य का विमान।

४६०) सूर्य के विमान से कितने योजन उपर चंद्र का विमान स्थित हैं ?

उ. अस्सी योजन।

४६१) चंद्र के विमान से चार योजन की ऊँचाई पर किसके विमान स्थित हैं ?

उ. नक्षत्रों के विमान।

४६२) नक्षत्रों के विमान से कितने योजन की ऊँचाई पर बुध ग्रह का विमान स्थित है ?

उ. चार योजन।

४६३) बुध ग्रह के विमान से कितने योजन की ऊँचाई पर शुक्र ग्रह विमान के स्थित है ?

उ. तीन योजन।

४६४) शुक्र ग्रह से कितने योजन उपर गुरु ग्रह के विमान स्थित है ?

उ. तीन योजन।

४६५) गुरू ग्रह से तीन योजन उपर कौनसा ग्रह स्थित है ?

उ. मंगल ग्रह।

४६६) मंगल ग्रह से कितने योजन उपर शनि ग्रह स्थित है ?

उ. तीन योजन।

**४६७) मनुष्य लोक में कितने सूर्य-चन्द्र हैं और किस प्रकार स्थित हैं ?**

उ. मनुष्य लोक में एक सौ बत्तीस सूर्य और एक सौ बत्तीस चन्द्र हैं जो इस प्रकार है-

| | सूर्य | चन्द्र |
|---|---|---|
| जम्बूदीप में | २ | २ |
| लवण समुद्र में | ४ | ४ |
| धातकी खण्ड में | १२ | १२ |
| कालोदधि समुद्र में | ४२ | ४२ |
| पुष्करार्ध में | ७२ | ७२ |
| | १३२ | १३२ |

**४६८) एक चन्द्र के परिवार में कितने नक्षत्र, ग्रह और तारें होते हैं ?**

उ. २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६९७५ तारें।

**४६९) ज्योतिष्क देवों का स्वरूप बताओ ?**

उ. जो लोक को प्रकाशित करते हैं, वे ज्योतिष्क देव कहलाते हैं। सूर्यदेव के मुकुट के अग्रभाग में सूर्य का चिन्ह होता है। इसी प्रकार चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा देव के मुकुट में क्रमशः चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र एवं तारे का चिन्ह होता है।

**४७०) वैमानिक देवों के प्रमुख भेद कितने होते हैं ?**

उ. दो भेद- १) कल्पोपपन्न देव २) कल्पातीत देव।

**४७१) कल्पोपपन्न देव किसे कहते हैं ?**

उ. वे देवलोक, जिनमें छोटे-बडे, स्वामी-सेवक का संबंध होता है, मालिक एवं दास का व्यवहार होता है, उन्हें कल्पोपपन्न देव कहते हैं। नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर के अलावा समस्त कल्पोपपन्न देव होते हैं।

**४७२) कल्पातीत देव किसे कहते हैं ?**

उ. वे देवलोक, जिनमें छोटे-बडे, स्वामी-सेवक तुल्य व्यवहार नहीं होता हैं, सभी में समानता होती हैं, उन्हें कल्पातीत देव कहते हैं। सभी कल्पातीत देव इन्द्रवत् होते हैं। अतः वे अहमिन्द्र कहलाते हैं।

**४७३) कल्पोपन्न देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. प्रमुख तीन भेद होते हैं– १) बारह देवलोक २) नवलोकान्तिक ३) तीन किल्बिषिक।

**४७४) कल्पातीत देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. प्रमुख रूप से दो भेद होते हैं– १) नवग्रैवेयक २) पांच अनुत्तर।

**४७५) बारह देवलोकों के नाम बताओ ?**

उ. बारह देवलोक– १) सौधर्म २) ईशान ३) सनत्कुमार ४) माहेन्द्र ५) ब्रह्मलोक ६) लांतक ७) महाशुक्र ८) सहस्रार ९) आनत १०) प्राणत ११) आरण १२) अच्युत।

**४७६) वैमानिक देवताओं के कितने विमान हैं ?**

उ. पहले स्वर्ग में बत्तीस लाख, दूसरे स्वर्ग में अट्ठाईस लाख, तीसरे स्वर्ग में बारह लाख, चौथे स्वर्ग में आठ लाख, पांचवें स्वर्ग में चार लाख, छट्ठे स्वर्ग में पचास हजार, सातवें स्वर्ग में चालीस हजार, आठवे स्वर्ग में छह हजार, नवमें से बारहवें में सात सौ, प्रथम तीन ग्रैवेयकों में एक सौ ग्यारह, अगले तीन ग्रैवेयकों में एक सौ सात, अंतिम तीन ग्रैवेयकों में सौ और पांच अनुत्तरों में पांच विमान हैं। इस प्रकार देवों का परिग्रह उत्तरोत्तर कम होता जाता है।

**४७७) बारह देवलोक किस प्रकार स्थित हैं ?**

उ. ज्योतिष्चक्र से असंख्यात योजन उपर सौधर्म और ईशान कल्प है, उनके बहुत उपर समश्रेणी में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प है। उनके उपर किन्तु मध्य में ब्रह्मलोक है। उसके उपर समश्रेणी में लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार ये तीनों कल्प एक दूसरे के उपर क्रमशः स्थित है। इनके उपर सौधर्म–ईशान की भाँति आणत और प्राणत कल्प स्थित है। उनके उपर समश्रेणी में आणत के उपर आरण और प्राणत के उपर अच्युत कल्प स्थित हैं।

**४७८) सौधर्म आदि स्वर्गों के विमानों का वर्ण कैसा हैं ?**

| | |
|---|---|
| उ. १) सौधर्म और ईशान के विमान | काले, नीले, लाल, पीले और सफेद |
| २) सनत्कुमार और माहेन्द्र के विमान | काले, लाल, पीले, सफेद |
| ३) ब्रह्मलोक और लांतक के विमान | लाल, पीले, सफेद |

४) महाशुक्र एवं सहस्रार के विमान पीले, सफेद

५) आणत, प्राणत, आरण, अच्युत के विमान सफेद

६) नव ग्रैवेयक एवं अनुत्तर के विमान सफेद

ये सभी विमान प्रकाश युक्त हैं। इनकी गंध अति-उत्तम एवं स्पर्श अति मुलायम होता है। रत्नों से निर्मित ये विमान शाश्वत होते हैं।

**४७९) बारह देवलोकों में कितने जिनमंदिर एवं जिनप्रतिमाएँ हैं ?**

| उ. | देवलोक | जिनमंदिर | जिनप्रतिमा |
|---|---|---|---|
| १) | पहला देवलोक | बत्तीस लाख | सत्तावन करोड साठ लाख |
| २) | दूसरा देवलोक | अट्ठावीस लाख | पचास करोड चालीस लाख |
| ३) | तीसरा देवलोक | बारह लाख | इक्कीस करोड साठ लाख |
| ४) | चौथा देवलोक | आठ लाख | चौदह करोड चालीस लाख |
| ५) | पांचवां देवलोक | चार लाख | सात करोड बीस लाख |
| ६) | छट्ठा देवलोक | पचास हजार | निब्बे लाख |
| ७) | सातवां देवलोक | चालीस हजार | बहत्तर लाख |
| ८) | आठवां देवलोक | छह हजार | एक लाख आठ हजार |
| ९-१०) | नौवां-दसवां देवलोक | चार सौ | बहत्तर हजार |
| ११-१२) | ग्यारहवां-बारहवां देवलोक | तीन सौ | चौपन हजार |

**४८०) बारह देवलोकों के इन्द्रों के नाम एवं उनके सामानिक देवों एवं आत्मरक्षक देवों की संख्या बताओ ?**

| उ. देवलोक | इन्द्र का नाम | सामानिक देव | आत्मरक्षक देव |
|---|---|---|---|
| पहला देवलोक | शक्रेन्द्र | ८४००० | ३३६००० |
| दूसरा देवलोक | ईशानेन्द्र | ८०००० | ३२०००० |
| तीसरा देवलोक | सनत्कुमारेन्द्र | ७२००० | २८८००० |
| चौथा देवलोक | माहेन्द्र | ७०००० | २८०००० |
| पांचवां देवलोक | ब्रह्मेन्द्र | ६०००० | २४०००० |

| | | | |
|---|---|---|---|
| छट्ठा देवलोक | लान्तकेन्द्र | ५०००० | २००००० |
| सातवां देवलोक | महाशुक्रेन्द्र | ४०००० | १६०००० |
| आठवां देवलोक | सहस्रारेन्द्र | ३०००० | १२०००० |
| नौवां–दसवां देवलोक | प्राणतेन्द्र | २०००० | ८०००० |
| ग्यारहवां–बारहवां | अच्युतेन्द्र | १०००० | ४०००० |

**४८१) तीन किल्बिषिक देवलोक कहाँ पर स्थित हैं ?**

उ. पहला किल्बिषिक पहले–दूसरे देवलोक के नीचे है। दूसरा किल्बिषिक तीसरे–चौथे देवलोक के नीचे और तीसरा किल्बिषिक छट्ठे देवलोक के नीचे स्थित है।

**४८२) कौनसे जीव मरकर किल्बिषिक देव बनते हैं ?**

उ. जो जीव सर्वज्ञ, तीर्थंकर परमात्मा की वाणी के विरूद्ध प्ररूपणा करते हैं, वे ही पापी जीव प्राय: किल्बिषिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

जिस तरह यहाँ क्षुद्र जाति वाले भंगी–चमार–ढोली आदि का अपमान होता है, वैसा ही अपमान इन देवों का देवलोक में होता है। वे बिना बुलाये देवों की सभा में जाते हैं, बोलते हैं। उनकी भाषा किसी को प्रिय न लगने के कारण अन्य देव उनको रोक देते हैं। उनको अपमान सहना पडता है।

**४८३) किल्बिषिक देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. किल्बिषिक देवों के तीन भेद होते हैं –

१) तीन पलिया (त्रिपल्योपमिक)– जिन किल्बिषिक देवों की स्थिति तीन पल्योपम की होती हैं, उन्हें तीन पलिया कहते हैं।

२) तीन सागरिया (त्रिसगारिया)– जिन किल्बिषिक देवों की स्थिति तीन सागरोपम की होती हैं, उन्हें तीन सागरिया किल्बिषिक देव कहते हैं।

३) तेरह सागरिया (त्रयोदश सागरिक)– जिन किल्बिषिक देवों की स्थिति तेरह सागरोपम की होती हैं, उन्हें तेरह सागरिया किल्बिषिक देव कहते हैं।

**४८४) नवलोकान्तिक देवों के क्या नाम हैं ?**

उ. १) सारस्वत २) आदित्य ३) वह्नि ४) अरूण ५) गर्दतोय ६) तुषित ७) अव्याबाध

८) मरूत ९) अरिष्ट।

**४८५) नवलोकान्तिक देव कहाँ पर स्थित हैं ?**

उ. लोकान्तिक देव विषय–रति से परे होने से देवर्षि कहलाते हैं। ये ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के चारों ओर दिशाओं–विदिशाओ में रहते हैं। ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य, अग्निकोण में वन्हि, दक्षिण में अरूण, नैऋत्य कोण में गर्दतोय, पश्चिम में तुषित, वायव्यकोण में अव्याबाध, उत्तर में मरूत, और मध्य में अरिष्ट स्थित हैं।

**४८६) नवलोकान्तिक देवों के उज्जवल भाग्य को सूचित करने वाला कार्य बताओ?**

उ. तीर्थंकर परमात्मा का दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त कर चतुर्विध संघ की स्थापना करने की विनंती करना।

**४८७) नव ग्रैवेयक देवों के क्या नाम हैं ?**

उ. १) भद्र २) सुभद्र ३) सुजात ४) सुमनस ५) सुदर्शन ६) प्रियदर्शन ७) अमोघ ८) सुप्रतिबद्ध ९) यशोधर

**४८८) नवग्रैवेयक विमानों के क्या नाम हैं ?**

उ. १) सुदर्शन २) सुप्रतिबद्ध ३) मनोरम ४) सर्वभद्र ५) सुविशाल ६) सुमनस ७) सौमनस ८) प्रियंकर ९) नंदीकर।

**४८९) बारह वैमानिक देवलोकों के उपर स्थित नौ देव विमानों को ग्रैवेयक क्यों कहा जाता हैं ?**

उ. यह संपूर्ण चौदह राजलोक पुरूषाकृति में हैं और वे नौ देव विमान पुरूषाकृति में ग्रीवा स्थली में स्थित होने के कारण नवग्रैवेयक कहलाते हैं।

**४९०) पांच अनुत्तर देवलोकों के क्या नाम हैं ?**

उ. १) विजय २) वैजयन्त ३) जयन्त ४) अपराजित ५) सर्वार्थसिद्ध।

**४९१) अनुत्तर विमान के देवों की क्या विशिष्टता होती हैं ?**

उ. पांच अनुत्तर विमानों में सर्वार्थसिद्ध विमानवासी देवों का च्यवन (मृत्यु) होने के

बाद केवल एक बार मनुष्य जन्म धारण करते हैं और उसी भव में मोक्ष जाते हैं। शेष चार अनुत्तर वैमानिक देव द्विचरमावर्ती होते हैं। अधिक से अधिक दो मनुष्य भव धारण करके मोक्ष में जाते हैं। इन चारों का क्रम इस प्रकार हैं, देवलोक से च्युत होकर मनुष्य जन्म, फिर अनुत्तर विमान में जन्म और मनुष्य जन्म धारण करके मोक्ष जाते हैं।

**४९२) सर्वार्थसिद्ध विमान में कौनसी आत्माएँ जन्म लेती हैं ?**

उ. एक छट्ठ तप यानि दो उपवास द्वारा उत्तम साधु जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों का क्षय करना जिन मुनियों के शेष रह जाता है, ऐसी हलुकर्मी महान् आत्माएँ अनुत्तर सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न होती हैं।

यहाँ उत्पन्न होने वाली वे साधु आत्माएँ होती हैं जिनका मनुष्य भव में यदि सात लव का आयुष्य अधिक होता तो उसी भव में समस्त कर्मों का क्षय करके मोक्ष प्राप्त कर लेती। शेष बचे शुभ कर्मों को भोगने के लिये सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न होती हैं। तैतीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य जन्म लेकर, समस्त कर्मों को खपाकर सिद्ध पद को प्राप्त कर लेती हैं।

**४९३) किन देवों के अवश्यमेव परमावधि ज्ञान होता है ?**

उ. अनुत्तर वैमानिक।

**४९४) चौसठ इन्द्र कौन-२ होते हैं ?**

उ. भवनपति के प्रत्येक निकाय में उत्तर और दक्षिण दिशा में इस प्रकार दो-दो इन्द्र रहते हैं। इसी प्रकार व्यंतर-वाणव्यंतर निकाय के भी एक-२ निकाय के दो-२ इन्द्र होते हैं। ज्योतिष्क के मात्र सूर्य और चन्द्र, ये दो इन्द्र ही हैं। वैमानिक देवों में पहले से आठवें देवलोक तक का एक-२ इन्द्र होता है। नवमें-दसमें का एक और ग्यारहवें-बारहवें का एक इन्द्र होता है। इस प्रकार चौसठ इन्द्र परमात्मा का मेरूपर्वत जन्माभिषेक करते हैं।

| | |
|---|---|
| भवनपति निकाय के | २० |
| व्यंतर निकाय के | १६ |

| | |
|---|---|
| वाणव्यंतर निकाय के | १६ |
| ज्योतिष्क निकाय के | २ |
| वैमानिक निकाय के | १० |
| कुल | ६४ |

**४९५) देवों के कुल कितने भेद होते हैं ?**

उ.

| | | |
|---|---|---|
| भवनपति देव | – | १० |
| व्यंतर देव | – | ८ |
| वैमानिक देव | – | १२ |
| लोकान्तिक देव | – | ९ |
| ग्रैवेयक देव | – | ९ |
| अनुत्तर देव | – | ५ |
| किल्बिषिक देव | – | ३ |
| वाणव्यंतर देव | – | ८ |
| तिर्यग्जृंभक देव | – | १० |
| चर ज्योतिष्क देव | – | ५ |
| अचर ज्योतिष्क देव | – | ५ |
| परमाधामी देव | – | १५ |
| कुल | – | ९९ |

उपरोक्त देवों के ९९ भेदों को पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की अपेक्षा से गिनने से १९८ भेद होते हैं।

**४९६) देवों को पहचानने के चार लक्षण कौनसे हैं ?**

उ. चार लक्षण– १) देवों की पलकें झपकती नहीं हैं २) उनके गले में रही हुई पुष्प–माला मुरझाती नहीं है। ३) उनके पाँव धरती से चार अंगुल उपर रहते हैं। ४) उनका शरीर पसीने से रहित होता है।

**४९७) देवों के गले में रही हुई पुष्प-माला कब मुरझाती हैं ?**

उ. मृत्यु से छह महिने पहले ।

**४९८) देवों की शारीरिक संरचना का वर्णन कीजिये ?**

उ. देवों का स्त्री–पुरूष संयोग के बिना औपपातिक जन्म होता है । उनकी काया स्वस्थ, सुन्दर एवं निरोगी होती है । मल, पसीने, दुर्गन्ध से रहित पवित्र परमाणुओं से बनी हुई होती है । कमल जैसी खुशबू बिखेरती काया कंचन के समान होती है । जन्म से ही वे सोलह वर्षीय दिव्य नौजवान जैसे दिखाई देते हैं ।

वे असमय में वृद्ध नहीं होते हैं, मरते नहीं हैं । मृत्यु होते ही उनके शारीरिक पुद्गल हवा में बिखर जाते हैं । उनमें दुर्गंध नहीं आती है ।

**४९९) देवता किस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं ?**

उ. वे मनुष्य की तरह आहार ग्रहण नहीं करते हैं । जब भी उनको भोजन की इच्छा होती है । इच्छा के संकल्प में परिणत हो जाने पर उत्तम पुद्गल शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। अमीरस पान की तरह डकार आती है और उनकी क्षुधा शान्त हो जाती है ।

**५००) वे सात बातें कौनसी हैं जो ऊपर-२ के देवों में बढती जाती हैं ?**

उ. १) स्थिति (आयुष्य)– ज्यों–ज्यों उपर की ओर बढते हैं, आयुष्य बढता जाता है।

२) प्रभाव – प्रभाव अर्थात् निग्रह–अनुग्रह, अणिमा–लघिमा सिद्धियों की क्षमता, शक्ति ऊपर–२ के देवों में अधिक होती है ।

३) सुख– दैव्य सुख भी उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करता है ।

४) द्युति– शरीर, वस्त्र, आभूषण आदि की द्युति–कान्ति नीचे के देवों की अपेक्षा उपर के देवों की अधिक होती हैं ।

५) लेश्या विशुद्धि– लेश्या विशुद्धि भी क्रमशः बढती जाती है ।

६) इन्द्रिय विषय– इष्ट विषय को ग्रहण करने का सामर्थ्य भी बढता जाता है ।

७) अवधि विषय– अवधिज्ञान का विषय भी उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त करता है ।

**५०१) वे चार बातें कौनसी हैं जो नीचे के देवों की अपेक्षा ऊपर के देवों में कम होती हैं ?**

उ. १) गति– गमनागमन क्रिया की शक्ति और गमन करने की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर कम होती हैं।

२) शरीर– शरीर की अवगाहना (ऊँचाई) उत्तरोत्तर कम होती है।

३) परिग्रह– विमान आदि का परिग्रह नीचे के देवों की अपेक्षा उपर के देवों में कम होता है।

४) अभिमान– शरीर, शक्ति, क्षमता, परिवार, ऋद्धि आदि का अभिमान लेश्या–विशुद्धि कारण कम होता जाता हैं।

**५०२) देवों के शरीर का वर्ण कैसा होता हैं ?**

उ. सौधर्म–ईशान स्वर्ग के देवों की काया का वर्ण तपे हुए सोने के समान होता है। अगले तीन देवलोक के देवों का काय वर्ण पद्मकेसर के समान गौरा होता है। आगे के देवलोक के देवों का देह वर्ण उत्तरोत्तर शुक्ल होता है।

**५०३) देवों में अशाता वेदनीय कर्म का उदय काल कितना होता हैं ?**

उ. देवों के प्राय: शाता वेदनीय का ही उदय होता है। कभी अशाता का उदय हो तो वह भी अन्तर्मुहूर्त से लेकर छह मास का ही होता है। छह मास से अधिक नहीं हो सकता।

**५०४) देवताओं का आहार ग्रहण करने का काल कितना होता हैं ?**

उ. जिन देवों का आयुष्य दस हजार वर्ष हैं, वे देव एक–एक दिन के अन्तराल में आहार ग्रहण करते हैं।

पल्योपम की आयु वाले देव दिन पृथक्त्व (दो दिन से लेकर नौ दिन) के बाद आहार लेते हैं।

जिन देवों की जितने सागरोपम की स्थिति हैं, वे देव उतने हजार वर्ष पश्चात् आहार ग्रहण करते हैं।

**५०५) देवताओं के उच्छ्वास का काल कितना होता हैं ?**

उ. देवताओं की जैसे–जैसे आयु बढती जाती है, वैसे–वैसे उच्छ्वास का काल भी बढता जाता है। दस हजार आयु स्थिति वाले देवताओं का सात–सात स्तोक में एक–एक उच्छ्वास होता है। एक पल्योपम की स्थिति वाले देवताओं का एक दिन

एक उच्छ्वास होता है। जिनका जितने सागरोपम का आयुष्य होता है, उतने पक्ष में एक उच्छ्वास होता है।

**५०६) देवताओं का किस प्रकार का कामसुख होता हैं ?**

उ. १) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक देव तथा प्रथम सौधर्म तथा द्वितीय ईशान देवलोक तक के देव मनुष्य की भाँति कामसुख का सेवन करते हैं।

२) तीसरे सनत्कुमार एवं चौथे माहेन्द्र देवलोक के देव, देवियों के स्पर्श से ही तृप्त हो जाते हैं।

३) पांचवें ब्रह्मलोक एवं छट्ठे लांतक कल्प के देव, देवियों के श्रृंगार–रूप को देखकर ही संतुष्टि प्राप्त कर लेते हैं।

४) सातवें महाशुक्र एवं आठवें सहस्रार स्वर्ग के देव, देवियों के शब्द सुनकर ही कामसुख का अनुभव कर लेते हैं।

५) नौवें से बारहवें देवलोक के देवों की कामेच्छा देवियों के चिन्तन से ही पूर्ण हो जाती हैं।

६) बारहवें देवलोक से उपर नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर वैमानिक देव कामवासना से मुक्त होते हैं। इस प्रकार कामवासना क्रमशः कम होती जाती है।

**५०७) देवियाँ कितने देवलोक तक होती हैं ?**

उ. देवियाँ दूसरे देवलोक तक होती हैं। वे आठवें देवलोक तक जा सकती हैं, उससे उपर नहीं जा सकती।

**५०८) देवों में कौनसा संघयण पाया जाता हैं ?**

उ. देव संघयण रहित होते हैं।

**५०९) देवों में कौनसे संस्थान पाये जाते हैं ?**

उ. समचतुरस्र संस्थान रूप भवधारणीय एक ही संस्थान होता है परन्तु उत्तर वैक्रिय शरीर के कारण छहों संस्थान हो सकते हैं।

**५१०) देवों में कितने कषाय पाये जाते हैं ?**

उ. चारों ही कषाय पाये जाते हैं।

**५११) देवों में कितनी लेश्याएँ पायी जाती हैं ?**

उ. परमाधामी देवों में केवल कृष्ण लेश्या ही पायी जाती है। भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक देवों मे कृष्ण, नील, कापोत एवं तेजोलेश्या पायी जाती है। ज्योतिष्क देव, पहले–दूसरे देवलोक, पहले किल्बिषिक में मात्र तेजोलेश्या ही पायी जाती हैं। तीसरे–चौथे–पांचवें देवलोक के देवों में, नवलोकान्तिक और दूसरे किल्बिषिक देवों में पद्मलेश्या ही होती है।

छट्ठे देवलोक से बारहवें देवलोक तक, नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान तक के सभी देवों में मात्र शुक्ल लेश्या ही होती है।

**५१२) तीन योगों में से कितने योग देवों में पाये जाते हैं ?**

उ. तीनों योग देवों में पाये जाते हैं।

**५१३) देवों में कितने उपयोग पाये जाते हैं ?**

उ. नौ उपयोग– १) मतिज्ञान २) श्रुतज्ञान ३) अवधिज्ञान ४) मति अज्ञान ५) श्रुत अज्ञान ६) विभंगज्ञान (अवधि अज्ञान) ७) चक्षु दर्शन ८) अचक्षु दर्शन ९) अवधि दर्शन (विभंग दर्शन)।

परमाधामी देवों में तीन अज्ञान और तीन दर्शन होते हैं। भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, तिर्यग्जृंभक, बारह वैमानिक, नवलोकन्तिक, तीन किल्बिषिक, नवग्रैवेयक देवों में नौ उपयोग होते हैं। अनुत्तर वैमानिक देवों में तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं।

**५१४) देव अवधिज्ञान के द्वारा कितना क्षेत्र जानते हैं ?**

उ. भवनपति देव जघन्य से पच्चीस योजन और उत्कृष्ट से असंख्यात द्वीप समुद्र, वाण व्यंतर देव जघन्य से पच्चीस योजन एवं उत्कृष्ट से संख्यात द्वीप समुद्र, ज्योतिष्क देव *जघन्य से संख्यात द्वीप समुद्र और उत्कृष्ट रूप से संख्यात द्वीप समुद्र, वैमानिक देव* जघन्य से अंगुल का असंख्यातवां भाग और उत्कृष्ट से अधोलोक में स्थित सातवीं नरक के चरमान्त तक, तिर्च्छालोक के असंख्यात द्वीप समुद्र और ऊपर अपने विमानों

तक जानते हैं।

**५१५) देवों में कितने समुद्घात पाये जाते हैं ?**

उ. पांच समुद्घात – १) वेदना २) कषाय ३) मरण ४) वैक्रिय ५) तैजस।

**५१६) देवों में कितने दर्शन पाये जाते हैं ?**

उ. देवों में मिथ्यादर्शन, मिश्रदर्शन और सम्यक्दर्शन रूप तीनों दर्शन पाये जाते हैं। परमाधामी देव मिथ्यात्वी ही होते हैं। अनुत्तर वैमानिक देव सम्यक्त्वी ही होते हैं। शेष देवों में तीनों दर्शन पाये जाते हैं।

**५१७) देवों में कितनी दृष्टियाँ पायी जाती हैं ?**

उ. दो दृष्टियाँ– १) दीर्घकालिकी २) दृष्टिवादोपदेशिकी।

**५१८) देवों में कितने आहार पाये जाते हैं ?**

उ. दो आहार– १) ओजाहार २) लोमाहार।

**५१९) एक समय में कितने देवता उत्कृष्ट रूप से जन्म लेते हैं अथवा मरते हैं?**

उ. भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, नवलोकान्तिक, किल्बिषिक, तिर्यग्जृंभक, सौधर्म से सहस्रार देवलोक तक एक समय में उत्कृष्ट रूप से असंख्यात अथवा संख्यात देव जन्म लेते हैं और सहस्रार से उपर देव एक समय में संख्यात देव जन्म लेते हैं और मरते हैं।

**५२०) देवों में उपपात एवं च्यवन का विरहकाल कितना होता हैं ?**

| | | | |
|---|---|---|---|
| उ. १) | भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं पहला–दूसरा देवलोक | – | २४ मुहूर्त्त |
| २) | सनत्कुमार देवलोक | – | ९ दिवस २० मुहूर्त्त |
| ३) | माहेन्द्र देवलोक | – | १२ दिवस १० मुहूर्त्त |
| ४) | ब्रह्मलोक देवलोक | – | २२ दिवस १५ मुहूर्त्त |
| ५) | लान्तक देवलोक | – | १ माह १५ दिवस |
| ६) | महाशुक्र देवलोक | – | २ माह २० दिवस |

| | | |
|---|---|---|
| ७) सहस्रार देवलोक | – | ३ माह १० दिवस |
| ८) आणत देवलोक | – | १० मास |
| ९) प्राणत देवलोक | – | ११ मास |
| १०) आरण–अच्युत देवलोक | – | १०० वर्ष |
| ११) प्रथम तीन ग्रैवेयक | – | हजार वर्ष |
| १२) मध्यवर्ती तीन ग्रैवेयक | – | एक लाख वर्ष |
| १३) अन्तिम तीन ग्रैवेयक | – | एक करोड वर्ष |
| १४) चार अनुत्तर विमान | – | पल्योपम का असंख्यातवां भाग |
| १५) सर्वार्थसिद्ध विमान | – | पल्योपम का संख्यातवां भाग |

**५२१) जिननाम बंध वाला जीव किन–२ देवलोकों में जा सकता है ?**

उ. परमाधामी, भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, ज्योतिष्क देवलोक में जिननाम वाला जीव नहीं जा सकता है। वह बारह वैमानिक देवलोक, नवलोकान्तिक, नवग्रैवेयक, अनुत्तर विमान में ही जाता है।

**५२२) देवों में कितने गुणठाणें होते हैं ?**

उ. परमाधामी देवों में पहला गुणठाणा ही पाया जाता है। अनुत्तर वैमानिक देवों के मात्र चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणठाणा ही होता है। भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक्, किल्बिषिक, बारह वैमानिक, नवलोकान्तिक, नव ग्रैवेयक देवों में प्रथम से चतुर्थ तक कोई भी गुणठाणा हो सकता है।

**५२३) देवों के कौनसा चारित्र हो सकता है ?**

उ. देव कभी भी व्रत–नियम–पच्चक्खाण नहीं ले सकते, अत: वे आजीवन अचारित्र–अव्रत का ही जीवन जीते हैं।

**५२४) देवों में कौनसे सम्यक्त्व होते हैं ?**

उ. देवताओं में क्षायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक एवं सास्वादन सम्यक्त्व हो सकता है। परमाधामी देव सम्यक्त्व रहित होते हैं। भवनपति, किल्बिषिक, व्यंतर, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, तिर्यग्जृंभक देवों में औपशमिक, क्षायोपशमिक, और

सास्वादन सम्यक्त्व हो सकता है। बारह वैमानिक देवों, नवलोकान्तिक, नवग्रैवेयक देवों में क्षायिक सहित चारों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। पांच अनुत्तर वैमानिक देवों में क्षायिक और क्षायोपशमिक रूप दो सम्यक्त्व हो सकते हैं।

**५२५) देवियों में कितनी लेश्या होती हैं ?**

उ. ज्योतिष्क विमान तक की देवियों में देवों के समान चार लेश्या होती हैं। उसके उपर की वैमानिक देवियों में मात्र तेजो लेश्या ही होती है।

**५२६) मनुष्य लोक में कौनसे देव आते हैं ?**

उ. भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक आदि कल्पोपन्न देव ही किसी निमित्त से मनुष्य लोक में आते हैं। कल्पातीत हमेशा एक ही स्थान पर ही रहते हैं। वे मनुष्य लोक में नहीं आते हैं।

**५२७) देवों के कौनसा जन्म होता हैं ?**

उ. औपपातिक।

**५२८) परमाधामी किस निकाय के देव हैं ?**

उ. भवनपति निकाय के असुरकुमार में रहने वाले एक जाति के देव हैं।

**५२९) परमाधामी देवों की मरने के पश्चात् क्या गति होती है ?**

उ. परमाधामी देव मरने के बाद अंडगोलिक मनुष्य बनते हैं। वहाँ एक वर्ष तक भयंकर यातना भोगने के पश्चात् मरकर नरक में उत्पन्न होते हैं।

**५३०) देवों की ऊँचाई कितनी होती हैं ?**

उ. १) भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, ज्योतिष्क, परमाधामी, पहले और दूसरे देवलोक के देवों की एवं पहले किल्बिषिक के देवों की अवगाहना सात हाथ की होती हैं।

२) तीसरे–चौथे देवलोक एवं दूसरे किल्बिषिक के देवों की अवगाहना छह हाथ की होती है।

३) पांचवें एवं छट्ठे देवलोक, नवलोकान्तिक एवं तीसरे किल्बिषिक के देवों की अवगाहना पांच हाथ की होती है।

४) सातवें और आठवें देवलोक के देवों की अवगाहना चार हाथ की होती है।

५) नौवें से बारहवें देवलोक के देवों की अवगाहना तीन हाथ की होती है।

६) नवग्रैवेयक के देवों की अवगाहना दो हाथ की होती है।

७) पांच अनुत्तर वैमानिक देवों की अवगाहना एक हाथ की होती है।

**५३१) अपर्याप्त देवों का आयुष्य कितना होता है ?**

उ. जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का होता है।

**५३२) अधोलोक में स्थित देवलोक के देवों का आयुष्य कितना होता है ?**

उ. अधोलोक में स्थित भवनपति देवों का उत्कृष्ट आयुष्य साधिक एक सागरोपम एवं जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का होता है।

व्यंतर देवों का उत्कृष्ट आयुष्य एक पल्योपम और जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष का होता है।

पन्द्रह परमाधामी देवों का जघन्य और उत्कृष्ट आयुष्य क्रमशः दस हजार वर्ष एवं देशान दो पल्योपम का होता है।

तिर्यग्जृंभक देवों का जघन्य एवं उत्कृष्ट आयुष्य क्रमशः दस हजार वर्ष एवं एक पल्योपम का होता है।

**५३३) मध्य लोक में स्थित देवलोक के देवों का आयुष्य कितना होता हैं ?**

उ. मध्य लोक में स्थित सूर्य–चन्द्र विमान के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य साधिक एक पल्योपम और जघन्य पल्योपम का चौथा भाग होता है।

ग्रह विमान के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य एक पल्योपम और जघन्य आयुष्य पल्योपम का चतुर्थांश (चौथा भाग) होता हैं।

नक्षत्र विमान के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य अर्ध पल्योपम एवं जघन्य आयुष्य पल्योपम का चतुर्थांश होता है।

तारा विमान के देवों का जधन्य आयुष्य पल्योपम का चतुर्थांश और उत्कृष्ट पल्योपम का आठवां भाग होता है।

**५३४) बारह देवलोक के देवों का आयुष्य कितना होता है ?**

| उ. देवलोक | उत्कृष्ट | जघन्य |
|---|---|---|
| १) सौधर्म देवलोक | दो सागरोपम | एक पल्योपम |
| २) ईशान देवलोक | साधिक दो सागरोपम | साधिक एक पल्योपम |
| ३) सनत्कुमार देवलोक | सात सागरोपम | दो सागरोपम |
| ४) माहेन्द्र देवलोक | साधिक सात सागरोपम | साधिक दो सागरोपम |
| ५) ब्रह्मलोक देवलोक | दस सागरोपम | सात सागरोपम |
| ६) लान्तक देवलोक | चौदह सागरोपम | दस सागरोपम |
| ७) महाशुक्र देवलोक | सत्रह सागरोपम | चौदह सागरोपम |
| ८) सहस्रार देवलोक | अठारह सागरोपम | सत्रह सागरोपम |
| ९) आणत देवलोक | उन्नीस सागरोपम | अठारह सागरोपम |
| १०) प्राणत देवलोक | बीस सागरोपम | उन्नीस सागरोपम |
| ११) आरण देवलोक | इक्कीस सागरोपम | बीस सागरोपम |
| १२) अच्युत देवलोक | बावीस सागरोपम | इक्कीस सागरोपम |

**५३५) नवग्रैवेयक के देवों का आयुष्य कितना होता है ?**

| उ. ग्रैवेयक | उत्कृष्ट | जघन्य |
|---|---|---|
| १) पहला ग्रैवेयक | २३ सागरोपम | २२ सागरोपम |
| २) दूसरा ग्रैवेयक | २४ सागरोपम | २३ सागरोपम |
| ३) तीसरा ग्रैवेयक | २५ सागरोपम | २४ सागरोपम |
| ४) चौथा ग्रैवेयक | २६ सागरोपम | २५ सागरोपम |
| ५) पांचवां ग्रैवेयक | २७ सागरोपम | २६ सागरोपम |
| ६) छट्ठा ग्रैवेयक | २८ सागरोपम | २७ सागरोपम |
| ७) सातवां ग्रैवेयक | २९ सागरोपम | २८ सागरोपम |
| ८) आठवां ग्रैवेयक | ३० सागरोपम | २९ सागरोपम |

| | | |
|---|---|---|
| ९) नौवां ग्रैवेयक | ३१ सागरोपम | ३० सागरोपम |

**५३६) पांच अनुत्तर विमान के देवों का आयुष्य कितना होता है ?**

उ. विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित के देवों का उत्कृष्ट आयुष्य ३२ सागरोपम एवं जघन्य आयुष्य ३१ सागरोपम होता है। सर्वार्थसिद्धविमान के देवों का उत्कृष्ट एवं जघन्य आयुष्य ३३ सागरोपम होता है।

**५३७) देवों का आयुष्य कैसा होता हैं ?**

उ. पर्याप्ता देवों का आयुष्य निरूपक्रमी होता है। देव पूर्ण आयुष्य भोगकर ही मरते हैं। अत: उनकी अपर्याप्त अवस्था में मृत्यु नहीं होती हैं।

**५३८) देवताओं की स्वकाय स्थिति कितनी होती है ?**

उ. देव स्वकाय स्थिति से रहित होते हैं। देव मरकर पुन: देव नहीं बन सकते। बीच में अन्य भव करके ही देव बन सकते हैं।

**५३९) देव चारों गतियों में से कितनी गतियों में जा सकता हैं ?**

उ. देव मरकर मनुष्य या तिर्यंच गति में ही जा सकता है। वह नरक अथवा देवलोक में उत्पन्न नहीं हो सकता हैं।

**५४०) भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क, पहले-दूसरे देवलोक एवं प्रथम किल्बिषिक के देव कहाँ-२ उत्पन्न हो सकते हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय जाति में उत्पन्न हो सकते हैं। एकेन्द्रिय जाति में भी बादर पृथ्वीकाय, बादर अप्काय और बादर वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न हो सकते हैं। पंचेन्द्रिय में १५ कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच में उत्पन्न हो सकते हैं। इन २३ भेदों को पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की अपेक्षा से गिनने से ४६ भेद होते हैं।

अर्थात् अप्काय, तेउकाय, द्वीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, देवलोक एवं नरक में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

**५४१) तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक के देव कहाँ-२ उत्पन्न हो सकते हैं ?**

उ. तीसरे से आठवें देवलोक के देव पंचेन्द्रिय जाति में ही उत्पन्न होते है। पंचेन्द्रिय जाति में भी १५ संज्ञी कर्मभूमिज मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच बन सकते हैं। अर्थात् एकेन्द्रिय,

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरक एवं देवलोक में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। ये २० भेद पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता की अपेक्षा से ४० होते हैं।

**५४२) नवमें देवलोक से नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान के देव कहाँ-२ उत्पन्न हो सकते हैं ?**

उ. नवमें देवलोक से नवग्रैवेयक एवं अनुत्तर विमान के देव पंचेन्द्रिय जाति में ही उत्पन्न होते हैं। पंचेन्द्रिय जाति में भी मनुष्य गति में ही जाते हैं। अर्थात् एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, नरक, देवलोक एवं पंचेन्द्रिय तिर्यंच में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। १५ कर्मभूमियों में उत्पन्न होने से पर्याप्ता-अपर्याप्ता की अपेक्षा से ३० भेद हुए।

**५४३) देवों की आगति बताओ ?**

उ. १) भवनपति, परमाधामी, वाणव्यंतर, व्यंतर, तिर्यग्जृंभक देवों में आगति के १११ भेद -१०१ संज्ञी मनुष्य, ५ गर्भज पर्याप्ता तिर्यंच एवं ५ संमूर्च्छिम पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच।

२) ज्योतिष्क देव एवं पहले देवलोक में आगति के ५० भेद-१५ कर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्य एवं ५ संज्ञी पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच।

३) दूसरे देवलोक में आगति के ४० भेद-३० में से अकर्मभूमियों में से हिमवंत-हिरण्यवंत क्षेत्र के संज्ञी मनुष्यों के पांच-२ भेद छोडकर २० संज्ञी मनुष्य, १५ कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच।

४) पहले किल्बिषिक में आगति ५० भेद-१५ कर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्ता मनुष्य, ५ संज्ञी पर्याप्ता पंचेन्द्रिय तिर्यंच।

५) तीसरे से आठवां देवलोक, नवलोकान्तिक, २-३ किल्बिषिक में आगति के २० भेद = १५ कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्य एवं ५ संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय।

६) नौवें से बारहवां देवलोक, नव ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर में आगति के १५ भेद-१५ कर्मभूमिज संज्ञी मनुष्य।

**५४४) देवों की कितनी योनियाँ होती हैं ?**

उ. चार लाख।

**५४५) देवों की चार लाख योनियाँ किस प्रकार होती हैं ?**

उ. मूल रूप से २०० प्रकार के देव माने गये हैं। उन्हें २००० उत्पत्ति स्थानों से गुणा करने से चार लाख योनियाँ होती हैं।

**५४६) देवों से देवियाँ कितनी ज्यादा हैं ?**

उ. देवों से देवियाँ ३२ गुणा अधिक, उपर बत्तीस अधिक हैं।

**५४७) देवों में कितने शरीर पाये जाते हैं ?**

उ. तीन शरीर– १) वैक्रिय २) तैजस ३) कार्मण।

**५४८) कौन-कौनसे देव उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते हैं ?**

उ. नवग्रैवेयक और अनुत्तर वैमानिक उत्तर वैक्रिय शरीर की निर्माण शक्ति से संपन्न होने पर भी उत्तर वैक्रिय शरीर नहीं बनाते हैं। शेष सभी देव कारण होने पर उत्तर वैक्रिय शरीर बनाते हैं।

**५४९) देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. जघन्य से अंगुल का संख्यातवां भाग और उत्कृष्ट रूप से एक लाख योजन की अवगाहना देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर की होती है।

**५५०) देवों के उत्तर वैक्रिय शरीर का कितना काल होता है ?**

उ. उत्कृष्ट पन्द्रह दिन और जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त।

**५५१) देवलोक में कितने वेद पाये जाते हैं ?**

उ. पुरूष वेद एवं स्त्री वेद।

**५५२) किस देवलोक से निकला जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त कर सकता है ?**

उ. सौधर्म देवलोक से अनुत्तर वैमानिक देवलोक से निकला जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त कर बन सकता है परन्तु तीन किल्बिषिक का देव तीर्थंकर नहीं बन सकता है।

**५५३) किस देवलोक से निकला जीव चक्रवर्ती बन सकता हैं ?**

उ. भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक इन चारों निकायों से निकला जीव चक्रवर्ती बन सकता है परन्तु पन्द्रह परमाधामी एवं तीन किल्बिषिक का देव चक्रवर्ती नहीं बन

सकता है।

**५५४) किस देवलोक से निकला जीव वासुदेव बन सकता है ?**

उ. वैमानिक देवलोक, नव लोकान्तिक एवं नवग्रैवेयक से निकला जीव वासुदेव बन सकता है।

**५५५) किस देवलोक से निकला जीव बलदेव बन सकता है ?**

उ. चक्रवर्ती की भाँति चारों विकायों के निकला जीव बलदेव बन सकता है परन्तु पन्द्रह परमाधामी एव तीन किल्बिषिक का देव बलदेव नहीं बन सकता है।

**५५६) किस देवलोक से निकला जीव माण्डलिक पद प्राप्त कर सकता है ?**

उ. चारों निकायों से निकला जीव माण्डलिक पद को प्राप्त कर सकता है।

**५५७) प्रथम वज्रऋषभनाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. सर्वार्थ सिद्ध विमान तक।

**५५८) दूसरे ऋषभनाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है?**

उ. बारहवें देवलोक तक।

**५५९) तीसरे नाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है?**

उ. दसवें देवलोक तक।

**५६०) चौथे अर्द्धनाराच संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है?**

उ. आठवें देवलोक तक।

**५६१) पांचवें कीलिका संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है?**

उ. छट्ठे देवलोक तक।

**५६२) छट्ठे छेवट्ठ संघयण वाला जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. चौथे देवलोक तक।

**५६३) वर्तमान में जीव किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. वर्तमान में छेवट्ठ संघयण ही होने से चौथे देवलोक तक ही जा सकता है।

**५६४) अभव्य जीव द्रव्य संयम पालकर किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. भवनपति से नवग्रैवेयक में जा सकता है परन्तु नवलोकान्तिक देव नहीं बन सकता है।

**५६५) अप्रमत्त साधु किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. सौधर्मकल्प से सर्वार्थसिद्ध विमान तक।

**५६६) आराधक श्रावक किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. सौधर्म देवलोक से वैमानिक देवलोक तक।

**५६७) पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्राणी किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. आठवें देवलोक तक।

**५६८) अन्यतीर्थिक (अन्यलिंगी) किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. पांचवें ब्रह्मदेवलोक तक।

**५६९) दर्शनभ्रष्ट (निन्हव) किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. नवग्रैवेयक तक।

**५७०) विराधित संयमी किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. भवनपति से सौधर्म देवलोक तक।

**५७१) विराधक श्रावक किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. भवनपति से ज्योतिष्क देवलोक तक।

**५७२) कांदर्पिक किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. भवनपति से सौधर्म देवलोक तक।

**५७३) किल्बिषिक अर्थात् ज्ञानादि का अवर्णवाद करने वाला किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. सौधर्मकल्प से लांतक देवलोक तक।

**५७४) आजीवक मति किस देवलोक तक जा सकता हैं ?**

उ. भवनपति से बारहवें देवलोक तक।

**५७५) आभियोगिक (मंत्र-तंत्र से दूसरों को वश में करने वाला) किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. भवनपति से बारहवें देवलोक तक।

**५७६) अकामनिर्जरा करने वाला असंज्ञी किस देवलोक तक जा सकता हैं?**

उ. भवनपति एव वाणव्यंतर में।

**५७७) तापस किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. भवनपति से ज्योतिष्क तक।

**५७८) चरक परिव्राजक किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. भवनपति से ब्रह्मलोक तक।

**५७९) अविरत सम्यक्त्वी किस देवलोक तक जा सकता है ?**

उ. पन्द्रह परमाधामी एवं तीन किल्बिषिक को छोडकर किसी भी देवलोक में जा सकता है।

**५८०) चतुवर्शपूर्वधर किस देवलोक में जाते हैं ?**

उ. पांचवें बह्मदेवलोक से उपर के किसी भी देवलोक तक जाते हैं।

**५८१) अनुत्तर वैमानिक देवों की विशेषता बताओं ?**

उ. सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव एकावतारी होते हैं। मनुष्य जन्म धारण कर नियमतः उसी भव में सिद्धपद को उपलब्ध करते हैं।

**५८२) देवों में कितने प्राण पाये जाते हैं ?**

उ. देवों में पांच इन्द्रिय प्राण, तीन बल प्राण, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य रूप दसों ही प्राण पाये जाते हैं।

**५८३) कौन-२ से देव नियमतः भव्य ही होते हैं ?**

उ. पांच अनुत्तर वैमानिक, नवलोकांतिक, परमाधामी देव नियमतः भव्य ही होते हैं।

**५८४) कौन-२ से देव भव्य और अभव्य दोनों हो सकते हैं ?**

उ. भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, ज्योतिष्क, बारह वैमानिक एवं नवग्रैवेयक देव भव्य और अभव्य दोनों हो सकते हैं।

## जीव के ५६३ भेदों का विशेष विवेचन

**५८५) जीव के कुल कितने भेद होते हैं ?**

उ. ५६३।

**५८६) जीव के ५६३ भेदों में से पर्याप्ता-अपर्याप्ता जीवों के कितने भेद होते हैं?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से ३३२ भेद अपर्याप्ता और २३१ भेद पर्याप्ता जीवों के होते हैं।

**५८७) जीव के ५६३ भेदो में से सूक्ष्म और बादर जीवों के कितने भेद होते हैं?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से १० भेद सूक्ष्म और ५५३ भेद बादर जीवों के होते हैं।

**५८८) जीव के ५६३ भेदों में से गर्भज और संमूर्च्छिम जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से १३९ संमूर्च्छिम और २१२ गर्भज जीवों के भेद होते हैं।

**५८९) जीव के ५६३ भेदों में से कितने जीव औपपातिक जन्म वाले होते हैं ?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से २१२ भेद औपपातिक जन्म वाले जीवों के होते हैं।

**५९०) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद तिर्यंचों के होते हैं ?**

उ. ४८ भेद।

**५९१) तिर्यंच के ४८ भेदों मे से पर्याप्ता-अपर्याप्ता के कितने भेद होते हैं ?**

उ. २४ भेद पर्याप्ता के और २४ भेद अपर्याप्ता के होते हैं।

**५९२) तिर्यंच के ४८ भेदों में से गर्भज-संमूर्च्छिम जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. ३८ भेद संमूर्च्छिम जीवों के एवं १० भेद गर्भज जीवों के होते हैं।

**५९३) तिर्यंच के ४८ भेदों में से सूक्ष्म-बादर के कितने भेद होते हैं ?**

उ. १० भेद सूक्ष्म और ३८ भेद बादर जीवों के होते हैं।

**५९४) जीव के ५६३ भेदों में से एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रिय जीवों के कितने-२ भेद होते हैं ?**

| | | |
|---|---|---|
| उ. | एकेन्द्रिय जीवों के | २२ भेद |
| | द्वीन्द्रिय जीवों के | २ भेद |

| | |
|---|---|
| त्रीन्द्रिय जीवों के | २ भेद |
| चतुरिन्द्रिय जीवों के | २ भेद |
| पंचेन्द्रिय जीवों के | ५३५ भेद |
| कुल | ५६३ भेद |

**५९५) जीव के ५६३ भेदों में से पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय के कितने-२ भेद होते हैं ?**

उ.

| | |
|---|---|
| पृथ्वीकायिक जीवों के – | ४ भेद |
| अप्कायिक जीवों के – | ४ भेद |
| तेउकायिक जीवों के – | ४ भेद |
| वायुकायिक जीवों के – | ४ भेद |
| वनस्पतिकायिक जीवों के – | ६ भेद |
| त्रसकायिक जीवों के– | ५४१ भेद |
| कुल– | ५६३ भेद |

**५९६) जीव के ५६३ भेदों में से भव्य और अभव्य जीवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. अनुत्तर वैमानिक देव, परमाधामी देव, नव लोकान्तिक देव, युगलिक मनुष्य, ये सभी भव्य ही होते हैं–

| | |
|---|---|
| अनुत्तर वैमानिक देव – | १० |
| परमाधामी देव – | ३० |
| नवलोकान्तिक देव – | १० |
| अकर्मभूमिज–अन्तर्द्वीपज युगलिक मनुष्य – | २५८ |
| कुल– | ३१६ |

इस प्रकार जीव के ५६३ भेदों में से ३१६ भेद अभव्य नहीं हो सकते हैं। वे भव्य ही होते हैं। शेष २४७ भेदों में भव्य भी होते हैं और अभव्य भी होते हैं।

**५९७) जीव के ५६३ भेदों में से मनुष्य के कितने भेद होते हैं ?**

उ. ३०३ भेद।

**५९८) जीव के ५६३ भेदों में से देवों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. १९८ भेद।

**५९९) जीव के ५६३ भेदों में से नारकी के कितने भेद होते हैं ?**

उ. १४ भेद।

**६००) जीव के ५६३ भेदों में से संज्ञी और असंज्ञी के कितने भेद होते हैं ?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से २१२ भेद संज्ञी जीवों के और ३५१ भेद असंज्ञी जीवों के होते हैं।

**६०१) जीव के ५६३ भेदों में से २१२ भेद संज्ञी व ३५१ भेद असंज्ञी किस प्रकार हुए ?**

उ. १) संमूर्च्छिम जीव नियमतः असंज्ञी ही होते हैं। जीव के ५६३ भेदों में से १३९ भेद संमूर्च्छिम जीवों के होते हैं। (१०१ मनुष्य+१० प.ति.+६ विकलेन्द्रिय+२२ एकेन्द्रिय)

२) गर्भज जीव, जो अपर्याप्ता होते हैं, वे भी असंज्ञी होते हैं। गर्भज जीव के २१२ भेदों में से १०६ भेद अपर्याप्ता होने से असंज्ञी होते हैं। (१०१ अ.म. + ५ अ.प.ति.)

३) औपपातिक जन्म के २१२ भेदों में से १०६ भेद अपर्याप्ता के होने से असंज्ञी हुए। (९९ देवता+७ नारकी)

इस प्रकार संमूर्च्छिम असंज्ञी जीवों के १३९ भेद, गर्भज अपर्याप्ता असंज्ञी जीवों के १०६ भेद, औपपातिक अपर्याप्ता असंज्ञी जीवों के १०६ भेद होने से कुल ३५१ भेद असंज्ञी जीवों के होते हैं।

गर्भज पर्याप्ता संज्ञी जीवों के १०६ भेद और औपपातिक पर्याप्ता संज्ञी के १०६ भेद होने से कुल २१२ भेद संज्ञी जीवों के होते हैं।

**६०२) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में कौनसा संस्थान पाया जाता है?**

उ. १) समचतुरस्र संस्थान– देव–१९८, मनुष्य गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता–२०२, पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंच–१०, = ४१० भेद

२) मध्यवर्ती चार सस्थान– कर्मभूमिज मनुष्य गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता–३०, पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंच–१०=४० भेद

३) हुंडक संस्थान- संमूर्च्छिम मनुष्य-१०१, कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य-३०, नारकी-१४, तिर्यंच-४८ = १९३ भेद

● अन्तर्द्वीपज एवं अकर्मभूमिज मनुष्यों में प्रथम संस्थान ही पाया जाता हैं।

● समूर्च्छिम एवं नारकी जीवों में मात्र हुंडक संस्थान ही पाया जाता है।

**६०३) जीव के ५६३ भेदों में से औदारिक शरीर वाले कितने भेद होते हैं ?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से औदारिक शरीर वाले ३५१ भेद होते हैं, वह इस प्रकार है- तिर्यंच के ४८ भेद एवं मनुष्य के ३०३ भेद।

**६०४) जीव के ५६३ भेदों में से कितने जीव वैक्रिय शरीरधारी हो सकते हैं ?**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| उ. | मनुष्य | – | पचेन्द्रिय पर्याप्ता संज्ञी कर्मभूमिज | – | ५ |
| | देव | – | अपर्याप्ता एवं पर्याप्ता | – | १९८ |
| | तिर्यंच | – | पचेन्द्रिय पर्याप्ता संज्ञी | – | ५ |
| | नारकी | – | अपर्याप्ता एवं पर्याप्ता | – | १४ |
| | वायुकाय | – | पर्याप्ता बादर | – | १ |
| | | | कुल | – | २२३ |

**६०५) जीव के ५६३ भेदों में से आहारक शरीर वाले कितने भेद होते हैं ?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से १५ भेद आहारक शरीर वाले होते है। आहारक शरीर मनुष्यों में ही पाया जाता हैं। मनुष्यों में भी कर्मभूमिज मनुष्यों में ही पाया जाता है। कर्मभूमिज में भी गर्भज पर्याप्ता संयमी मनुष्यों में ही होने से १५ भेदों में ही आहारक शरीर पाया जाता हैं।

**६०६) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद तैजस और कार्मण शरीर वाले होते हैं ?**

उ. तैजस और कार्मण शरीर अनादिकाल से जीव से जुडे हुए हैं। समस्त कर्मों से मुक्त होने पर ही उनका वियोग होता है। संसारी जीवों के ५६३ भेद तैजस और कार्मण शरीर युक्त होते हैं।

**६०७) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान पाया जाता है ?**

उ. जीव के ५६३ भेदों में से अनुत्तर वैमानिक देवों के १० भेदों को छोडकर शेष ५५३ भेदों मे मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान हो सकता हैं।

**६०८) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में नपुंसक वेद पाया जाता है ?**

| | | |
|---|---|---|
| उ. नपुंसक वेद– | एकेन्द्रिय के | २२ भेद |
| | विकलेन्द्रिय के | ६ भेद |
| | पंचेन्द्रिय तिर्यंच के | २० भेद |
| | पंचेन्द्रिय मनुष्य के | १३१ भेद |
| | नारकी के | १४ भेद |
| | कुल | १९३ भेद |

- एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, नारकी नपुंसक वेद वाले ही होते हैं।
- पंचेन्द्रिय तिर्यंच के २० भेदों में नपुंसक हो सकते हैं।
- संमूर्च्छिम प्राणी नपुंसक होने से मनुष्य के ३०३ भेदों म से १०१ भेद नपुंसक होते हैं।
- कर्मभूमियों के मनुष्य नपुंसक हो सकने से गर्भज के ३० भेद भी नपुंसक होते हैं।

**६०९) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में से पुरूष वेद पाया जाता हैं ?**

| | | | |
|---|---|---|---|
| उ. | पंचेन्द्रिय तिर्यंच | – | १० |
| | पंचेन्द्रिय मनुष्य | – | २०२ |
| | पंचेन्द्रिय देवता | – | १९८ |
| | कुल | | ४१० |

- प. ति. के २० भेदों में से १० संमूर्च्छिम होने से शेष गर्भज १० में पुरूष वेद।
- पंचेन्द्रिय मनुष्य के १०१ भेद संमूर्च्छिम होने से शेष गर्भज २०२ में पुरूष वेद।
- सभी देवता पुरूष वेद वाले होते हैं।

**६१०) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में स्त्री वेद पाया जाता है ?**

उ. पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता– १०

| | |
|---|---|
| कर्मभूमिज मनुष्य गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता– | ३० |
| अकर्मभूमिज मनुष्य गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता– | ६० |
| अन्तर्द्वीपज मनुष्य गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता– | ११२ |
| दूसरे देवलोक तक पर्याप्ता–अपर्याप्ता– | १२८ |
| कुल– | ३४० |

एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, संमूर्च्छिम, नारकी नपुंसक वेद वाले ही होते हैं। दूसरे देवलोक से उपर देवियाँ नहीं होती हैं।

**६११) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में केवलज्ञान एवं मन:पर्यवज्ञान हो सकता हैं ?**

उ. कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्यों को ही केवलज्ञान एवं मन:पर्यवज्ञान होने से जीवों के ५६३ भेदों से मात्र १५ भेदों में ही ये दो ज्ञान हो सकते हैं। पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच महाविदेह के गर्भज पर्याप्ता मनुष्य ही संयम धारण कर सकते हैं और केवलज्ञान और मन:पर्यवज्ञान संयमी आत्माओं को ही होता है।

**६१२) जीव के ५६३ भेदों में से प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणठाणे में कितने भेद होते हैं ?**

उ. पांच अनुत्तर विमान के देवों के १० भेद चौथे गुणठाणे में ही होते हैं। इन १० भेदों को छोडकर शेष ५५३ भेदों में पहला गुणठाणा पाया जाता हैं।

**६१३) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद तीसरे गुणठाणे में पाये जाते हैं ?**

उ. १) तीसरा गुणठाणा केवल पर्याप्ता संज्ञी जीवों के ही हो सकता हैं। एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीव असंज्ञी होने से उनमें तीसरा गुणठाणा नहीं होता हैं।

२) पंचेन्द्रिय तिर्यंच में अपर्याप्ता एवं संमूर्च्छिम भेदों के अतिरिक्त गर्भज पर्याप्ता के पांच भेदों में ही तीसरा गुणठाणा हो सकता हैं।

३) पर्याप्ता नारकी के सात भेदों में तीसरा गुणठाणा हो सकता है।

४) देवों में पन्द्रह परमाधामी सदैव पहले गुणठाणे में ही होते हैं। अनुत्तर वैमानिक देवों में चौथा गुणठाणा ही होता हैं। इन ४० भेदों के अतिरिक्त १५८ भेदों में से पर्याप्ता

संज्ञी के ७९ भेदों में तीसरा गुणठाणा हो सकता है।

५) अकर्मभूमिज एवं अन्तर्द्वीपज मनुष्यों के तीसरा गुणठाणा नहीं होता है। कर्मभूमिज मनुष्यों के गर्भज पर्याप्ता के १५ भेदों मे तीसरा गुणठाणा हो सकता है।

कुल- ५ तिर्यंच + ७ नारकी + ७९ देव +१५ मनुष्य, इन १०६ भेदों में तीसरा गुणठाणा हो सकता है।

**६१४) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद चौथे गुणठाणे में पाये जाते हैं ?**

| उ. अधिकारी | भेद |
|---|---|
| १) सात नरक के चौदह भेदों में से सातवीं नरक के अपर्याप्ता भेद को छोडकर | १३ |
| २) पंचेन्द्रिय गर्भज तिर्यंच | १० |
| ३) कर्मभूमिज एवं अकर्मभूमिज पर्याप्ता एवं अपर्याप्ता मनुष्य | ९० |
| ४) देव (पर्याप्ता+अपर्याप्ता) | १६२ |
| कुल | २७५ |

- संमूर्च्छिम मनुष्य, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, सातवीं नरक के अपर्याप्ता नारकी चौथे गुणठाणे में नहीं होते हैं।
- परमाधामी मिथ्यात्वी ही होते हैं।
- जीव किल्बिषिक देवलोक में सम्यक्त्व लेकर नहीं जा सकता हैं।
- अकर्मभूमिज मनुष्यों में पहला एवं चौथा गुणठाणा होता है और अन्तर्द्वीपज मनुष्य मिथ्यात्वी ही होते हैं।

**६१५) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में पांचवां गुणठाणा पाया जाता हैं?**

उ. नियम-व्रत धारण करने वाले ही जीव पांचवें गुणठाणे में होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य ही नियम धारण कर सकते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच में गर्भज पर्याप्ता पंचेन्द्रिय रूप पांच भेदों में ही पांचवां गुणठाणा हो सकता हैं।

मनुष्यों में भी अन्तर्द्वीप एवं अकर्मभूमि के मनुष्यों में पांचवां गुणठाणा नहीं होता हैं। कर्मभूमिज मनुष्यों के ४५ भेदों में से गर्भज अपर्याप्ता एवं संमूर्च्छिम के भेदों को छोडकर गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के १५ भेदों में ही पांचवां गुणठाणा पाया जाता हैं।

**६१६) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में छट्ठे से यावत् चौदहवां गुणठाणा पाया जाता हैं ?**

उ. छट्ठे गुणठाणे वाले सर्वविरति धर्म के आराधक होते हैं। गर्भज पर्याप्ता कर्मभूमिज मनुष्य ही संयम धारण कर सकता है अत: उनके गर्भज पर्याप्ता रूप पन्द्रह भेदों में ही छट्ठे से लगाकर चौदहवां गुणठाणा पाया जाता है।

**६१७) तिर्यंचों के ४८ भेदों में से कितने भेदों में कौनसी लेश्या पायी जाती हैं ?**

उ. एकेन्द्रिय के २२ भेदों में से अपर्याप्त बादर पृथ्वीकाय–अप्काय–वनस्पतिकाय में प्रथम चार लेश्याएँ होती हैं, शेष १९ भेदों में प्रथम तीन लेश्याएँ ही होती हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच के २० भेदों में से गर्भज पर्याप्ता जलचर–चतुष्पद–उरपरिसर्प–भुजपरिसर्प–खेचर (पांच भेद) में प्रथम चार लेश्या होती हैं। १५ भेदों में एवं विकलेन्द्रिय के छह भेदों में तीन लेश्या ही होती हैं।

इस प्रकार तिर्यंच के ४८ भेदों में से ८ भेदों में प्रथम चार (कृष्ण–नील–कापोत–तेजो) और ४० भेदों में प्रथम तीन(कृष्ण–नील–कापोत) लेश्या पायी जाती हैं।

**६१८) मनुष्य के ३०३ भेदों में से किसमें कौनसी लेश्या पायी जाती हैं ?**

उ. संज्ञी पर्याप्ता जीवों में छह लेश्या और असंज्ञी अपर्याप्ता जीवों में प्रथम तीन लेश्या होती हैं। मनुष्य के ३०३ भेदों में से संमूर्च्छिम अपर्याप्ता के १०१ और गर्भज अपर्याप्ता (लब्धि अपर्याप्ता) के १०१ भेदों में प्रथम तीन लेश्या ही होती हैं। परन्तु १०१ गर्भज अपर्याप्ता (लब्धि पर्याप्ता) भेदों में एवं गर्भज पर्याप्ता जीवों में छह लेश्या होती हैं।

**६१९) नरक के कितने भेदों में कौनसी लेश्या पायी जाती हैं ?**

| उ. नरक | लेश्या | भेद |
|---|---|---|
| रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा | कापोत | ४ |
| वालुकाप्रभा (साधिक तीन सागरोपम आयुष्य तक) | कापोत | २ |

| | | |
|---|---|---|
| वालुकाप्रभा (साधिक तीन सागरोपम आयुष्य से अधिक आयुष्य) | नील | २ |
| पंकप्रभा | नील | २ |
| धूमप्रभा (साधिक दस सागरोपम आयुष्य तक) | नील | २ |
| धूमप्रभा (साधिक दस सागरोपम आयुष्य से अधिक आयुष्य) | कृष्ण | २ |
| तम:प्रभा, तमस्तम: प्रभा | कृष्ण | ४ |

प्रत्येक नरक में नारकी के दो भेद होते हैं, इस अपेक्षा से छह भेदों में कापोत लेश्या, छह भेदों मे नील लेश्या एवं छह भेदों में कृष्ण लेश्या पायी जाती हैं।

**६२०) देवों के कितने भेदों में कौन-२ सी लेश्या पायी जाती हैं ?**

उ. देवताओं के १९८ भेदों में निम्न प्रकार लेश्याएँ हो सकती हैं।

| | देवता | लेश्या | भेद |
|---|---|---|---|
| १ | परमाधामी, व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, भवनपति | कृष्ण | १०२ |
| २ | व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, भवनपति | नील | ७२ |
| ३ | व्यंतर, वाणव्यंतर, तिर्यग्जृंभक, भवनपति | कापोत | ७२ |
| ४ | भवनपति, व्यंतर, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, पहला किल्बिषिक, १ ला-२ रा देवलोक, | तेजो | ७८ |
| ५ | दूसरा किल्बिषिक, ३-४-५ देवलोक, नवलोकांतिक | पद्म | २६ |
| ६ | तीसरा किल्बिषिक, ६ से १२ वां देवलोक, नवग्रैवेयक, पांच अनुत्तर | शुक्ल | ४४ |

**६२१) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद चारों कषाय युक्त होते हैं ?**

उ. सभी ५६३ भेदों में कषाय होता हैं।

**६२२) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद चारों कषाय से मुक्त हो सकते हैं ?**

उ. कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्त मनुष्य के १५ भेद ही कषाय मुक्त हो सकते हैं क्योंकि वे ही वीतराग अवस्था को उपलब्ध हो सकते हैं।

**६२३) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेद अप्रत्याख्यानी कषाय से मुक्त हो सकते हैं ?**

उ. जो जीव आगारधर्म (श्रावक धर्म) स्वीकार करते हैं, वे अप्रत्याख्यानी कषाय से मुक्त होते हैं। गर्भज पर्याप्ता संज्ञी तिर्यंच के पांच भेद एवं कर्मभूमिज गर्भज पर्याप्ता मनुष्य के १५ भेद ही इस कषाय से मुक्त हो सकते हैं।

**६२४) जीव के ५६३ भेदों में से कितने भेदों में कौनसा संघयण पाया जाता है?**

उ. जीव के पांच सौ त्रेसठ भेदों में से २३४ भेद (देव,नारकी,एकेन्द्रिय) संघयण रहित होते हैं। संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य एवं विकलेन्द्रिय के मात्र सेवार्त संघयण ही होता है।

वज्रऋषभनाराच संघयण– गर्भज मनुष्य–२०२, गर्भज तिर्यंच–१० = २१२

मध्यवर्ती चार संघयण–कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य–३०, गर्भज तिर्यंच–१०=४०

सेवार्त संघयण–संमूर्च्छिम मनुष्य–१०१, कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य–३०, पंचेन्द्रिय तिर्यंच २०, विकलेन्द्रिय–६= १५७

**६२५) संसारी जीवों के ५६३ भेदों में से अढी द्वीप में कितने भेद पाये जाते हैं ?**

उ. १) भरत क्षेत्र में ५६३ भेदों में से ९३ भेद पाये जाते हैं। तिर्यंचों ४८ भेद और भरत क्षेत्र के तीन मनुष्य– १) गर्भज पर्याप्ता २) गर्भज अपर्याप्ता ३) संमूर्च्छिम अपर्याप्ता ४) गर्भज अपर्याप्ता

२) महाविदेह में भी ९३ भेद भरतक्षेत्र की भाँति पाये जाते हैं।

३) जम्बूद्वीप में ५६३ भेदों में से १८३ भेद पाये जाते हैं। तिर्यंचों के ४८ भेद एवं भरत, महाविदेह, ऐरावत, हिमवंत, हिरण्यवंत, हरिवर्ष, रम्यक्, देवकुरू और उत्तरकुरू, इन ४५ भूमियों के गर्भज पर्याप्ता, गर्भज अपर्याप्ता, संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्य, इस प्रकार मनुष्य के १३५ भेद होते हैं। कुल १८३ भेद हुए।

४) लवण सुमद्र में ५६ अन्तर्द्वीपों के गर्भज पर्याप्ता, गर्भज अपर्याप्ता और संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्यों की अपेक्षा से १६८ (५६X३) और तिर्यंचों के ४८ भेद मिलाकर कुल २१६ भेद हुए।

५) धातकी खण्ड में जीव के ५६३ भेदों में से १०२ भेद पाये जाते हैं। दो भरत क्षेत्र, दो ऐरावत क्षेत्र, दो महाविदेह क्षेत्र, दो हिमंवत क्षेत्र, दो हिरण्यवंत क्षेत्र, दो हरिवर्ष क्षेत्र, दो रम्यक्क्षेत्र, दो देवकुरू क्षेत्र, दो उत्तरकुरू क्षेत्र, इन अठारह क्षेत्रों में गर्भज पर्याप्ता, गर्भज अपर्याप्ता और संमूर्च्छिम अपर्याप्ता मनुष्य होने से कुल ५४ भेद हुए और तिर्यंच के ४८ भेद शामिल करने से कुल १०२ भेद हुए।

६) कालोदधि में मात्र तिर्यंचों के ४८ भेद पाये जाते हैं।

७) अर्द्धपुष्करवर द्वीप के भेद १०२ धातकी खण्ड की भाँति होते हैं –४८ (तिर्यंच) + ५४ (मनुष्य) = १०२

८) अढी द्वीप में मनुष्य के कुल ३०३ भेद एवं तिर्यंच ४८ भेद मिलाकर ३५१ भेद हुए।

**६२६) संसारी जीवों के ५६३ भेदों में से कितने भेद अढीद्वीप के बाहर मिलते हैं?**

उ. अढीद्वीप के बाहर ५६३ भेदों में से ११८ भेद पाये जाते हैं–

| | |
|---|---|
| तिर्यंच– | ४६ (बादर तेउकाय के दो भेदों को छोडकर) |
| व्यंतर देव– | १६ (अपर्याप्ता–पर्याप्ता) |
| वाणव्यंतर देव– | १६(अपर्याप्ता–पर्याप्ता) |
| तिर्यग्जृंभक देव– | २०(अपर्याप्ता–पर्याप्ता) |
| ज्योतिष्क देव– | २० (अपर्याप्ता–पर्याप्ता) |
| कुल– | ११८ |

**६२७) नंदीश्वर द्वीप, नंदीश्वर समुद्र, मेरूगिरि में कितने भेद पाये जाते हैं ?**

उ. नंदीश्वर द्वीप–समुद्र में बादर तेउकाय के दो भेदों के अलावा तिर्यंच के ४६ भेद एवं मेरूगिरि में तिर्यंच के ४८ भेद पाये जाते हैं।

**६२८) अधोलोक में ५६३ भेदों में से कितने भेद पाये जाते हैं ?**

| | |
|---|---|
| उ. नरक के | १४ भेद (अपर्याप्ता– पर्याप्ता) |
| भवनपति के | २० भेद (अपर्याप्ता– पर्याप्ता) |
| परमाधामी के | ३० भेद (अपर्याप्ता– पर्याप्ता) |

| | |
|---|---|
| तिर्यंच के | ४८ भेद (अपर्याप्ता – पर्याप्ता) |
| मनुष्य के | ३ भेद (गर्भज पर्याप्ता–अपर्याप्ता एवं संमूर्च्छिम अपर्याप्ता) |
| कुल | ११५ भेद |

**६२९) तिर्च्छा लोक में संसारी जीवों के कितने भेद पाये जाते हैं ?**

| | | |
|---|---|---|
| उ. | मनुष्यों के | ३०३ भेद |
| | तिर्यंच के | ४८ भेद |
| | व्यंतर देव के | १६ भेद |
| | वाणव्यंतर देव के | १६ भेद |
| | तिर्यग्जृंभक के | २० भेद |
| | ज्योतिष्क के | २० भेद |
| | कुल | ४२३ भेद |

**६३०) उर्ध्वलोक में जीवों के कितने भेद पाये जाते हैं ?**

| | | |
|---|---|---|
| उ. | तिर्यंचों के | ४६ भेद (बादर तेउकाय के दो भेद नहीं होते) |
| | किल्बिषिक देवों के | ६ भेद |
| | वैमानिक देवों के | २४ भेद |
| | नवलोकान्तिक देवों के | १८ भेद |
| | नवग्रैवेयक देवों के | १८ भेद |
| | अनुत्तर वैमानिक देवों के | १० भेद |
| | कुल | १२४ भेद |

**६३१) लोक के अन्त भाग में, सातवीं नरक के नीचे एवं मुट्ठी में कितने भेद पाये जाते हैं ?**

उ. सभी में १२–१२ भेद पाये जाते हैं। पृथ्वीकायादि पांच सूक्ष्म और बादर वायुकाय, यह छह भेद पर्याप्ता–अपर्याप्ता की अपेक्षा से कुल बारह होते हैं।

**६३२) बारह देवलोकों में जीवों के कितने भेद पाये जाते हैं ?**

उ. तीन किल्बिषिक देवों के – ६

| | | |
|---|---|---|
| बारह देवलोकों के देव | – | २४ |
| नवलोकान्तिक देवों के | – | १८ |
| एकेन्द्रिय के | – | २० (बादर तेउकाय के दो भेद नहीं) |
| भेद | – | ६८ |

**६३३) नवग्रैवेयक में जीवों के कितने भेद पाये जाते हैं ?**

उ. नवग्रैवेयक देवों के – १८

एकेन्द्रिय के – १४ (पृथ्वीकायादि पांच सूक्ष्म और बादर पृथ्वी–वायु पर्याप्ता–अपर्याप्ता की गणना से)

३२

## सिद्ध विवेचन खण्ड

**६३४) सिद्ध किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जिन्होंने आठों कर्मों का समूल– संपूर्ण नाश कर दिया है, जन्म–मृत्यु के चक्र से मुक्त होकर मोक्ष में बिराजमान हो चुके हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं।

**६३५) सिद्धों के कितने भेद होते हैं ?**

उ. सिद्धों के पन्द्रह भेद होते हैं जो निम्नलिखित हैं –

१) **अतीर्थ सिद्धः** वे जीव, जो चतुर्विध संघ की स्थापना, तीर्थ की स्थापना से पूर्व सिद्ध होते हैं, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं, जैसे मरूदेवी माता।

२) **तीर्थ सिद्धः** वे जीव, जो तीर्थंकर परमात्मा के शासन में मोक्ष में जाते हैं। तीर्थ की स्थापना के बाद सिद्ध बनते हैं, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं, जैसे गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी आदि।

३) **तीर्थंकर सिद्धः** वे जीव, जो अरिहंत–तीर्थंकर के रूप में मोक्ष उपलब्ध करते हैं, वे तीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं, जैसे महावीरादि चौबीस तीर्थंकर।

४) **अतीर्थंकर सिद्धः** वे जीव, जो सामान्य केवली के रूप मे सिद्धता की संपदा उपलब्ध करते हैं, वे अतीर्थंकर सिद्ध कहलाते हैं, जैसे गौतमस्वामी, चंदनबाला आदि।

५) **गृहलिंग सिद्धः** वे जीव, जो गृहस्थावस्था में केवलज्ञान प्राप्त करते हैं और मोक्ष में जाते हैं, वे गृहलिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे मरूदेवी माता आदि।

६) **स्वलिंग सिद्धः** वे जीव, जो तीर्थंकर की वाणी के अनुरूप श्रमणवस्था में सिद्ध बनते हैं, वे स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे सुधर्मा स्वामी आदि।

७) **अन्यलिंग सिद्धः** वे जीव, जो श्रमण के अतिरिक्त अन्य वेशएवं अवस्था में सिद्ध बनते हैं, वे अन्य लिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे वल्कलचिरि आदि।

८) **पुरूषलिंग सिद्धः** वे जीव, जो पुरूषावस्था में सिद्ध बनते हैं, वे पुरूषलिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे पुंडरिक स्वामी आदि।

९) **स्त्रीलिंग सिद्धः** वे जीव, जो स्त्री अवस्था में सिद्धता प्राप्त करते हैं, वे स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाते है, जैसे चंदनबाला, मृगावती आदि।

१०) **नपुंसक लिंग सिद्धः** वे जीव, जो नपुंसक अवस्था में सिद्ध बनते हैं, वे नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे गांगेय अणगार आदि।

११) **प्रत्येक बुद्ध सिद्धः** वे जीव, जो निमित्तों के द्वारा असारता का बोध प्राप्त करके सिद्ध पद प्राप्त करते हैं, वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध कहलाते हैं, जैसे नगाति, दुम्मुह आदि।

१२) **स्वयंबुद्ध सिद्धः** वे जीव, जो स्वयं से बोध प्राप्त कर सिद्धि पद प्राप्त करते हैं, वे स्वयंबुद्ध कहलाते हैं, जैसे महावीर, ऋषभादि।

१३) **बुद्धबोधित सिद्धः** किसी बोधि प्राप्त जीव से बोध प्राप्त करके सिद्धता पाने वाले बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं, जैसे गौतम, जम्बू आदि।

१४) **एक सिद्धः**अकेले ही सिद्ध पद को उपलब्ध वाले एक सिद्ध कहलाते हैं, जैसे महावीर।

१५) **अनेक सिद्धः** अनेक आत्माओं के साथ सिद्धि प्राप्त करने वाले अनेक सिद्ध कहलाते हैं, जैसे पार्श्व, ऋषभादि।

**६३६) सिद्धों के बत्तीस गुण जो आचारांग सूत्र में बताये गये हैं, वे कौनसे हैं ?**

उ. १) दीर्घ नहीं　　२) ह्रस्व नहीं　　३) त्र्यस्र नहीं

४) चतुरस्र नहीं　　५) परिमंडल नहीं　　६) गोल नहीं

७) पीले नहीं　　८) सफेद नहीं　　९) काले नहीं

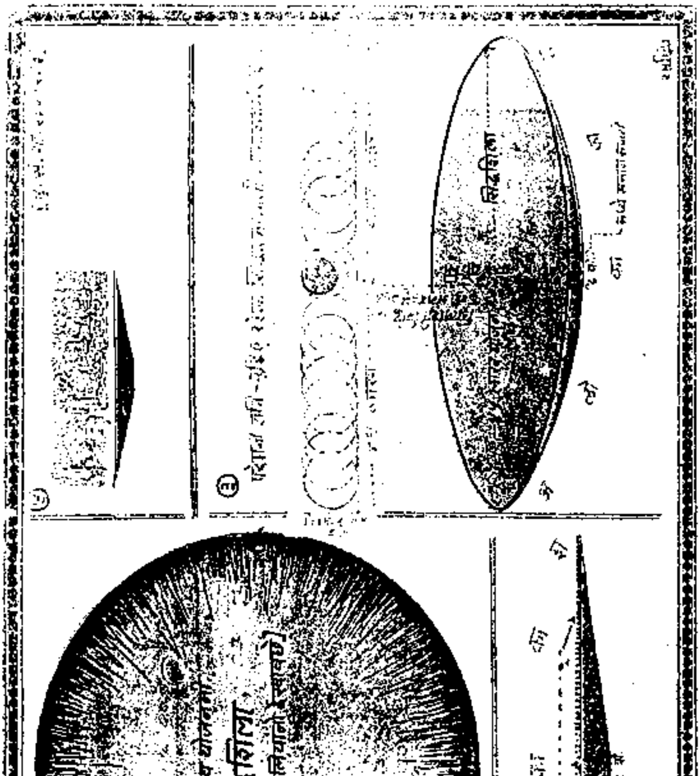


चित्र : सिद्धशिला का स्वरूप

| | | |
|---|---|---|
| १०) नीले नहीं | ११) लाल नहीं | १२) दुर्गंध वाले नहीं |
| १३) सुंगध वाले नहीं | १४) तीखे नहीं | १५) कषायेले नहीं |
| १६) खट्टे नहीं | १७) मधुर नहीं | १८) कडवे नहीं |
| १९) कोमल नहीं | २०) भारी नहीं | २१) हल्के नहीं |
| २२) स्निग्ध नहीं | २३) रूक्ष नहीं | २४) शीत नहीं |
| २५) उष्ण नहीं | २६) कर्कश नहीं | २७) पुंरूष नहीं |
| २८) नपुंसक नहीं | २९) स्त्री नहीं | ३०) काया का संग नहीं |
| ३१) जन्म-मरण नहीं | | |

१) प्रथम छह भेद आकार रहित अवस्था बताते हैं।

२) अगले पांच भेद वर्ण रहित अवस्था बताते हैं।

३) अगले दो भेद गंध रहित अवस्था बताते हैं।

४) अगले पांच भेद रस रहित अवस्था बताते हैं।

५) अगले आठ भेद स्पर्श रहित अवस्था बताते हैं।

६) अगले तीन भेद वेद रहित अवस्था बताते हैं।

७) अगले दो भेद जन्म-मरण एव शरीर रहित अवस्था बताते हैं।

**६३७) एक समय में कितने सिद्ध होते हैं ?**

उ. जघन्य से एक, दो, तीन और उत्कृष्ट से एक सौ आठ सिद्ध होते हैं।

**६३८) किस गति से आये कितने जीव एक समय में उत्कृष्ट रूप से सिद्ध हो सकते हैं ?**

| उ. | गति | १ समय में सिद्धि |
|---|---|---|
| १) | प्रथम तीन नरकों से | १० |
| २) | चौथी नरक से | ४ |
| ३) | शेष तीन नरकों से | सिद्धि नहीं |
| ४) | पंचेन्द्रिय तिर्यंच से (पुरूष वेदी) | १० |
| ५) | पंचेन्द्रिय तिर्यंच से (स्त्री वेदी) | १० |

| | | |
|---|---|---|
| ६) | पृथ्वीकाय से आये | ४ |
| ७) | अप्काय से आये | ४ |
| ८) | वनस्पतिकाय से आये | ६ |
| ९) | तेउ–वायुकाय से आये | सिद्धि नहीं |
| १०) | मनुष्य गति से आये (पुरूष वेद से आये) | १० |
| ११) | मनुष्य गति से आये (स्त्री वेद से आये) | २० |
| १२) | भवनपति देवों से | १० |
| १३) | भवनपति देवियों से | १० |
| १४) | व्यंतर देवों से | १० |
| १५) | व्यंतर देवियों से | ५ |
| १६) | ज्योतिष्क देवों से | १० |
| १७) | ज्योतिष्क देवियों से | २० |
| १८) | वैमानिक देवों से | १०८ |
| १९) | वैमानिक देवियों से | ४ |

**६३९) वेद की अपेक्षा से एक समय में कितने सिद्ध हो सकते हैं ?**

उ.

| | |
|---|---|
| १) पुरूष से पुरूष होकर | १०८ |
| २) पुरूष से स्त्री–नपुंसक होकर | १० |
| ३) स्त्री से पुरूष–स्त्री–नपुंसक होकर | १० |
| ४) नपुंसक से पुरूष–स्त्री–नपुंसक होकर | १० |

**६४०) सिद्ध गति कितने समय तक सिद्धि से रहित कही गयी है ? (विरह काल)**

उ. जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से छह माह।

**६४१) सिद्धों के आठ गुण कौनसे है ?**

उ. १) अनन्त ज्ञान २) अनन्त दर्शन ३) अनन्त चारित्र ४) अक्षय स्थिति ५) अगुरूलघुपन ६) अरूपीत्व ७) अनन्त वीर्य ८) अनन्त सुख।

**६४२) सिद्धों की अवगाहना कितनी होती है ?**

उ. सिद्ध भगवंतों के शरीर नहीं होने से अवगाहना नहीं होती है परन्तु तीर्थंकर की अवगाहना उत्कृष्ट रूप से ३३३ धनुष्य और ३२ अंगुल प्रमाण में और जघन्य अवगाहना ४ $^{२}/_{३}$ हाथ प्रमाण होती है। सामान्य केवली की जघन्य अवगाहना ३२ अंगुल प्रमाण की होती है। इस प्रकार जीवात्मा अपनी शारीरिक अवगाहना का एक तिहाई भाग छोडकर दो तिहाई भाग में सिद्धलोक में अवस्थित रहता है पर वह स्थान/अवगाहना निराबाध होती है। उस भाग में अन्य आत्माएँ भी स्थित होती हैं।

**६४३) सिद्धशिला कितने योजन परिमाण में है ?**

उ. पैंतालीस लाख योजन।

**६४४) अनुत्तर विमानों से कितने योजन उपर सिद्धशिला है ?**

उ. बारह योजन।

**६४५) सिद्धशिला के बारह नाम कौनसे हैं ?**

उ. १) ईषत् २) ईषत्प्राग्भरा ३) तनुतन्विका ४) सिद्धि ५) सिद्धालय ६) मुक्ति ७) मुक्तालय ८) लोकाग्र ९) तन्वी १०) लोकस्तूपिका ११) लोकाग्र प्रतिवाहिनी १२) सर्वप्राणभूत सत्य सुखवहा।

**६४६) सिद्ध शिला से कितने योजन उपर अलोक है ?**

उ. एक योजन।

**६४७) अगले भव में कौन-२ मोक्षगामी हो सकते हैं ?**

उ. १) समस्त देव– मोक्ष (परमाधामी सिवाय)

२) मनुष्य– मोक्ष

३) पंचेन्द्रिय तिर्यंच – मोक्ष

४) नारकी– मोक्ष (सातवीं नरक सिवाय)

५) पृथ्वी–अप्–वनस्पति– मोक्ष

६) विकलेन्द्रिय– मोक्ष

७) वायुकाय–तेउकाय– मनुष्य भव नहीं (तिर्यंच गति में धर्मश्रवण)

# काल विवेचन खण्ड

**६४८) काल के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद– १) व्यवहार काल– समय, आवलिका, स्तोक, दिन–रात्रि आदि अथवा सैकण्ड, मिनट, घण्टा आदि।

२) निश्चय काल– अखण्डित रूप से प्रवाहित समय निश्चय काल कहलाता है।

**६४९) समय किसे कहते है ?**

उ. काल का वह अविभाज्य अंश, जिसका केवलज्ञानी की दृष्टि भी विभाग नहीं हो सके, वह समय कहलाता है।

**६५०) समय की सूक्ष्मता को पारिभाषित करनेवाले उदाहरण दीजिये ?**

उ. १) पलक के एक झपकारे में असंख्यात समय बीत जाते हैं।

२) गले हुए सुत के कपडे को कोई महाबलशाली दो भागों में विभाजित करें तो उस कपडे के निकटतम दो तन्तुओं को टूटने के बीच में असंख्यात समय व्यतीत हो जाते हैं।

**६५१) एक आवलिका में कितने समय होते हैं ?**

उ. असंख्यात समय।

**६५२) एक क्षुल्लक भव में कितनी आवलिकाएँ होती हैं ?**

उ. २५६।

**६५३) एक श्वासोच्छ्वास में कितनी आवलिकाएँ एवं क्षुल्लक भव होते हैं ?**

उ. एक श्वासोच्छ्वास में ४४४६.५ आवलिकाएँ एवं १७.५ क्षुल्लक भव होते हैं।

**६५४) सात श्वासोच्छ्वास का एक क्या होता है ?**

उ. स्तोक।

**६५५) एक लव में कितने स्तोक होते हैं ?**

उ. ७ स्तोक।

**६५६) एक घडी में कितने मिनट होते हैं ?**

उ. २४ मिनट।

**६५७) चौबीस मिनट में कितने लव होते हैं ?**

उ. ३८ $^{1}/_{2}$ लव।

**६५८) एक मुहूर्त कितनी घडी का होता हैं ?**

उ. दो घडी का।

**६५९) अन्तर्मुहूर्त कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. तीन प्रकार के – १) जघन्य अन्तर्मुहूर्त २) मध्यम अन्तर्मुहूर्त ३) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त

**६६०) अन्तर्मुहूर्त के तीनों प्रकारों को स्पष्ट करो ?**

उ. **१) जघन्य अन्तर्मुहूर्त** – दो समय से नौ समय के काल को जघन्य अन्तर्मुहूर्त कहते है। इसे समय पृथक्त्व भी कहते है।

**२) मध्यम अन्तर्मुहूर्त**– जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त के मध्य का काल मध्यम अन्तर्मुहूर्त कहलाता है।

**३) उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त**– मुहूर्त (४८ मिनट) में से एक समय न्यून (कम) जितना काल उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कहलाता है।

**६६१) कितनी आवलिकाओं का एक मुहूर्त होता है ?**

उ. १,६७,७७,२१६ से कुछ अधिक।

**६६२) पन्द्रह मुहूर्त का एक क्या होता है ?**

उ. एक दिन (एक रात्रि)

**६६३) ३० मुहूर्त में क्या-२ होते हैं ?**

उ. एक अहोरात्र या ६० घडी या २४ घण्टे।

**६६४) अहोरात्र किसे कहते है ?**

उ. दिन और रात्रि को मिलाकर (३० मुहूर्त) को एक अहोरात्र कहा जाता है।

**६६५) एक पक्ष में कितने अहोरात्र होते हैं ?**

उ. १५।

**६६६) एक मास में कितने पक्ष होते हैं ?**

उ. दो पक्ष।

**६६७) एक ऋतु कितने माह की होती है ?**

उ. दो माह की।

**६६८) छह मास का एक क्या होता है ?**

उ. अयन।

**६६९) अयन कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. दो प्रकार के – १) उत्तरायन २) दक्षिणायन।

**६७०) कितने अयन का एक वर्ष होता है ?**

उ. दो अयन।

**६७१) कितने वर्षों का एक युग होता है ?**

उ. पांच वर्षों का।

**६७२) कितने वर्षों का एक पूर्व होता है ?**

उ. ७० लाख ५६ हजार करोड वर्षों का एक पूर्व होता है।

**६७३) एक पल्योपम में कितने वर्ष होते हैं ?**

उ. असंख्य।

**६७४) एक सागरोपम कितने पल्योपम का होता है ?**

उ. दस कोडाकोडी पल्योपम।

**६७५) कोडाकोडी से क्या आशय है ?**

उ. करोड को करोड से गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है, वह कोडाकोडी कहलाती है।

**६७६) अनन्त काल चक्र का एक क्या होता है ?**

उ. पुद्गल परावर्तन काल।

**६७७) दस कोडाकोडी सागरोपम की एक क्या होती है ?**

उ. अवसर्पिणी अथवा उत्सर्पिणी।

**६७८) एक काल चक्र कितने सागरोपम का होता है ?**

उ. बीस कोडाकोडी सागरोपम का।

**६७९) पल्योपम के कितने प्रकार होते हैं ?**

उ. तीन प्रकार का– १) उद्धार पल्योपम २) अद्धा पल्योपम ३) क्षेत्र पल्योपम।

**६८०) उद्धार पल्योपम के कितने भेद होते हैं ?**

उ. दो भेद– १) बादर उद्धार पल्योपम २) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम।

**६८१) बादर उद्धार पल्योपम किसे कहते है ?**

उ. उत्सेधांगुल प्रमाण से एक योजन लम्बे, एक योजन चौडे और एक योजन गहरे कुएं में देवकुरू–उत्तरकुरू क्षेत्र के सात दिन के युगलिक शिशु के एक बाल के सात बार आठ–आठ टुकडे करना। एसे संख्यात टुकडों से वह कुआं इस तरह भरा जाये कि वे टुकडे आग से जल न सके, पानी से न बह सके, हवा से न उड सके। यदि चक्रवर्ती की सेना भी उपर से निकले तो भी हिल न सके। उस कुएं में से प्रत्येक समय एक–२ टुकडा निकालना। जितने काल में वह कुआं खाली हो, उसे बादर उद्धार पल्योपम कहते है।

**६८२) सूक्ष्म उद्धार पल्योपम किसे कहते है ?**

उ. बादर उद्धार पल्योपम की भाँति कुए में सात दिन के नवजात शिशु के एक बाल के असंख्य टुकडे किये जाये, कुए को पूर्ववत् भरा जाये और प्रति समय एक–एक टुकडा निकाला जाये। जितने समय में वह कूप (कुआं) खाली हो, उसे सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते है।

**६८३) अद्धा पल्योपम के दोनों भेद समझाइये ?**

उ. १) बादर अद्धा पल्योपम– बादर उद्धार पल्योपम की भाँति भरे हुए कुएँ में से प्रति सौ वर्ष में बाल का एक टुकडा निकाला जाये। जितने समय में वह कुआं खाली हो, उसे बादर अद्धा पल्योपम कहते है।

२) सूक्ष्म अद्धा पल्योपम– सूक्ष्म उद्धार पल्योपम की भाँति भरे हुए कुए में प्रति सौ वर्ष में एक टुकडा निकाला जाये और जितने समय में वह खाली हो, उतने समय को

सूक्ष्म अद्धा पल्योपम कहते है।

**६८४) क्षेत्र पल्योपम के दोनों भेद स्पष्ट कीजिये ?**

उ. **बादर क्षेत्र पल्योपम :** बादर उद्धार पल्योपम को समझाने के लिए कुए में जो वालाग्र भरा है, उस वालाग्र को स्पर्श किये हुए आकाश प्रदेश में एक-एक समय में से एक-एक आकाश प्रदेश को बाहर निकालने में जितना समय लगे, उस समय को बादर क्षेत्र पल्योपम कहते हैं।

**सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम :** सूक्ष्म उदार पल्योपम को समझाने के लिए किए में जो वालाग्र भरा है, उस वालाग्र को स्पर्श किये हुए और नहीं स्पर्शे हुए आकाश प्रदेशों में से एक-एक समय में एक एक आकाश प्रदेश को बाहर निकालने में जितना समय लगे, उस समय को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते हैं।

**६८५) सागरोपम के कितने भेद होते हैं ?**

उ. **१) उद्धार सागरोपम :**

अ) दस कोडाकोडी बादर उद्धार पल्योपम का एक बादर उद्धार सागरोपम होता है।

ब) दस कोडाकोडी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है।

**२) अद्धा सागरोपम :**

अ) दस कोडाकोडी बादर अद्धा पल्योपम का एक बादर अद्धा सागरोपम होता है।

ब) दस कोडाकोडी सूक्ष्म अद्धा पल्योपम का एक सूक्ष्म अद्धा सागरोपम होता है।

**३) क्षेत्र सागरोपम :**

अ) दस कोडाकोडी बादर क्षेत्र पल्योपम का एक बादर क्षेत्र सागरोपम होता है।

ब) दस कोडाकोडी सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का एक सूक्ष्म क्षेत्र सागरोपम होता है।

**६८६) अंगुल के भेदों को समझाईये ?**

उ. अंगुल तीन प्रकार के होते हैं-

**१) आत्मांगुल-** जिस काल में जो मनुष्य होते हैं, उनके अपने अंगुल के प्रमाण को आत्मांगुल कहते है।

**२) उत्सेधांगुल-** अवसर्पिणी काल के पांचवें आरे का आधा भाग अर्थात् १०५००

वर्ष पूर्ण होने के बाद मनुष्य के अंगुल का जो प्रमाण होता है उसे उत्सेधांगुल कहते है।

**३) प्रमाणांगुल–** उत्सेधांगुल से हजार गुणा बडे अंगुल को प्रमाणांगुल कहते है।

**६८७) अवसर्पिणी काल एवं उत्सार्पिणी काल किसे कहते है ?**

उ. जिस काल में जीवों के संघयण, संस्थान, अवगाहना, आयुष्य, कर्म, बल, पराक्रम, रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि हीन होते जाते हैं, उसे अवसर्पिणी काल कहते है। जिस काल में संघयण, संस्थान, अवगाहना, आयुष्य, कर्म, बल, पराक्रम, रूप, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श आदि मे वृद्धि होती है, उसे उत्सर्पिणी काल कहते है।

**६८८) अवसर्पिणी के आरों की विशेषता बताओ ?**

उ. **१) सुषम सुषमा–** यह आरा ५ कोडाकोडी सागरोपम का आरा होता है। मनुष्यों का आयुष्य तीन पल्योपम का होता है और अवगाहना तीन कोस की होती है। माता-पिता का आयुष्य जब छह मास का शेष रहता है तब एक युगल (बालक–बालिका) का जन्म होता है, वे युगलिक कहलाते हैं। माता–पिता उनका ४९ दिन तक पालन पोषण करते हैं। जब वे युवा हो जाते हैं तब पति–पत्नी का व्यवहार करने लगते हैं। मरकर देवलोक में जाते हैं। इस आरे में असि–मसि–कृषि का कार्य नहीं होता है। कल्प–वृक्षों से सामग्री प्राप्त करते हैं। तीन–तीन दिन के अन्तराल में तुअर दाने के प्रमाण में आहार ग्रहण करते हैं। इस आरे में सुख ही सुख होने–इसे सुषम–सुषमा कहा जाता है। इस आरे के मनुष्यों में पहला संघयण और पहला संस्थान होता है।

**२) सुषम–** इस आरे में पहले आरे की अपेक्षा सुख कम होता है पर दुःख का पूर्णतया अभाव होता है। अवगाहना दो कोस की, आयुष्य दो पल्योपम का होता है। यह आरा तीन कोडाकोडी सागरोपम का होता है। माता–पिता युगलिकों का पालन पोषण ६४ दिन तक करते हैं। दो दिन के अन्तर में बोर के प्रमाण में आहार ग्रहण करते है। शेष बातें प्रथम आरे के समान होती है।

**३) सुषम दुषम–** इस आरे में दुःख होता है पर उसकी अपेक्षा सुख ज्यादा होता है। यह आरा दो कोडाकोडी सागरोपम का होता है। इस आरे के तीन भाग होते है। प्रथम दो भागों में उत्पन्न हुए युगलिकों की अवगाहना एक कोस की, आयुष्य एक पल्योपम

का होता है। माता पिता ७९ दिनों तक युगलिक पुत्र-पुत्री का पालन-पोषण करते हैं। एक दिन के अन्तर में आंवले के प्रमाण में आहार करते हैं। इसके तीसरे भाग में छह संघयण और छह संस्थान होते हैं। अवगाहना एक हजार धनुष से कम होती है। जघन्य आयुष्य संख्यात वर्ष का और उत्कृष्ट आयुष्य असंख्यात वर्ष का होता है। इस आरे में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती होते हैं। जीव तीसरे भाग में स्वकृत कर्मों के अनुसार चारों गतियों में जाते हैं एवं कर्मक्षय कर मोक्ष में भी जाते हैं।

४) **दुषम सुषम–** चौथे आरे का काल बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम का होता है। दुःख ज्यादा और सुख कम होने से इसे दुषम सुषम आरा कहते है। इस आरे के मनुष्यों का जघन्य आयुष्य अन्तर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट आयुष्य एक करोड पूर्व वर्षों का होता है। इस आरे में छह संघयण और छह संस्थान होते हैं।

जीव स्वकृत कर्मों के परिणाम स्वरूप चारों गतियों में जाते हैं। समस्त कर्मों का क्षय कर सिद्धावस्था को भी उपलब्ध करते हैं। इस आरे में तेवीस तीर्थंकर परमात्मा, ग्यारह चक्रवर्ती, नौ बलदेव, नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव होते हैं।

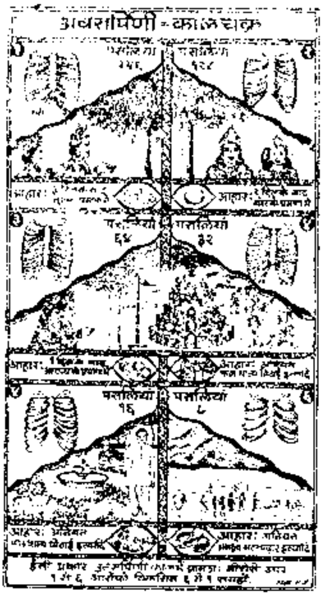


चित्र : अवसर्पिणी काल

५) **दुषम**– अवसर्पिणी के दुषम नामक पांचवें आरे में दुःख बहुत होता है अतः इस दुषम आरा कहते है। इसका काल इक्कीस हजार वर्षों का होता है। अन्तिम संघयण, अन्तिम संस्थान होता है ! उत्कृष्ट अवगाहना सात हाथ की होती है। जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट आयु साधिक सौ वर्ष की होती है। जीव स्वकर्मानुसार चारों गातियों में जाते हैं। चौथे आरे में उत्पन्न जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है पर पांचवें आरे में उत्पन्न जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता है। इस आरे के अन्तिम दिन का तीसरा भाग बीतने पर जाति, धर्म, व्यवहार आदि का लोप (विच्छेद) हो जाता है।

६) **दुषम दुषम**– इक्कीस हजार वर्ष का यह छट्ठा आरा अत्यन्त दुःखमय होता है। प्राणी अतिशय दुःखी होते हैं। भयंकर आंधियां, संवर्त्तक वायु चलती है। आग, बिजली, विष, क्षार की बरसात होती है। इससे वनस्पतियों का विनाश हो जाता है।

नदियों में गंगा और सिंधु नदियां ही रहती हैं। नदियों में पानी रथ की धुरी प्रमाण जितना ही गहरा होता है। उसमें भी भयंकर जलचर प्राणी निवास करते हैं। सूर्य की किरणें अति तापयुक्त और चन्द्रमा की किरणें अतिशीतल होती है।

भूमि तपे हुए तवे के समान और कीचड, धूल आदि से भरी हुई होती है।

छट्ठे आरे के मनुष्यों की अवगाहना एक हाथ की, पुरूषों का आयुष्य बीस वर्ष का एव स्त्रियों का सोलह वर्ष का होता है। सन्तानें अधिक होती हैं। वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, संघयण, संस्थान, रूप आदि सब कुछ अशुभ होते हैं। शरीर व्याधियुक्त होता है। अत्यधिक राग–द्वेष–कषाय वाले प्राणी होते हैं।

गंगा तथा सिंधु नदियों के किनारे स्थित ७२ बिलों में मनुष्य रहते हैं। वे सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय मत्स्य आदि को पकडकर रेत में गाड देते हैं। सुबह के छिपाये मत्स्य शाम को, शाम को छिपाये मत्स्य सुबह में निकालकर खाते हैं। हिंसा से परिपूर्ण जीव मरकर प्रायः नरक और तिर्यंच योनि में उत्पन्न होते हैं।

**६८९) उत्सर्पिणी के आरों की विशेषता बताओ ?**

उ. **१) दुषम दुषम**– अवसर्पिणी के छट्ठे आरे की भाँति यह आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। अवसर्पिणी का छट्ठा आरा आषाढ शुक्ला पूर्णिमा को पूर्ण होता है और

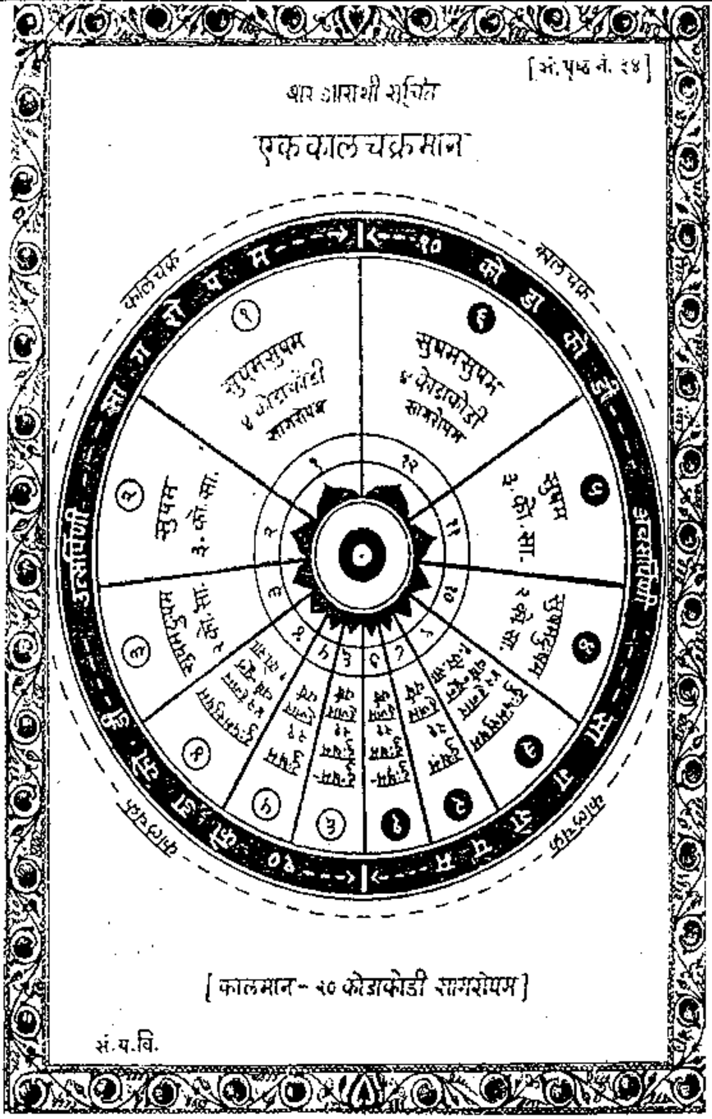


चित्र : एक काल चक्र का समय परिमाण

श्रावण वदि प्रतिपदा को अभिजित नक्षत्र में चन्द्रमा आने पर उत्सर्पिणी काल के प्रथम आरे का प्रारंभ होता है। वर्ण, रस, स्पर्श, स्थिति, अवगाहना में उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।

**२) दुषम–** अवसर्पिणी के पांचवें आरे जैसा यह दूसरा आरा इक्कीस हजार वर्ष का होता है। इस आरे में सात–२ दिन तक पांच मेघ बरसते हैं–

**१) पुष्कर संवर्तक मेघ–** इससे अशुभ भाव, रूक्षता, उष्णता आदि नष्ट हो जाती हैं।

**२) क्षीर मेघ–** शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की उत्पत्ति होती है।

**३) घृत मेघ–** भूमि में स्नेह (चिकनाहट) की उत्पत्ति होती है।

**४) अमृत मेघ–** वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं।

**५) रस मेघ–** इससे वनस्पतियों में फूल, फल, पत्ते आदि की वृद्धि होती हैं। भूमि हरी–भरी और रमणीय हो जाती है। उस समय बिलवासी लोग अपने–२ बिल से बाहर निकलकर नृत्य करके अपना आनंद अभिव्यक्त करते हैं।

फूल, फल से निर्वाह प्रणाली समझकर वे सभी मांसाहार का त्याग कर देते हैं। मनुष्यों के अंतिम संघयण–संस्थान होता हैं। आयुष्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त का और उत्कृष्ट साधिक सौ वर्ष का होता है। जीव कर्मानुसार चारों गतियों में जाते हैं पर मोक्ष में नहीं जाते हैं।

**३) दुषम सुषम–** यह आरा बयालीस हजार वर्ष न्यून एक कोडाकोडी सागरोपम का होता है। अवसर्पिणी के चौथे आरे के समान इसका स्वरूप है।

**४) सुषम दुषम–** इसे अवसर्पिणी के तीसरे आरे के समान समझना चाहिये।

**५) सुषम–** इसे अवसर्पिणी के दूसरे आरे के समान समझना चाहिये।

**६) सुषम सुषम–** इसे अवसर्पिणी के पहले आरे के समान समझना चाहिये।

**६९०) कर्मभूमियों और अकर्मभूमियों में आरों के क्या भाव रहते हैं?**

| | | |
|---|---|---|
| उ. | देवकुरू और उत्तरकुरू क्षेत्र | सुषम–सुषम आरे जैसा |
| | हरिवर्ष और रम्यक् क्षेत्र | सुषम आरे जैसा |
| | हैमवन्त और हैरण्यवंत क्षेत्र | सुषम दुषम आरे जैसा |

| | |
|---|---|
| महाविदेह क्षेत्र | दुषम सुषम आरे जैसा |
| भरत और ऐरावत क्षेत्र | छहों आरे होते हैं। |

**६९१) अन्तर्द्वीपज युगलिक मरकर निश्चित् रूप से किस देवलोक जाते हैं ?**

उ. भवनपति निकाय और व्यंतर निकाय में।

**६९२) अन्तर्द्वीपों की संक्षेप में व्याख्या कीजिये ?**

उ. अन्तर्द्वीप छप्पन हैं जिसमे युगलिक मनुष्य निवास करते हैं। वे एकांतर आहार करते हैं। ७९ दिवस तक संतान का पालन पोषण करते हैं। उनकी अवगाहना ८०० धनुष की और आयु पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी होती है।

**६९३) कल्पवृक्ष किसे कहते है एवं उनके कितने भेद हैं ?**

उ. मन-इच्छित वस्तुओं, पदार्थों, साधनों की पूर्ति करने वाले वृक्षों को कल्पवृक्ष कहते है ! ये देवाधिष्ठित होते हैं। इनके दस भेद होते हैं जो निम्न हैं-

**१) गृहांग**- रहने के लिये घर प्रदान करता है।

**२) ज्योतिषांग**- ज्योति/प्रकाश प्रदान करता है।

**३) भूषणांग**- विविध प्रकार के आभूषण प्रदान करता है।

**४) भोजनांग** - विविध प्रकार की आहार सामग्री प्रदान करता है।

**५) वस्त्रांग** - विविध प्रकार के वस्त्र अर्पण करता है।

**६) चित्ररसांग**- विविध प्रकार के पेय पदार्थ प्रदान करता है।

**७) तूर्यांग**- विविध प्रकार के वाजिंत्र प्रदान करता है।

**८) कुसुमांग**- विविध प्रकार के सुगंधित पदार्थ प्रदान करता है।

**९) भाजनांग** - विविध प्रकार के बर्तन प्रदान करता है।

**१०) दीपांग**- विविध प्रकार के दीपक प्रकट करता है।

**६९४) हर अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में कितने महान् पुरूष होते हैं ?**

उ. २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासदेव, ये त्रेसठ महापुरूष हर अवसर्पिणी एवं उत्सर्पिणी में होते हैं। इन्हें त्रिषष्ठिशलाका पुरूष कहते हैं। इनकी संख्या न घटती हैं, न बढ़ती हैं।

# माप विवेचन खण्ड

**६९५) अंगुल का असंख्यातवां भाग किसे कहते है ?**

उ. सुई की नोंक जितने स्थान को घेरती है, उस भाग का असंख्यातवां भाग अंगुल का असंख्यातवां भाग कहलाता है।

**६९६) कितने अंगुल की एक मुट्ठी होती है ?**

उ. छह अंगुल की।

**६९७) कितनी मुट्ठी की एक बेंत होती है ?**

उ. दो मुट्ठी की।

**६९८) एक हाथ कितनी बेंत का होता है ?**

उ. दो बेंत का।

**६९९) एक दण्ड कितने हाथ का होता है ?**

उ. दो हाथ का।

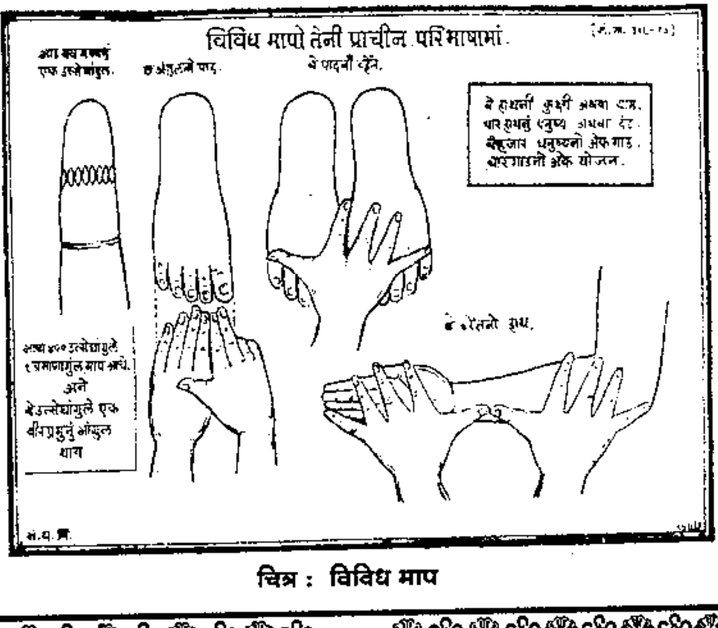


चित्र : विविध माप

**७००) एक धनुष्य कितने दण्ड का होता है ?**

उ. दो दण्ड का।

**७०१) धनुष्य पृथक्त्व किसे कहते है ?**

उ. दो से नौ धनुष्य प्रमाण को धनुष्य पृथक्त्व कहते है।

**७०२) धनुष्य पृथक्त्व के भेद बताओ ?**

उ. धनुष्य पृथक्त्व भेद निम्नलिखित हैं –

२–३, २–४, २–५, २–६, २–७, २–८, २–९, ३–४, ३–५, ३–६, ३–७, ३–८, ३–९, ४–५, ४–६, ४–७, ४–८, ४–९, ५–६, ५–७, ५–८, ५–९, ६–७, ६–८, ६–९, ७–८, ७–९, ८–९।

**७०३) कितने धनुष्य का एक कोस होता है ?**

उ. २००० हजार।

**७०४) कोस का अपर नाम क्या है ?**

उ. गाऊ।

**७०५) कोस पृथक्त्व किसे कहते है ?**

उ. २ से ९ तक की संख्या को कोस पृथक्त्व कहते है। इसके भेद धनुष्य पृथक्त्व की भाँति होते हैं।

**७०६) कितने कोस का एक योजन होता है ?**

उ. चार कोस का।

**७०७) योजन पृथक्त्व किसे कहते है ?**

उ. २ से ९ तक की संख्या को योजन पृथक्त्व कहते है ! इसके भी धनुष्य पृथक्त्व की भाँति भेद होते हैं।

## राजलोक विवेचन खण्ड

**७०८) विश्व किसे कहते है ?**

उ. समस्त जीवों के रहने के स्थान को विश्व (लोक) कहते है।

**७०९) सम्पूर्ण विश्व कितने राज प्रमाण है ?**

उ. चौदह राज प्रमाण।

**७१०) एक राज कितने योजन प्रमाण का होता है ?**

उ. करोड को करोड से गुणा करने पर योग फल एक कोडा कोडी प्राप्त होता है। ऐसे असंख्यात कोडा कोडी योजन प्रमाण का एक राज (रज्जु) होता है।

**७११) चौदह राजलोक का आकार कैसा है ?**

उ. कमर पर हाथ रखकर और पाँव चौडे किये हुए मनुष्य जैसा आकार चौदह राजलोक का है।

**७१२) सम्पूर्ण लोक को कितने भागों में बांटा जाता है ?**

उ. तीन भागों में – **१) उर्ध्व लोक**– राजलोक के उपर के भाग में स्थित सात राज प्रमाण में से नौ सौ योजन कम प्रमाण वाला उर्ध्वलोक है। इसमें वैमानिक, नवलोकान्तिक, नवग्रैवेयक, अनुत्तर वैमानिक आदि देव निवास करते हैं।

**२) मध्यलोक**– यह अठारह सौ योजन प्रमाण का हैं जिसमें मनुष्य, व्यंतर, वाणव्यंतर आदि देव एवं तिर्यंच प्राणी निवास करते हैं। यह मध्य में है।

**३) अधोलोक**– चौदह राजलोक के नीचे के भाग में सात राज में से नौ सौ योजन कम प्रमाण में अधोलोक है। इसमें नारकी जीव, भवनपति–परमाधामी आदि देव रहते हैं।

**७१३) लोक में कितने द्वीप, समुद्र, नदियाँ हैं ?**

उ. असंख्यात।

**७१४) मध्य लोक में मध्य में क्या स्थित है ?**

उ. जम्बूद्वीप।

**७१५) जम्बूद्वीप कितने योजन प्रमाण है ?**

उ. एक लाख योजन।

**७१६) जम्बूद्वीप के मध्य में क्या स्थित है ?**

उ. मेरूपर्वत।

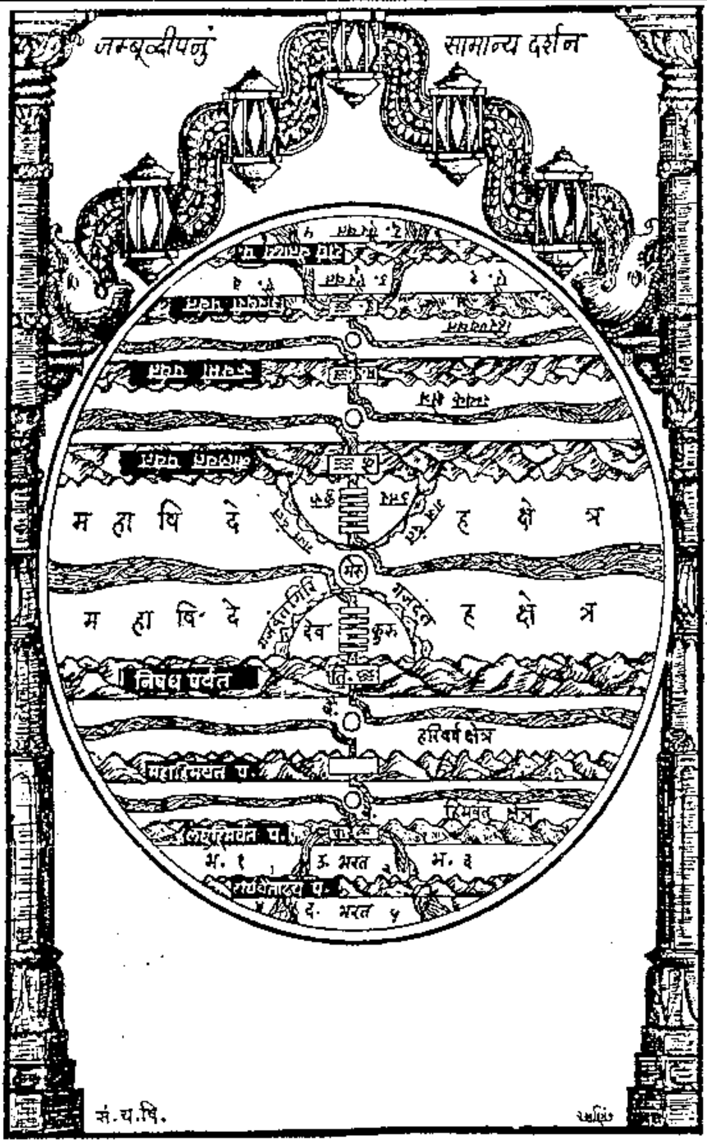


चित्र : जम्बूद्वीप का विस्तार

**७१७) मेरूपर्वत कितने योजन चौडा एवं ऊँचा है ?**

उ. मेरूपर्वत दस हजार योजन चौडा और एक लाख योजन ऊँचा है।

**७१८) मेरूपर्वत के मूल में आठ रूचक प्रदेश वाला भाग क्या कहलाता है ?**

उ. समभूतला।

**७१९) जम्बूद्वीप किस प्रकार एक लाख योजन प्रमाण का है ?**

| | |
|---|---|
| उ. १) भरत क्षेत्र | ५२६ योजन ६/१९ कला |
| २) ऐरावत क्षेत्र | ५२६ योजन ६/१९ कला |
| ३) लघुहिमवन्त पर्वत | १०५२ योजन १२/१९ कला |
| ४) शिखरी पर्वत | १०५२ योजन १२/१९ कला |
| ५) हिमवन्त क्षेत्र | २१०५ योजन ५/१९ कला |
| ६) हिरण्यवंत क्षेत्र | २१०५ योजन ५/१९ कला |
| ७) महाहिमवंत पर्वत | ४२१० योजन १०/१९ कला |
| ८) रूक्मि पर्वत | ४२१० योजन १०/१९ कला |
| ९) हरिवर्ष क्षेत्र | ८४२१ योजन १/१९ कला |
| १०) रम्यक् क्षेत्र | ८४२१ योजन १/१९ कला |
| ११) निषध पर्वत | १६८४२ योजन २/१९ कला |
| १२) नीलवंत पर्वत | १६८४२ योजन २/१९ कला |
| १३) महाविदेह क्षेत्र | ३३६८४ योजन ४/१९ कला |
| (नोटः १९ कलाओं का एक योजन होता है) | कुल– १,००००० योजन |

**७२०) जम्बूद्वीप में कितने शाश्वत पर्वत हैं ?**

उ. जम्बूदीप में स्थित २६९ शाश्वत पर्वत इस प्रकार हैं–

| | | |
|---|---|---|
| वर्षधर पर्वत | – | ७ |
| वृत्त वैताढ्य पर्वत | – | ४ |
| दीर्घ वैताढ्य पर्वत | – | ३४ |
| वक्षस्कार पर्वत | – | १६ |

| | | |
|---|---|---|
| यमक पर्वत | – | २ |
| चित्र–विचित्र पर्वत | – | २ |
| कंचन पर्वत | – | २०० |
| गजदन्त पर्वत | – | ४ |
| कुल शाश्वत पर्वत | – | २६९ |

**७२१) जम्बूद्वीप में कितने शाश्वत पर्वत शिखर हैं ?**

उ. ४६७।

**७२२) जम्बूद्वीप में नदी-समुद्र संगम वाले शाश्वत तीर्थ कितने हैं ?**

उ. १६२।

**७२३) जम्बूद्वीप में विद्याधर-आभियोगिक देवों की श्रेणियाँ कितनी हैं ?**

उ. १३६।

**७२४) जम्बूद्वीप में कितनी विजय हैं ?**

उ. ३४।

**७२५) जम्बूद्वीप में कितने द्रह (कुण्ड) हैं ?**

उ. १६ (१० लघुद्रह एवं ६ महाद्रह)।

**७२६) जम्बूद्वीप में कितनी शाश्वत नदियाँ है ?**

उ. १४,५६,०००।

**७२७) जम्बूद्वीप में कितनी शाश्वत महानदियाँ हैं ?**

उ. ८४।

**७२८) मनुष्य कितने भाग में स्थित है ?**

उ. ढाई द्वीप।

**७२९) ढाई द्वीप किस प्रकार ४५ लाख योजन का होता है?**

उ. १) एक लाख योजन का जंबूद्वीप है।

२) उसके पूर्व–पश्चिम में दो–२ लाख योजन के लवणसमुद्र हैं।

३) उसके पूर्व–पश्चिम में चार–२ लाख योजन के धातकीखण्ड हैं।

४) उसके पूर्व–पश्चिम में आठ–२ लाख योजन के कालोदधिसमुद्र हैं।

५) उसके पूर्व–पश्चिम में आठ–२ लाख योजन का अर्द्धपुष्करावर्त दीप हैं।

१+४+८+१६+१६=४५ लाख योजन

**७३०) अधोलोक में कितने पदार्थ अंधकार करते हैं ?**

उ. चार पदार्थ – १) नरक २) नारकी ३) पाप कर्म ४) अशुभ पुद्गल।

**७३१) तिर्यग्लोक में कितने पदार्थ उजाला करते हैं ?**

उ. चार पदार्थ – १) चन्द्र २) सूर्य ३) मणि ४) ज्योति (अग्नि)।

**७३२) उर्ध्वलोक में कितने पदार्थ उद्योत करते हैं ?**

उ. चार पदार्थ– १) देव २) देवियाँ ३) विमान ४) आभूषण।

**७३३) नारकी जीवों के कितने प्रकार का आहार होता हैं ?**

उ. चार प्रकार का

**१) अंगारोपम–** अल्पकालीन दाह वाला।

**२) मुर्मरोपम–** दीर्घकालीन दाह वाला।

**३) शीतल–** शीत वेदना उत्पन्न करने वाला।

**४) हिमशीतल–** अत्यन्त शीत वेदना उत्पन्न करने वाला।

**७३४) तिर्यंच प्राणियों का आहार कितने प्रकार होता हैं ?**

उ. चार प्रकार का–

**१) कंकोपम:** सरलता से खाने एवं पचने योग्य आहार।

**२) विलोपम:** बिना चबाये निगला जाने वाला आहार।

**३) पाण–मांसोपम:** चाण्डाल के मांस समान घृणित आहार।

**४) पुत्र–मांसोपम:** पुत्र के मास समान निन्द्य आहार।

**७३५) मनुष्यों का कितने प्रकार का आहार होता हैं ?**

उ. चार प्रकार का–

१) अशन २) पान ३) खादिम ४) स्वादिम।

**७३६) देवों का कितने प्रकार का आहार होता हैं ?**

उ. चार प्रकार का–

१) उत्तम वर्ण वाला २) उत्तम गंध वाला

३) उत्तम रस वाला ४) उत्तम स्पर्श वाला

**७३७) किन चार कारणों से मनुष्य लोक एवं देवलोक में अंधकार होता है ?**

उ. १) तीर्थंकरों का विच्छेद होने पर।

२) तीर्थंकर प्ररूपित धर्म का विच्छेद होने पर।

३) पूर्वगत श्रुत का विच्छेद होने पर।

४) अग्नि का विच्छेद होने पर।

**७३८) किन चार कारणों से मनुष्य लोक और देवलोक में प्रकाश होता है, देवों के आसन चलायमान होते हैं, देव मनुष्य लोक में आते हैं ?**

उ. १) तीर्थंकरों के च्यवन एवं जन्म कल्याणक के अवसर पर।

२) तीर्थंकरों के दीक्षा कल्याणक के अवसर पर।

३) तीर्थंकरों के केवलज्ञान कल्याणक के अवसर पर।

४) तीर्थंकरों के निर्वाण कल्याणक के अवसर पर।

**७३९) संपूर्ण लोक में ऐसी चार चीजें कौनसी हैं जो समान रूप से एक लाख योजन विस्तार वाली हैं ?**

उ. १) सातवीं नरक में स्थित अप्रतिष्ठान नामक नरकावास २) जम्बूद्वीप ३) सौधर्मेन्द्र का पालकयान नामक विमान ४) सर्वार्थसिद्ध विमान।

**७४०) सम्पूर्ण लोक में ऐसी चार चीजें कौनसी हैं, जो समान रूप से ४५ लाख योजन विस्तार वाली हैं ?**

उ. १) प्रथम नरक में स्थित सीमन्तक नामक नरकावास २) अढीद्वीप ३) सौधर्म देवलोक के प्रथम प्रतर का मध्यवर्ती उडुविमान ४) सिद्धशिला।

**७४१) किन चार कारणों से जीव और पुद्‌गल लोक से बाहर (अलोक) गमन करने में समर्थ नहीं है ?**

उ. १) गति का अभाव २) धर्मास्तिकाय का अभाव ३) लोकान्त में स्निग्ध पुद्गलों का अभाव ४) लोक की स्वाभाविक मर्यादा।

**७४२) जीवात्माओं को अल्प बहुत्व की अपेक्षा से बताओ ?**

उ. इस विश्व में १) सबसे कम मनुष्य हैं। २) नैरयिक उनसे अंख्यातगुणा हैं। ३) देव उनसे असंख्यातगुणा हैं। ४) सिद्ध उनसे अनन्तगुणा हैं। ५) तिर्यंच उनसे अनन्तगुणा हैं।

## परिभाषा खण्ड

**७४३) पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. पुद्गल के समूह से आत्मा में प्रकट होने वाली शक्ति को पर्याप्ति कहते है। इसके छह प्रकार हैं -

१) आहार २) शरीर ३) इन्द्रिय ४) श्वासोच्छ्वास ५) भाषा ६) मन।

**७४४) आहार पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति से जीव आहार ग्रहण करके उसे आहार और रस में परिणत करता है, उसे आहार पर्याप्ति कहते है।

**७४५) शरीर पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति से जीव रस रुप परिणत आहार को रस, रक्त, मांस, चर्बी, अस्थि, मज्जा और वीर्य रुप सप्तधातु में रुपान्तरित करता है उसे शरीर पर्याप्ति कहते है।

**७४६) इन्द्रिय पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति से जीव शरीर रुप परिणत पुद्गलों को त्वचा, जीभ, नाक, आँख और कान रूप पाँच में इन्द्रियों में रुपान्तरित करता है, उसे इन्द्रिय पर्याप्ति कहते है।

**७४७) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति से जीव श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके श्वासोच्छ्वास में परिणत करता है और छोडता है, उसे श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते है।

**७४८) भाषा पर्याप्ति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस शक्ति से जीव भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा में परिणत करता है

और भाषा रुप में छोडता है, उसे भाषा पर्याप्ति कहते है ।

**७४९) मन पर्याप्ति किसे कहते है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव मन योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके मन रुप में परिणत करता है और सोचता है, उसे मन पर्याप्ति कहते है ।

**७५०) मन योग किसे कहते हैं ?**

उ. शुभ अथवा अशुभ विचार करने की प्रवृत्ति को मनोयोग कहते है ।

**७५१) वचन योग किसे कहते हैं ?**

उ. शुभ अथवा अशुभ वाणी के प्रयोग को वचन योग कहते है ।

**७५२) काय योग किसे कहते हैं ?**

उ. शुभ अथवा अशुभ शारीरिक प्रवृत्ति को काय योग कहते है ।

**७५३) उपयोग किसे कहते हैं ?**

उ. वस्तु में स्थित सामान्य अथवा विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को उपयोग कहते है । उपयोग बारह प्रकार के होते हैं।

**७५४) मतिज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?**

उ. मन और इन्द्रियों की सहायता से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को मतिज्ञानोपयोग कहते है ।

**७५५) श्रुतज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?**

उ. शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन के शब्द में छिपे अर्थ का अवबोध (ज्ञान) कराने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को श्रुतज्ञानोपयोग कहते है ?

**७५६) अवधिज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?**

उ. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिज्ञानोपयोग कहते है ।

**७५७) मन:पर्यवज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?**

उ. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना अढी द्वीप में स्थित संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के विचारों को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को मन:पर्यवज्ञानोपयोग

कहते है ।

**७५८) केवलज्ञानोपयोग किसे कहते है ?**

उ. त्रिकाल एवं त्रिलोक में स्थित समस्त द्रव्य एवं उनकी समस्त पर्यायों में स्थित विशेष धर्म को एक साथ बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को केवलज्ञानोपयोग कहते है ।

**७५९) मतिअज्ञानोपयोग किसे कहते है ?**

उ. मन और इन्द्रियों से वस्तु में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को मतिअज्ञानोपयोग कहते है ।

**७६०) श्रुतअज्ञानोपयोग किसे कहते है ?**

उ. शास्त्र, ग्रंथादि के श्रवण अथवा वांचन से शब्द के साथ अर्थ का ज्ञान कराने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को श्रुतअज्ञानोपयोग कहते है ।

**७६१) अवधि अज्ञानोपयोग किसे कहते है ?**

उ. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित विशेष धर्म को बताने वाली सम्यक्त्व रहित आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिअज्ञानोपयोग कहते है । इसे विभंगज्ञान भी कहते है ।

**७६२) भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान किसे कहते है ?**

उ. जन्म से ही प्राप्त होने वाला अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कहलाता है । देवता एवं नारकी का अवधिज्ञान भवप्रत्ययिक कहलाता है।

**७६३) गुणप्रत्ययिक अवधिज्ञान किसे कहते है ?**

उ. वह अवधिज्ञान जो विशिष्ट साधना, जप, तप के परिणामस्वरुप प्राप्त होता है, उसे गुणप्रत्यायिक अवधिज्ञान कहते है । मनुष्य एवं तिर्यंचों का अवधिज्ञान गुणप्रत्ययिक कहलाता है।

**७६४) चक्षु दर्शनोपयोग किसे कहते है ?**

उ. चक्षु (आँख) की सहायता से वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को चक्षुदर्शनोपयोग कहते है ।

**७६५) अचक्षुदर्शनोपयोग किसे कहते है ?**

उ. चक्षुरिन्द्रिय के अतिरिक्त शेष चार इन्द्रियों में से किसी भी इन्द्रिय की सहायता से वस्तु में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अचक्षुदर्शनोपयोग कहते है ।

**७६६) अवधि दर्शनोपयोग किसे कहते है ?**

उ. मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना मात्र रुपी द्रव्यों में स्थित सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को अवधिदर्शनोपयोग कहते है ।

**७६७) केवलदर्शनोपयोग किसे कहते है ?**

उ. समस्त द्रव्यों एवं उनकी समस्त पर्यायों के सामान्य धर्म को बताने वाली आत्मिक शक्ति के व्यापार को केवलदर्शनोपयोग कहते है ।

**७६८) ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग में क्या अन्तर है ?**

उ. द्रव्य में स्थित विशेष धर्म को जानना ज्ञानोपयोग है जबकि द्रव्य में स्थित सामान्य ज्ञान को जानना दर्शनोपयोग है ।

**७६९) गति किसे कहते है ?**

उ. सुख-दु:ख का उपभोग (अनुभव) करने योग्य स्थिति की प्राप्ति को गति कहते है । गतियाँ चार प्रकार की होती हैं-

१) देवगति २) मनुष्य गति ३) तिर्यंच गति ४) नरक गति।

**७७०) देव गति किसे कहते है ?**

उ. देव गति नाम कर्म के उदय से जीव को जिस पर्याय की प्राप्ति होती है, उसे देवगति कहते है ।

**७७१) मनुष्य गति किसे कहते है ?**

उ. मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से जीव को जिस पर्याय की प्राप्ति होती है, उसे मनुष्य गति कहते है ।

**७७२) तिर्यंच गति किसे कहते है ?**

उ. तिर्यंच गति नाम कर्म के उदय से जीव को जिस पर्याय की प्राप्ति होती है, उसे तिर्यंच

गति कहते है ।

**७७३) नरक गति किसे कहते है ?**

उ. नरक गति नाम कर्म के उदय से जीव को जिस पर्याय की प्राप्ति होती है, उसे नरक गति कहते है ।

**७७४) वेद किसे कहते है ?**

उ. काम-भोग की इच्छा को वेद कहते है ।

**७७५) पुरुष वेद किसे कहते है ?**

उ. नाम कर्म के उदय से पुरुष रुप शरीराकृति को पाना द्रव्य पुरुष वेद कहलाता है एवं मोहनीय कर्म के उदय से स्त्री के साथ भोग सुख की अभिलाषा करना भाव पुरुष वेद कहलाता है ।

**७७६) स्त्री वेद किसे कहते है ?**

उ. नाम कर्म के उदय से स्त्री रुप शरीराकृति को पाना द्रव्य स्त्री वेद कहलाता है । पुरुष के साथ भोग सुख की अभिलाषा करना भाव स्त्री वेद कहलाता है ।

**७७७) नपुंसक वेद किसे कहते है ?**

उ. नाम कर्म के उदय से पुरुष-स्त्री के लक्षणों से युक्त शरीराकृति को पाना नपुंसक वेद कहलाता है । पुरुष और स्त्री दोनों के साथ भोग सुख पाने की अभिलाषा करना भाव नपुंसक वेद कहलाता है ।

**७७८) कषाय किसे कहते है ?**

उ. (१) कष - संसार, आय - लाभ । जिससे जीव के संसार की वृद्धि होती है, उसे कषाय कहते है ।

(२) जीवात्मा के शुद्ध ज्ञान रुप-स्वरुप को कलुषित और विकृत करें, उसे कषाय कहते है।

**७७९) कषाय कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. (१) क्रोध (२) मान (३) माया ) (४) लोभ ।

**७८०) क्रोध कषाय किसे कहते है ?**

उ. इष्ट वस्तु-व्यक्ति के वियोग में एवं अनिष्ट वस्तु-व्यक्ति के संयोग में मोहनीय कर्म के उदय से रोष और आक्रोश रुप आत्मा का परिणाम क्रोध कषाय कहलाता है ।

**७८१) मान कषाय किसे कहते है ?**

उ. अनुकूलता प्राप्त होने से ज्ञान, ऐश्वर्य आदि पर मोहनीय कर्म के फलस्वरुप अहंकार - गर्व करने रुप आत्मा का परिणाम मान कषाय कहलाता है ।

**७८२) माया कषाय किसे कहते है ?**

उ. किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये मोहनीय कर्म के फलस्वरुप मन-वचन-काया की कुटिलता एवं दूसरों को ठगने रुप आत्मा के परिणाम को माया कषाय कहते है ।

**७८३) लोभ कषाय किसे कहते है ?**

उ. इष्ट वस्तु (धन, सत्ता, सम्पत्ति आदि) के प्रति अभिलाषा मूर्च्छा, ममता रुप आत्मा के परिणाम को लोभ कषाय कहते है ।

**७८४) लेश्या किसे कहते है ?**

उ. जिससे जीवात्मा के साथ कर्म पुद्गल चिपकते हैं, उसे लेश्या कहते है ।

**७८५) लेश्या कितने प्रकार की होती हैं ?**

उ. छह प्रकार की - (१) कृष्ण (२) नील (३) कापोत (४) तेजो (५) पद्म (६) शुक्ल ।

**७८६) कृष्ण लेश्या किसे कहते है ?**

उ. अति विकृत कर्म पुद्गलों के कारण आत्मा में जो हिंसा, क्रूरता, रौद्रता के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे कृष्ण लेश्या कहते है ।

**७८७) नील लेश्या किसे कहते है ?**

उ. विकृत कर्म पुद्गलों के कारण आत्मा में जो माया, इर्ष्या, घृणा, द्वेष आदि के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे नील लेश्या कहते है ।

**७८८) कापोत लेश्या किसे कहते है ?**

उ. अल्प विकृत कर्म पुद्गलों के कारण आत्म में जो अभिमान, जडता, वक्रता और कठोरता के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे कापोत लेश्या कहते है ।

**७८९) तेजो लेश्या किसे कहते है ?**

उ. शुभ कर्म पुद्गलों के कारण आत्मा में जो पापभीरुता, विनय और प्रेम के परिणाम

उत्पन्न होते हैं, उसे तेजो लेश्या कहते है ।

**७९०) पद्म लेश्या किसे कहते हैं ?**

उ. शुद्ध कर्म पुद्‌गलों के कारण आत्मा में जो सरलता, सहिष्णुता, समता के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे पद्मलेश्या कहते है ।

**७९१) शुक्ल लेश्या किसे कहते हैं ?**

उ. अति विशुद्ध कर्म पुद्‌गलों के कारण जो आत्मा में कषाय मंदता (क्षय-उपशम) धर्मध्यान एवं आत्मचिन्तन के परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे शुक्ल लेश्या कहते है ।

**७९२) जीव कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. (१) भव्य (२) अभव्य (३) जाति भव्य ।

**७९३) भव्य जीव किसे कहते हैं ?**

उ. जिन जीवों में मोक्ष पाने की योग्यता है, वे जीव जो कभी न कभी सिद्धत्व को अवश्यमेव प्राप्त करेंगे, भव्य जीव कहलाते हैं।

**७९४) अभव्य जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव जो अनन्त काल तक संसार में ही भ्रमण करते रहेंगे, मोक्ष में जाने की अयोग्यता वाले जीव अभव्य कहलाते हैं।

**७९५) ज़ातिभव्य जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वे जीव, जो भव्य तो हैं परन्तु अनंतकाल तक अव्यवहार से व्यवहार राशि में नहीं आयेंगे और जिसे कभी भी धर्म आराधना के साधन रुप जिनागम, जिनवाणी, जिनप्रतिमा प्राप्त नही होने से कभी भी मोक्ष में नहीं जायेंगे, उन्हें जाति भव्य जीव कहते हैं।

**७९६) भव्य जीव कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. तीन प्रकार के (१) आसन्न भव्य (२) मध्यम भव्य (३) दुर्भव्य

**७९७) आसन्न भव्य जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वह जीव जो एकाध भव में ही मोक्ष प्राप्त करेगा, उसे आसन्न भव्य जीव कहते है ।

**७९८) मध्यम भव्य जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वह जीव जो ३,५, ७, ९ या कुछ अधिक भवों में मोक्ष प्राप्त करेगा, उसे मध्यम भव्य जीव कहते है ।

**७९९) दुर्भव्य जीव किसे कहते हैं ?**

उ. वह जीव जो अनन्तकाल के बाद मोक्ष प्राप्त करेगा, उसे दुर्भव्य कहते हैं।

**८००) सम्यक्त्व किसे कहते है ?**

उ. दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय अथवा उपशम अथवा क्षयोपशम के परिणामस्वरुप जिन प्ररुपित तत्त्वों पर श्रद्धा रुप जो आत्मिक परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे सम्यक्त्व कहते है ।

**८०१) औपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?**

उ. दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम से आत्मा में जो विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते है।

**८०२) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?**

उ. दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय एवं उपशम, दोनों के परिणाम स्वरुप आत्मा में जो शुद्ध परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते है ।

**८०३) क्षायिक सम्यक्त्व किसे कहते है ?**

उ. दर्शन मोहनीय की तीन (सम्यक्त्व मोहनीय, मिश्रमोहनीय, मिथ्यात्त्व मोहनीय) प्रकृतियाँ एवं चारित्र मोहनीय की चार (अनन्तानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ) प्रकृतियाँ, इन सातों प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होने पर आत्मा में जो अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होते हैं, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते है ।

**८०४) वेदक सम्यक्त्व किसे कहते है ?**

उ. क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति के एक - दो क्षण पूर्व के आत्म परिणामों की विशुद्ध स्थिति को वेदक सम्यक्त्व कहते है ।

**८०५) मिश्र दृष्टि किसे कहते है ?**

उ. नालीकेर द्वीप के युगलिकों के समान जब जीव को सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर न श्रद्धा होती है, न अश्रद्धा होती है, उसे मिश्रदृष्टि कहते है ।

**८०६) मिथ्यादृष्टि किसे कहते है ?**

उ. मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जब जीव को कुदेव-कुगुरु-कुधर्म में श्रद्धा होती है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते है ।

**८०७) संज्ञी किसे कहते है ?**

उ. जिस जीव में सोचने-विचार करने के लिये मनोबल प्राण होता है, वह संज्ञी कहलाता है ।

**८०८) असंज्ञी किसे कहते है ?**

उ. जिस जीव में सोचने-विचार करने के लिये मनोबल प्राण नहीं होता है, वह असंज्ञी कहलाता है ।

**८०९) हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. मात्र वर्तमान काल का विचार करने की शक्ति को हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा कहते है ।

**८१०) दीर्घकालिकी संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. तीनों काल का विचार करने की शक्ति को दीर्घकालिकी संज्ञा कहते है ।

**८११) दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. सम्यक्दृष्टि जीव की विचार-शक्ति को दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञा कहते है ।

**८१२) आहार किसे कहते है ?**

उ. जिससे जीव अपनी क्षुधा को शान्त करता है, उसे आहार कहते है ।

**८१३) आहार के कितने प्रकार होते हैं ?**

उ. तीन प्रकार के - (१) ओजाहार (२) लोमाहार (३) कवलाहार

**८१४) ओजाहार किसे कहते है ?**

उ. उत्पत्ति के प्रथम समय से जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तब तक जीव शुक्र-शोणित आदि औदारिक पुद्गलों को आहार करता है, उसे ओजाहार कहते है ।

**८१५) लोमाहार किसे कहते है ?**

उ. शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद स्पर्शनेन्द्रिय (त्वचा) के द्वारा लिया जाने वाला आहार लोमाहार कहलाता है ।

**८१६) कवलाहार किसे कहते है ?**

उ. मुख से किया जाने वाला अन्न, फल आदि चार प्रकार का आहार कवलाहार कहलाता है ।

**८१७) समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. जबरदस्ती एक साथ आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर कर्मों की उदीररणा करके नाश करने का विशिष्ट प्रयत्न समुद्घात कहलाता है ।

**८१८) समुद्घात कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. सात प्रकार के (१) वेदना (२) कषाय (३) मरण (४) वैक्रिय (५) तैजस (६)आहारक (७) केवली।

**८१९) वेदना समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. अत्यधिक वेदना के क्षणों में जीव आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर विशेष रुप से अशाता वेदनीय कर्म के पुद्गलों को नष्ट करता है, उसे वेदना समुद्घात कहते है ।

**८२०) कषाय समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायों का तीव्र उदय होने से जीव द्वारा आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालकर कषाय रूप मोहनीय कर्म के पुद्गलों की निर्जरा करना कषाय समुद्घात कहलाता है ।

**८२१) मरण समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. मृत्यु होने से अन्तर्मुहूर्त्त पूर्व जीव स्वयं के आत्म प्रदेशों को जहाँ उत्पन्न होना है, वहाँ तक फैलाते हुए कर्म पुद्गलों की निर्जरा करना मरण समुद्घात कहलाता है ।

**८२२) वैक्रिय समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. वैक्रिय लब्धि वाले जीव द्वारा छोटा-बडा शरीर बनाने के लिये आत्म प्रदेशों को शरीर से बाहर निकालते हुए कर्मों की निर्जरा करना वैक्रिय समुद्घात कहलाता है ।

**८२३) आहारक समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. आहारक लब्धि वाले चौदह पूर्वधारी मुनिवर अरिहंत परमात्मा से समाधान आदि की इच्छा से निर्बाध गति वाला एक हाथ अवगाहना वाला शरीर निर्मित करते हैं, उस

शरीर से आत्म प्रदेशों को बाहर निकालते हुए कर्म निर्जरा करना आहारक समुद्घात कहलाता है ।

**८२४) तैजस समुद्घात किसे कहते है ?**

उ. तेजो लेश्या सम्पन्न जीव तैजस शरीर के कर्म पुद्गल बाहर निकालता हुआ को बाहर निकालकर कर्म निर्जरा करता है, उसे तैजस समुद्घात कहते है ।

**८२५) केवली समुद्घात किसे कहते हैं ?**

उ. केवली भगवंत के चार अघाती कर्मों में से आयुष्य कर्म की स्थिति कम और शेष तीन कर्मों की स्थिति अधिक हो तब केवली भगवंत निर्वाण में अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर आत्म प्रदेशों को लोकाकाश में फैलाकर कर्म निर्जरा करते हैं, उसे केवली समुद्घात कहते है ।

**८२६) संघयण किसे कहते हैं ?**

उ. शरीर के अस्थि-बंधन की मजबूती को संघयण कहते है।

**८२७) संघयण कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. छह प्रकार के - (१) वज्रऋषभनाराच (२) ऋषभनाराच (३) नाराच (४) अर्द्धनाराच (५) कीलिका (६) छेवट्ठ (सेवार्त)

**८२८) वज्रऋषभनाराच संघयण किसे कहते हैं ?**

उ. मर्कटबंध से बंधी हुई दो हड्डियों के उपर तीसरी हड्डी आवेष्टित हो और तीनों को भेद कर मजबूत बनाने वाली कील हो, उसे वज्रऋषभनाराच संघयण कहते है ।

**८२९) ऋषभनाराच संघयण किसे कहते हैं ?**

उ. दोनों तरफ मर्कटबंध से बंधी हुई दो हड्डियों के उपर तीसरी हड्डी का वेष्टन हो परन्तु तीनों को भेदने वाली कील न हो, उसे ऋषभनाराच संघयण कहते है ।

**८३०) नाराच संघयण किसे कहते हैं ?**

उ. हड्डियों दोनों ओर से मर्कटबंध से बंधी (कसी) हुई हो पर उसके उपर तीसरी हड्डी का वेष्टन न हो और कील भी न हो, उसे नाराच संघयण कहते है ।

**८३१) अर्द्धनाराच संघयण किसे कहते हैं ?**

उ. हड्डियों के दोनों तरफ मर्कटबंध न हो, केवल एक तरफ ही मर्कट बंध हो और दूसरी तरफ कील हो, उसे अर्द्धनाराच संघयण कहते है ।

**८३२) कीलिका संघयण किसे कहते है ?**

उ. हड्डियाँ दोनों तरफ मर्कटबंध से बंधी हुई न हो पर उसके उपर कील हो, उसे कीलिका संघयण कहते है ।

**८३३) सेवार्त संघयण किसे कहते है ?**

उ. दोनों हड्डियाँ मात्र एक-दूसरे से स्पर्श की हुई हो परन्तु न मर्कटबंध हो, न कील हो, उसे सेवार्त संघयण कहते है ।

**८३४) संस्थान किसे कहते है ?**

उ. शरीर के आकार को संस्थान कहते है ।

**८३५) समचतुरस्र संस्थान किसे कहते है ?**

उ. पालथी लगाने पर दायें घुटने से बाये कंधे का, बाये घुटने से दाये कंधे का, दोनों घुटनों के बीच का एवं मस्तक और पालथी का, इन चारों के बीच का अन्तर समान हो, उसे समचतुरस्र संस्थान कहते है ।

**८३६) न्यग्रोध परिमंडल संस्थान किसे कहते है ?**

उ. नाभि के उपर के अवयव सामुद्रिक शास्त्र के प्रमाणों से युक्त हो परन्तु नाभि के नीचे का भाग अप्रमाणिक हो, उसे न्यग्रोध परिमंडल संस्थान कहते है ।

**८३७) सादि संस्थान किसे कहते है ?**

उ. नाभि के नीचे के अवयव अप्रामाणिक हो परन्तु उपर के अवयव प्रामाणिक हो, उसे सादि संस्थान कहते है ।

**८३८) वामन संस्थान किसे कहते है ?**

उ. मस्तक, ग्रीवा, हाथ, पाँव प्रामाणिक हो और छाती, पेट आदि अवयव अप्रामाणिक हो, उसे वामन संस्थान कहते है ।

**८३९) कुब्ज संस्थान किसे कहते है ?**

उ. छाती, पेट वगैरह अवयवों को छोडकर मस्तक, ग्रीवा, हाथ, पाँव अप्रामाणिक हो,

चित्र : छह प्रकार के संस्थान

उसे कुब्ज संस्थान कहते है ।

**८४०) हुंडक संस्थान किसे कहते हैं ?**

उ. समस्त शारीरिक अवयव अप्रमाणिक हो, उसे हुंडक संस्थान कहते है ।

**८४१) औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?**

उ. अस्थि, मांस, रक्त आदि से बने शरीर को औदारिक शरीर कहते है ।

**८४२) वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?**

उ. जो शरीर विशिष्ट क्रिया करने में सक्षम होता है, अर्थात् छोटा-बडा, लम्बा-बौना, दृश्य-अदृश्य, हल्का-भारी, पतला-मोटा आदि रुप धारण कर सकता है, उसे वैक्रिय शरीर कहते है ।

**८४३) आहारक शरीर किसे कहते हैं ?**

उ. चौदह पूर्वधारी मुनिवर जिनेन्द्र (केवली) भगवंत से प्रश्न पूछने के लिये एक हाथ प्रमाण वाला शरीर बनाते हैं, उसे आहारक शरीर कहते है ।

**८४४) तैजस शरीर किसे कहते है ?**

उ. तैजस जाति के उष्ण पुद्‌गलों से निर्मित शरीर को तैजस शरीर कहते है ।

**८४५) कार्मण शरीर किसे कहते है ?**

उ. राग-द्वेष की प्रवृत्तियों के परिणाम स्वरूप आत्मा से संयुक्त कार्मण परमाणुओं के पिण्ड को कार्मण शरीर कहते है ।

**८४६) संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. चेतना (जीव) की इच्छा-अभिलाषा जिसके द्वारा जानी जाती है, उसे संज्ञा कहते है।

**८४७) संज्ञा कितने प्रकार होती हैं ?**

उ. ४ प्रकार की, ६ प्रकार की, १० प्रकार की एवं १६ प्रकार की संज्ञाएँ कही गयी है ?

**८४८) चार प्रकार की संज्ञा कौन-कौनसी हैं ?**

उ. (१) आहार संज्ञा (२) भय संज्ञा (३) मैथुन संज्ञा (४) परिग्रह संज्ञा ।

**८४९) छह प्रकार की संज्ञा कौन-कौनसी हैं ?**

उ. उपरोक्त चार संज्ञाओं में ओघ और लोक संज्ञा मिलाने पर छह प्रकार की संज्ञा होती हैं।

**८५०) दस प्रकार की संज्ञा कौन-कौनसी हैं ?**

उ. उपरोक्त छह संज्ञाओं के साथ क्रोध, मान, माया, एवं लोभ ये चार संज्ञाएँ गिनने पर दस संज्ञाएँ होती हैं।

**८५१) सोलह प्रकार की कौन-कौनसी संज्ञाएँ होती हैं ?**

उ. उपरोक्त दस संज्ञाओं के साथ मोह, धर्म, सुख, दुःख, जुगुप्सा और शोक संज्ञा गिनने पर सोलह संज्ञा होती हैं।

**८५२) आहार संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. वेदनीय कर्म के उदय से आहार ग्रहण की अभिलाषा रुप चेष्टा को आहार संज्ञा कहते है ।

**८५३) भय संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. मोहनीय कर्म के उदय प्रकट भय रुप चेष्टा को भय संज्ञा कहते है ।

**८५४) मैथुन संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. मोहनीय कर्म के उदय से काम-भोग करने की इच्छा रुप चेष्टा को मैथुन संज्ञा कहते है ।

**८५५) परिग्रह संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. पर-पदार्थों में मूर्च्छा रुप चेष्टा को परिग्रह संज्ञा कहते है ।

**८५६) क्रोध संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. जीव-अजीव के प्रति रोष रुप चेष्टा को क्रोध संज्ञा कहते है ।

**८५७) मान संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. जीव में सत्ता, ज्ञान, सम्पत्ति आदि के कारण उत्पन्न होने वाला अभिमान रुप व्यवहार को मान संज्ञा कहते है ।

**८५८) माया संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. जीव के कपट रुप परिणाम को अभिव्यक्त करने वाली चेष्टा को माया संज्ञा कहते है ।

**८५९) लोभ संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. जीव-अजीव पर आसक्ति के परिणाम स्वरुप उनके संचय के भाव को प्रकट करने वाली क्रिया को लोभ संज्ञा कहते है।

**८६०) ओघ संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. पूर्व भव के संस्कारों के परिणाम स्वरुप जो क्रिया सहज रुप होती है, उसे ओघ संज्ञा कहते है ।

**८६१) लोक संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. लोक व्यवहार के अनुसार चलने की प्रवृत्ति को लोक संज्ञा कहते है ।

**८६२) मोह संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. तत्त्व में अतत्त्व की बुद्धि एवं अतत्त्व में तत्त्व की बुद्धि को मोह संज्ञा कहते है ।

**८६३) धर्म संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. क्षमा, सरलता, दया, समता, सत्य आदि में चित्त के जुडने के भाव को धर्म संज्ञा कहते है।

**८६४) सुख संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. शाता और सुख के अनुभव को सुख संज्ञा कहते है ।

**८६५) दुःख संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. अशाता और दुःख के अनुभव को दुःख संज्ञा कहते है ।

**८६६) जुगुप्सा संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. चित्त में स्थित उठे घृणा के भावों को जुगुप्सा संज्ञा कहते है ।

**८६७) शोक संज्ञा किसे कहते है ?**

उ. चित्त में स्थित खेद, बेचैनी, चिन्ता के भावों को शोक संज्ञा कहते है ।

**८६८) उपपात किसे कहते है ?**

उ. उत्पन्न (जन्म) होने को उपपात कहते है ।

**८६९) च्यवन किसे कहते है ?**

उ. मृत्यु प्राप्त करने को च्यवन कहते है ।

**८७०) उपपात विरह किसे कहते है ?**

उ. एक गति में एक जीव के जन्म लेने से दूसरे जीव के जन्म लेने के बीच जितना काल व्यतीत होता है, उसे उपपात विरहकाल कहते है ।

**८७१) च्यवन विरह किसे कहते है ?**

उ. एक गति में एक जीव की मृत्यु के कितने समय पश्चात् दूसरा जीव मृत्यु को प्राप्त करता है, उसे च्यवन विरहकाल कहते है ।

**८७२) सोपक्रमी आयुष्य किसे कहते है ?**

उ. वह आयुष्य जो किसी दुर्घटना या आघात से बीच में ही टूट सकता है, उसे सोपक्रमी आयुष्य कहते है ।

**८७३) निरुपक्रमी आयुष्य किसे कहते है ?**

उ. वह आयुष्य जो किसी भी उपक्रम या दुर्घटना के द्वारा बीच में टूटता नहीं है, उसे निरुपक्रमी आयुष्य कहते है ।

**८७४) प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिसके योग से आत्मा का शरीर से संबंध बना रहता है अथवा जिससे जीव में जीवत्व की प्रतीति होती है, उसे प्राण कहते है ।

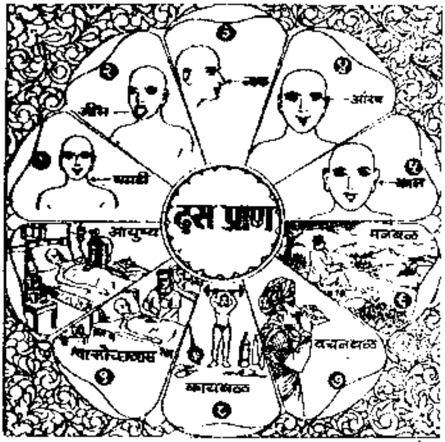


चित्र : दस प्रकार के प्राण

**८७५) प्राण कितने प्रकार के होते हैं ?**

उ. दस प्रकार के- १) स्पर्शनेन्द्रिय २) रसनेन्द्रिय ३) घ्राणेन्द्रिय ४) चक्षुरिन्द्रिय ५) श्रोतेन्द्रिय ६) मनोबल प्राण ७) वचन बल ८) काय बल प्राण ९) श्वासोच्छ्वास १०) आयुष्य।

**८७६) स्पर्शनेन्द्रिय प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस प्राण से जीव उष्ण, शीत आदि स्पर्शों का अनुभव करता है, उसे स्पर्शनेन्द्रिय प्राण कहते है ।

**८७७) रसनेन्द्रिय प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस प्राण से जीव कटु, मधुर आदि रसों का अनुभव करताा है, उसे रसनेन्द्रिय प्राण कहते है ।

**८७८) घ्राणेन्द्रिय प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस प्राण से जीव सुगंध-दुर्गंध का अनुभव करता है उसे घ्राणेन्द्रिय प्राण कहते है।

**८७९) चक्षुरिन्द्रिय प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस प्राण से जीव देखता है उसे चक्षुरिन्द्रिय प्राण कहते है ।

**८८०) श्रोतेन्द्रिय प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस प्राण से जीव शब्द श्रवण करता है, उसे श्रोतेन्द्रिय प्राण कहते है ।

**८८१) मनोबल प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव सोचता है, उसे मनोबल प्राण कहते है।

**८८२) वचन बल किसे कहते है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव भाषा का उच्चारण करता है, उसे वचन बल प्राण कहते है ।

**८८३) काय बल प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव कायिक प्रवृत्तियाँ करता है, उसे काय बल प्राण कहते है ।

**८८४) श्वासोच्छ्वास प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव श्वास लेता है और छोडता है, उसे श्वासोच्छ्वास प्राण कहते है।

**८८५) आयुष्य प्राण किसे कहते है ?**

उ. जिस शक्ति से जीव शरीर में जीता है, रहता है, उसे आयुष्य प्राण कहते है ।

**८८६) गुणस्थानक किसे कहते है ?**

उ. गुणों की तरतमता (अल्पता-अधिकता) के आधार पर जीवों का विभाजन करें, उसे गुणस्थानक कहते है ।

**८८७) मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक किसे कहते है ?**

उ. अतत्त्व के प्रति तत्त्व श्रद्धा रखने वाले मिथ्यात्वी जीव के गुणस्थानक को मिथ्यादृष्टि गुणस्थानक कहते है ।

**८८८) सास्वादन गुणस्थानक किसे कहते है ?**

उ. उपशम सम्यक्त्व से गिरने के बाद जीव को जिस गुणस्थानक में सम्यक्त्व का थोडा आस्वाद रहता है, उसे सास्वादन गुणस्थानक कहते है ।

***८८९) मिश्र दृष्टि गुणस्थानक किसे कहते है ?***

उ. जिस गुणस्थानक में जीव को तत्त्व पर न श्रद्धा होती है, न अश्रद्धा होती है, उसे

मिश्रदृष्टि गुणस्थानक कहते है ।

**८९०) अविरत सम्यक्दृष्टि गुणस्थानक किसे कहते हैं ?**

उ. जिस गुणस्थानक में जीव को तत्त्व (सुदेव- सगुरु-सुधर्म) पर श्रद्धा होती है, उसे अविरत सम्यक्दृष्टि गुणस्थानक कहते है ।

**८९१) देशविरति गुणस्थानक किसे कहते हैं ?**

उ. जिस गुणस्थानक में जीव प्रत्याख्यान धारण करता है, उसे देशविरति गुणस्थानक कहते है ।

**८९२) प्रमत्त संयत गुणस्थानक किसे कहते हैं ?**

उ. ज्ञानपूर्वक संसार के समस्त पाप कर्मों (कार्यों) को त्याग करना संयम कहलाता है । संयम में मद-कषाय-विषय-निद्रा-विकथा द्वारा दोष लगना प्रमत्त संयत गुणस्थानक कहलाता है ।

**८९३) अप्रमत्त संयत गुणस्थानक किसे कहते हैं ?**

उ. संयत का प्रमाद (विषय आदि) रहित सजगता एवं जागरुकता पूर्वक पालन करना अप्रमत्त संयम गुणस्थानक कहलाता है ।

**८९४) गति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस गति में जाकर जीव उत्पन्न होता है, उसे गति कहते है ।

**८९५) आगति किसे कहते हैं ?**

उ. जिस गति से आकर जीव उत्पन्न होता है, उसे आगति कहते है ।

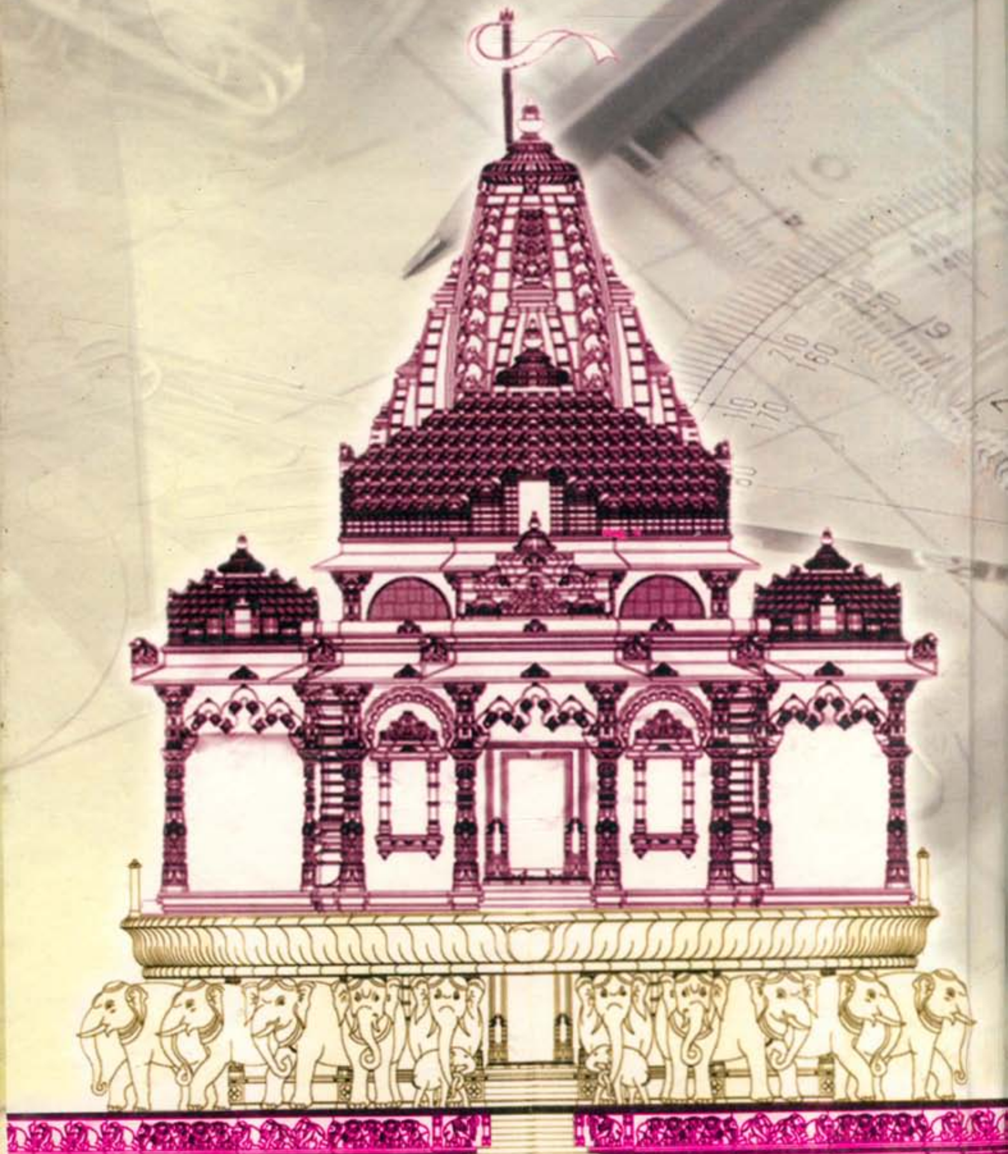

श्री गज मंदिर, केसरियाजी

Print : Deepak Oswal,Pune
☎:020-24477791,9822055891